IMPACT FACTOR 7.012

Year 16 (01) Vol. XXX
February 2025

ISSN : 0976-8149
UGC List No. 48216
I.S.O. 9001-2015

Manglam

Half Yearly Journal of Humanities & Social Sciences

मङ्गलम्

मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

A Peer Reviewed 'Refereed' Journal

Editor
Dr. Dinkar Tripathi

Manglam Sewa Samiti, Prayagraj (U.P.) India
(Regd. Under Society Registration Act 21, 1860)

सम्पादक :
डॉ० दिनकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
फीरोज़ गाँधी कॉलेज, रायबरेली–229001 (उ.प्र.) भारत
1304/A आचार्य द्विवेदी नगर, जेल रोड, रायबरेली–229001 (उ.प्र.) भारत
मो० : 91-7398180008
Email : drdinkartripathi@gmail.com

सह सम्पादक :
डॉ० ऋतेश त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
सी.एम.पी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.) भारत
शिवम् अपार्टमेन्ट, नया ममफोर्डगंज, प्रयागराज–211002 (उ.प्र.) भारत
मो० : 91-9532006658
Email : tripathiritesh82@gmail.com

प्रकाशक :
मङ्गलम् सेवा समिति
मो० : 91-9044666672
Website : www.manglamallahabad.com
Email : manglamjournal01@gmail.com

तकनीकि सहयोग :
डॉ० (श्रीमती) वंदना त्रिपाठी
मो० : 91-7398180009
Email : tripathivandana01@gmail.com

आवृत्ति : **अर्द्धवार्षिक**
प्रथम अंक : फरवरी द्वितीय अंक : अगस्त

मूल्य :
विदेश में : **$13** देश में : **₹1000**

मङ्गलम् (अर्द्धवार्षिक द्विभाषीय) शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के अपने हैं, सम्पादक के नहीं। इनमें सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। अतः पत्रिका के सम्पादक एवं प्रकाशक पर इसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। विवाद माननीय न्यायालय प्रयागराज में ही विचारणीय होंगे।

PATRONS

- **Prof. P.C. Trivedi**, Ex. Vice Chancellor, Jay Narayan Vyas University, Jodhpur (Rajasthan)
- **Prof. Manoj Dixit**, Vice Chancellor, Maharaja Ganga Singh University, Bikaner (Rajasthan)
- **Prof. D.P. Tiwari**, Vice Chancellor, Jai Minesh Adivasi University, kota, (Rajasthan)
- **Prof. Sri Prakash Mani Tripathi**, Ex-Vice Chancellor, Indira Gandhi National Tribal University Amarkantak (M.P.)
- **Prof. Sanjeev Kumar Sharma**, Ex. Vice Chancellor, Mahatma Gandhi Central, University of Bihar, Motihari (Bihar)
- **Prof. Suresh Chandra Pandey**, University of Allahabad, Prayagraj (U.P.)
- **Prof. Ram Hit Tripathi**, Ex. Principal, Pt. Mahadev Shukla Krishak Post Graduate College Gaur, Basti (U.P.)
- **Prof. R.N. Tripathi**, Member, Uttar Pradesh Public Service, Commission, Prayagraj (U.P.)
- **Prof. M.S. Kambli**, University of Mumbai, Mumbai (Maharashtra)
- **Prof. Umesh Prasad Singh**, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)
- **Prof. Ramjee Tiwari**, University of Mumbai, Mumbai (Maharashtra)
- **Prof. A.K. Kaul**, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)
- **Prof. A.K. Srivastav**, University of Lucknow, Lucknow (U.P.)

EDITORIAL BOARD

- **Prof. Rama Shankar Mishra**, University of Lucknow (U.P.)
- **Prof. Rajendra Singh Chauhan**, Himachal Pradesh University Shimla (Himachal Pradesh)
- **Prof. Anand Kumar Srivastav**, Ex. Principal, CMP College, University of Allahabad, Prayagraj (U.P.)
- **Dr. Diwakar Tripathi**, Dr. Rammanohar Lohia Awadh University, Ayodhya (U.P.)
- **Dr. Ritesh Tripathi**, C.M.P. Degree College, University of Allahabad, Prayagraj (U.P.)

- **Prof. Noor Mohhammad**, University of Delhi, Delhi
- **Prof. R.K. Mishra**, University of Lucknow (U.P.)
- **Prof. Geeta Tripathi**, Ganpat Sahai P.G. College, Sultanpur, Dr. Rammanohar Lohia Awadh University, Ayodhya (U.P.)
- **Prof. Lokesh Tripathi**, Baba Raghav Das PG College Deoria, Deen Dayal Upadhyay Gorakhpur University, Gorakhpur (U.P.)
- **Dr. Bhasker Shukla**, Hemwati Nandan Bahuguna Government P.G. College Naini, PRS University, Prayagraj (U.P.)
- **Dr. Vandana Tripathi**, Basic Education Board, Raebareli (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. Anand Prakash Tripathi,** Dr. Hari Singh Gour University, Sagar (Madhya Pradesh)
- **Prof. K.K. Pandey**, Ex. Principal, DAV College Lucknow (U.P.)
- **Prof. R.S. Aadha**, Jai Narayan Vyas University, Jodhpur, (Rajasthan)
- **Prof. Nagendra Pratap Chauhan**, B.R.A. Bihar University, Muzzaferpur, (Bihar)
- **Prof. Anupam Sharma**, Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar, (M.P.)
- **Prof. Ravindra Kumar Sharma**, Kurukshetra University, Haryana
- **Prof. Mamta Mani Tripathi**, Udit Narayan P.G. College, Kushinagar, Deen Dayal Upadhyay Gorakhpur University, Gorakhpur (U.P.)
- **Dr. Meera Pal**, Uttar Pradesh Rajshree Tandon Open University, Prayagraj (U.P.)
- **Dr. Shyam Prasad Saidal**, Bal Kumari Mahavidyalaya, Narayangarh, Chitwan, (Nepal)
- **Dr. Digvijay Nath Rai**, Agra College, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (U.P.)
- **Dr. Joydeb Garal**, University of Chittagong (Bangladesh)
- **Dr. Sanjay M. Wagh**, S. Gholap Arts Science & G. Pawar Commerce College, Shivle, University of Mumbai, Mumbai (Maharashtra)
- **Dr. Mohd. Younes Bhat**, Government Degree College Kulgam, University of Jammu (J & K)
- **Dr. Sheelam Bharti**, Mata Sundari College for Women University of Delhi, Delhi

सम्पादकीय

सनातन धर्म एवं संस्कृति में कुम्भ स्नान का अतिशायी माहात्म्य है। अमृत कुम्भ की उत्पत्ति पौराणिक अवधारणा में देवों और दैत्यों द्वारा किए गए समुद्र मन्थन से हुई है। देवराज इन्द्र के पुत्र जयन्त उस अमृत कुम्भ को लेकर भागने लगे। दैत्यों को इसका संकेत प्राप्त होने पर वे उनका पीछा करने लगे। जयन्त के भागते समय कुम्भ से छलकर कर अमृत की कुछ बूँदें प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में गिरीं। इन्हीं स्थानों पर कुम्भ मेलों का आयोजन किया जाता है। यद्यपि कुम्भ का अर्थ कलश अथवा घड़ा है, किन्तु कुम्भ उस स्थान विशेष की भी संज्ञा है, जहाँ श्रेष्ठ तत्त्वज्ञ महात्माओं का संगमन तथा सदुपदेशों होने से पृथ्वी अनुगृहीत होती है; अथवा बुरे दोषों को दूर कर कल्याण करने वाले स्थान को कुम्भ कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी अर्थ ग्रहणीय है कि पृथ्वी पर भावी कल्याण की सूचना देने के लक्ष्य से प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन आदि पवित्र स्थानों को उद्देश्य बनाकर वृहस्पति आदि ग्रह राशि आकाश में जब पुंजी भूतहोते हैं, तो वह कुम्भ कहलाता है। इसी प्रकार पापों का अपनयन एवं प्रक्षालन कर पुण्य और पवित्रता की वृद्धि क्रिया से जिस स्थान पर पृथ्वी का भार न्यून किया जाता है, उसे कुम्भ कहते हैं। इस प्रकार संक्षेपतरू कहा जा सकता है कि संसार की कल्याण भावना से भावित एवं प्रेरित होकर जहाँ पाप, दोष एवं अज्ञान का निरसन किया जाता है; वह स्थान कुम्भ कहलाता है। वस्तुतरू संसार के कल्याण तथा मानव को मोक्ष्य प्राप्ति के निमित्त कुम्भ में विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान सम्पादन किए जाते हें। इसके साथ ही जहाँ सत्कर्म करके मनुष्य लोक एवं परलोक की सफलता के लिए तप, व्रत, दान–दक्षिणा और यज्ञानुष्ठान सम्पन्न किया जाता है। गंगा, यमुना, सरस्वती इन तीनों नदियों के संगम स्थल प्रयाग में कुम्भ का स्नान प्रत्येक सनातन धर्मी को परम काम्य रहा है; क्योंकि प्रयाग त्रिवेणी में संगम का स्नान सद्यरू पाप प्रक्षालन एवं मुक्ति प्रदाता रहा है। ऋग्वेदसंहिता 9.113.11 खिलपाठ 2.12 तथा वामनपुराण 23.19–20 पद्मपुराण उत्तर खण्ड 27.149, स्कन्दपुराण अवन्तिखण्ड 2.71.62 मत्स्यपुराण 106.27, 51, 107.9, 112.8 आदि सन्दर्भों से प्रयाग में त्रिवेणी स्नान की महिमा का ख्यापन विपुलता में किया गया है। ज्ञातव्य है कि प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में प्रत्येक 12वें वर्ष पर कुम्भ का योग बनता रहता है, किन्तु प्रयाग और हरिद्वार में छठें–छठें वर्ष पर

अर्ध कुम्भ का आयोजन होता है। हरिद्वार और प्रयाग के अर्धकुम्भ के साथ क्रमशरू नासिक और उज्जैन में भी कुम्भ होता है। इस सम्वत्सर 2081 का महाकुम्भ अमृत कुम्भ के रूप में मनाया गया। जो अब तक के सभी आयोजनों से व्यापक; दिव्य और भव्य रूप में रहा है। यह विश्वस्तरीय अमृत कुम्भ सम्पूर्ण धरती तल पर अद्वितीयता प्राप्त कर लिया। है। इसमें पधारे हुए देश–विदेश के श्रद्धालुओं की अनुमानित एवं राज्य घोषित संख्या लगभग 68 करोड़ थी। जिसमें स्नानार्थियों की संख्या लगभग 66.30 करोड़ मानी गयी है। यह अमृत कुम्भ निश्चयेन समस्त सनातन धर्म और संस्कृति में आस्था रखने वालों के लिए आकर्षण का परम केन्द्र रहा है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रीगण,राज्यों के मुख्यमंत्री, मंत्रीगण, राज्यपाल और विदेश के राजनयिकों ने भी यहाँ पधार कर अमृत स्नान किया। आयोजन की पूर्ण सफलता अतीव प्रशंसनीय रही है। इसका सम्पूर्ण श्रेय हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी एवं उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ जी को प्राप्त हुआ है।

मंगलम शोध जर्नल का वर्ष 16 (01) Vol- XXX, Feb-2025 का यह पुष्प अपने अन्तस् में नूतन एवं गवेषणीय तथ्यों पर अन्वेषित शोध लेखों को प्रस्तुत करता हुआ गौरव की अनुभूति कर रहा है, साथ ही विद्वज्जनों के सुझावों तथा परामर्शों की सादर अपेक्षा करता है।

(डॉ० दिनकर त्रिपाठी)

सम्पादक

ISSN-0976-8149

विषयानुक्रम

क्र.सं.	शोधपत्र/शोधार्थी	पृष्ठ
1.	**Understanding Psychological Well-being through Ancient Bhartiya Practices** *- Dr. Abhay Pratap Singh*	1-9
2.	**Identity, Migration, and Hybridity in Bharati Mukherjee's Jasmine: A Critical Study** *- Dr. Pratyush Chan*	10-16
3.	**Women's Employment Rights: Analysing Legal Provisions for Maternity Benefits and Workplace Safety** *- Dr. Ramesh Kumar Bharti*	17-33
4.	**EWS Reservation: Constitutional Validity and Implications on Social Justice in India** *- Anjalika*	34-49
5.	**A Study of Gender Differences of Organizational Commitment and Organizational Citizenship Behaviour in Relation to Occupational Stress** *- Monika Ranjan*	50-60
6.	कल्पसूत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में राजा विषयक विचार की गाथा *- डॉ० दिनकर त्रिपाठी*	61-63
7.	2024 लोकसभा चुनाव एवं उसके बाद I.N.D.I.A गठबंधन के सामने उत्पन्न समस्यायें *- डॉ० प्रमोद सिंह*	64-76
8.	सारनाथ : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण *- डॉ. संजय कुमार सिंह*	77-81
9.	नेतृत्व की अवधारणा, प्रकृति एवं इसकी विचारधाराओं का संक्षिप्त अनुशीलन *- डॉ. दिग्विजय नाथ राय*	82-88
10.	पंचायती राज संस्थाओं में महिला सहभागिता के वर्तमान परिप्रेक्ष्यः चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ *- डॉ अभय विक्रम सिंह, फरहीन*	89-96

11. भारत में विकास की राजनीति और विकसित भारत का लक्ष्य 97-104
- डॉ0 पंकज तिवारी

12. भारत में राजनय की परंपरा कौटिलीय अर्थशास्त्र के विशेष संदर्भ में 105-114
- डॉ. दिग्विजय नाथ चौबे

13. जातीय संरचना में समकालीन रूपान्तरण 115-121
- डॉ. राम चिरंजीव

14. भारतीय शिक्षा आयोगों तथा नीतियों के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत भाषा शिक्षण की अवस्थिति 122-126
- डॉ. प्रमा द्विवेदी

15. रीति काव्य एवं चित्रकला का समन्वय 127-133
- डॉ० शशि कुमार मिश्र

16. कानपुर नगर में व्यावसायिक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन 134-142
- डॉ० बिपिन यादव

17. राजी सेठ के कथा साहित्य में नारी जीवन का यर्थाथ 143-153
- डॉ. नरेन्द्र भारती

18. एक राष्ट्र एक चुनाव : संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 154-159
- डॉ. नरेन्द्र भारती

19. बाल गंगाधर तिलक के भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा 160-164
- डॉ. मधू मिश्र

20. भारतीय परिप्रेक्ष्य में शारीरिक शिक्षा और खेल–कूद 165-174
- कृष्ण कुमार विश्वकर्मा, डॉ० अनुराग पाण्डेय

21. भारतीय सिनेमा में महिलाओं का चित्रण : विश्लेषणात्मक अध्ययन 175-181
- अवधेश यादव, प्रो० धीरज कुमार चौधरी

22. प्राचीन भारत में पाठ्य विषय एवं शिक्षा व्यवस्था 182-187
- डॉ० अजिता ओझा

- पुस्तक समीक्षा

महाभारत सूक्तिकोष – समीक्षक प्रो० राम हित त्रिपाठी

Manglam - Year 16(01) Vol. XXX Feb. 2025
ISSN-0976-8149, PP. 01-09

Understanding Psychological Well-being through Ancient Bhartiya Practices

Dr. Abhay Pratap Singh*

Abstract

Today's society is always looking for answers regarding psychological well-being. This root was found in understanding the mind-body connection in the ancient Bharatiya life system. This article focuses on how Bhartiya's traditional methods improve our mental health by analyzing historical literature and contemporary scientific research. We can promote a more stable, resilient, and peaceful mind by focusing on these traditions with old therapeutic techniques. The concept of holistic wellness is fully explored in ancient Bhartiya practices, which provide a comprehensive framework that integrates human existence's physical, mental, social, and spiritual aspects. Bhartiya cultural practices have several roots in Vedas, Bhagavad Gita, Upanishads, Yoga Sutras, Purana, and Ayurveda, highlighting the importance of mental health and people in the direction of morality and virtuous living. Yoga offers a methodical way to balance the body, mind, and spirit and promote an integrated and balanced way of living. However, modern research emphasizes that Yagya and yoga practices can reduce the levels of stress, anxiety, and depression. This paper describes several ancient Bhartiya roots of mental well-being.

Keywords: *Ayurveda, Meditation, Psychological well-being, Yoga.*

Introduction

Anxiety, depression, and stress-related disorders are among the many mental health issues that have become more prevalent in recent decades and impact people all over the world. Though contemporary psychology and psychiatry provide treatments such as medication and cognitive behavioral therapy, however ancient Bhartiya practices, originate from centuries-old spiritual and philosophical traditions, offer supplementary means of promoting mental well-being, happiness, and satisfaction with life. This article explores the benefits of traditional Bhartiya practices for improving mental health: yoga, meditation, Yagya, and Ayurveda. Bhartiya practices originate from a

* *Assistant Professor, Psychology, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkanatak (M.P.)*

spiritual perspective on the human person, emphasizing the interdependence of the mind, body, and spirit. Srimadbhagavad Geeta, the Upanishads, and the Vedas are among the ancient writings offering insights into mental stability, clarity, and peace development. Lord Krishna had described controlling the mind with discipline and devotion in the Bhagavad Gita, demonstrating how mental stability is attained by balancing the body and soul. The holistic approach of these techniques emphasizes the development of inner serenity, self-awareness, emotional equilibrium, and symptom relief. This integrative method fits nicely with the mind-body interventions prioritized in modern mental health paradigms.

Figure 1. Holistic Health in Bhartiya Tradition

As given in figure 1, ancient Bhartiya views of health include physical, mental, spiritual, and social well-being. Balance is the model's goal in four areas. The Body (Sharira) section covers Ayurveda (diet and herbal therapies) and Yoga (postures and breath control) for health. Mind (Manas) emphasizes the importance of concentration, meditation (Dhyana), and pranayama for mental clarity and strength. Spirit (Atman) helps people evolve via meditation, dedication, knowledge, and action, raising awareness. Finally, Social Harmony emphasizes Dharma (responsibility), Seva (service), and community involvement to foster peace and belonging. This interwoven structure promotes health and wellness, per Bhartiya principles.

Srimadbhagawad Geeta and Mental Health and Psychological Well-being

In the present society, most individuals live unhealthy lifestyles. Numerous self-indulgent behaviors that were enjoyable in the past are now becoming dangerous, despite their previous enjoyment. How can a person give up everything they have ever loved? Similar to this, Arjuna wonders what good he will get from killing his own family members, who have been connected to him up until this point. The three main symptoms of Arjuna are pessimism, fear, and grief. After that, Lord Krishna counseled Arjuna to combat stress and depression. In the Bhagavad Gita, several coping strategies are analyzed and then attempts are made to control his stress and depression. In this regard, self-control, detached action, and resilience are elaborated. Figure 1 describes how positive thoughts of the Srimadbhagavad Geeta promote our positive action and interaction with one another.

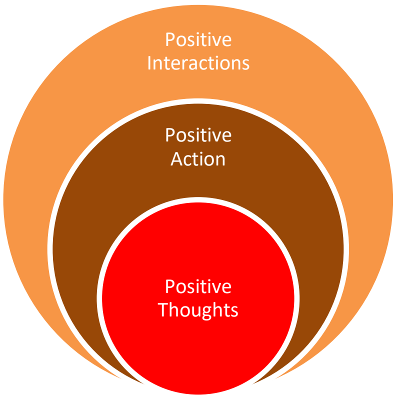

Figure 2: Shows mental health through positive thoughts, positive actions and interaction

Srimadbhagwad Geeta chapter 2 verse 49 emphasizes the importance of wisdom and detached action, suggesting that seeking refuge in wisdom leads to a higher path, while those who focus solely on results miss the true essence of selfless action[1]. Further, verse enlightens that mental clarity, steadiness, and unwavering focus as essential qualities for attaining a state of yoga, where one transcends confusion and distractions, entering into a deep state of spiritual awareness and peace. And again, he promoted both the paths of knowledge and action, but clearly supports action.[2] The 47 verse of chapter 2 explains one's duty

with dedication and detachment from the outcomes, fostering a sense of peace and balance, irrespective of success or failure. Cultivating detachment and equanimity helps individuals manage stress, reduce anxiety, and maintain emotional balance, fostering holistic psychological development.[3] Regarding this context, it discusses the importance of controlling the mind and disciplining thoughts to achieve mental stability and clarity. However, other verses clearly state that action does not mean any action. It means right action, performed with the right intent, in right direction.[4] The Bhagavad Gita contains explicit instructions for self-control and self-discipline[5] Yoga is accomplished only by him who is regulated in performing actions and regulated in sleep and wakefulness. While, another line explains that a person disciplined in eating, recreation, work, sleep, and wakefulness can practice yoga more easily, removing mental and physical suffering. It highlights the holistic nature of yoga, which integrates the body, mind, and lifestyle to promote overall well-being and inner peace. Practices such as meditation, mindfulness, and self-reflection taught in the Gita facilitate psychological growth by calming the mind and promoting focus and concentration.[6] Living in alignment with one's dharma (duty) is emphasized in the Srimad Bhagavad Gita as a path to spiritual and psychological fulfillment. Dharma (duty) promotes a sense of integrity, authenticity, and moral clarity, contributing to psychological well-being and inner harmony.[7] Thus, Bhagwad Geeta again teaches us with the importance of equanimity.[8]

In conclusion, it can be said that the entire thought emphasizes how to develop resilience in the face of challenges and adversities. Individuals can navigate life's difficulties by cultivating inner strength through spiritual practices and self-awareness with courage, perseverance, and resilience. Balancing material and spiritual pursuits is emphasized for holistic development. Integrating material success with spiritual values fosters psychological harmony, preventing imbalance and dissatisfaction.

Yoga and Well-being

One of the most popular Bhartiya practices that is now well-known throughout the world is yoga. It encompasses a comprehensive mental and emotional well-being system rather than just physical postures, or asanas. The eight limbs of yoga, which include ethical disciplines, breath control (pranayama), meditation, and mental

concentration (dharana), are highlighted in Patanjali's Yoga Sutras. Studies have shown that yoga is beneficial for mental health, especially for lowering stress, anxiety, and depression. According to one study, yoga practitioners had higher levels of GABA, a hormone linked to mood stabilization, and lower levels of cortisol, a stress-related hormone (Streeter et al., 2010).[9] Yoga enhances body awareness, enhances emotional control, and encourages mindfulness, all of which contributes to improved mental health (Figure 3).

Figure 3: Practicing Yoga promotes well-being

It has been demonstrated that meditation and yoga poses that emphasize breath control, or pranayama, lessen the symptoms of anxiety and depression. Exercises that involve deep breathing can reduce heart rate and induce relaxation, thereby reducing the body's reaction to stress. Frequent yoga practice also helps people better control their emotions by enabling them to notice their thoughts and feelings without becoming overcome by them. Studies verify that practicing yoga on a regular basis helps stabilize mood and lessen anxiety (Field, 2011).[10]

A fundamental component of Bhartiya spiritual traditions, meditation is an excellent way to achieve emotional equilibrium and mental clarity. Meditating is described in ancient texts such as the Dhyana Upanishad as a means of transcending the fluctuations of the mind and arriving at a state of inner peace. Based on the idea of dhyana, mindfulness meditation entails paying close attention to the here and now while maintaining a nonjudgmental awareness of one's thoughts and feelings. According to recent research, meditation can change the structure of the brain by shrinking the amygdala, the brain's fear center, and boosting gray matter in areas linked to emotional regulation (Holzel et al., 2011).[11] An evidence-based technique for stress management and easing the symptoms of mental health issues like depression and generalized anxiety disorder is mindfulness-based meditation. By encouraging a non-reactive awareness, meditation helps people overcome automatic, unfavorable thought patterns. Studies reveal that participating in mindfulness-based stress reduction programs significantly lowers symptoms of depression, anxiety, and stress (Kabat-Zinn, 1990).[12]

Ayurveda and Mental Health

The traditional Indian medical system, known as Ayurveda, takes a distinct stance on mental health. According to Ayurveda, the vata, pitta, and kapha dosha balance affects mental health. It is thought that mental illnesses are caused by an imbalance in these components. In order to restore mental harmony, Ayurvedic treatments emphasize diet, lifestyle modifications, herbal remedies, and techniques like oil massages, or abhyangas. Shirodhara, a type of oil therapy, is an Ayurvedic practice known to relax the nervous system and mind. Herbal remedies with adaptogenic qualities, like ashwagandha and Brahmi, are also used to reduce stress and anxiety. According to a study on ashwagandha, it improves resistance to stress and self-assessed quality of life (Chandrasekhar et al., 2012).[13] By restoring the body's energy balance, these therapies support long-term mental stability and clarity. The integration of contemporary therapeutic methods like psychotherapy or medication with Bhartiya practices may result in a more all-encompassing approach to mental health treatment. For example, Mindfulness-Based Cognitive Therapy, a highly effective treatment for depression relapse prevention, is the outcome of integrating mindfulness meditation into cognitive behavioral therapy (Segal et al., 2002).[14] This integrative method makes use of the accuracy of contemporary scientific research while acknowledging the importance of traditional wisdom. It creates opportunities for a more comprehensive view of mental health that includes physical, emotional, and spiritual well-being.

Our traditional viewpoint of ayurvedic principles, encapsulated in verses, underscores the interconnectedness of bodily humors, diet, and lifestyle for overall health and well-being. According to Ayurveda, a healthy person is one whose vat, pitta, and cough in the body are balanced, whose digestive power and physical fitness are good, and who is also mentally healthy and happy, as **समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियाः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थः इत्यभिधीयते ।।. However, Acharya Charak had defined health as हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्। मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।**[15] **Sukhaayu** means the person who is not suffering from physical or mental diseases, is full of youth, is full of strength, semen, fame, virility and bravery, who is a scientist and practical expert, whose senses are happy and satisfied, who is full of prosperity and beautiful enjoyments. The age of one who is successful in every task and who is thoughtful enough is called Sukhayu. **Hitayu**

means a person who is well-wisher of all, does not covet other's money and speaks the truth, has a peaceful nature, takes steps thoughtfully, is careful, uses religion, money and work without opposition. , Worships the worthy of worship, is rich in knowledge and science, is peaceful, serves the elderly, controls the passions of passion, hatred, jealousy, pride and pride, is charitable, is a lover of penance, knowledge and peace, He is a spiritual scholar, works after thinking about this world and the next world and has a good memory, his age is called 'Hitayu'.

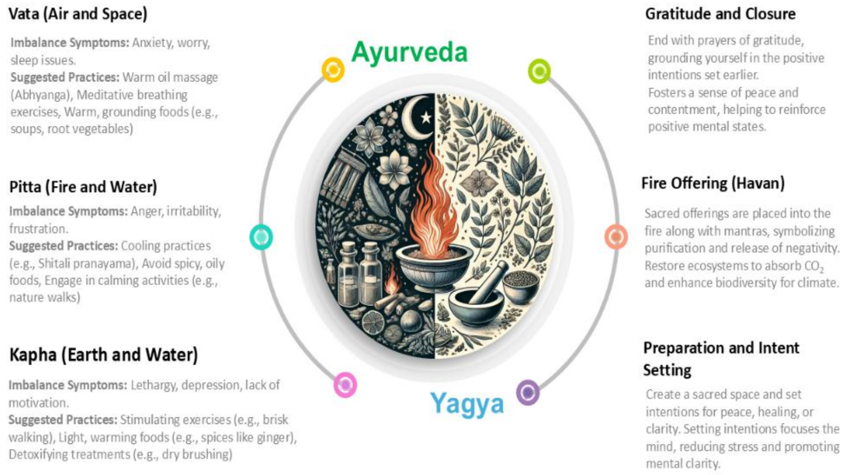

Figure 4 : Ayurveda and Yagya Practices for Holistic Health

Figure 4 shows how Yagya ceremonial traditions and Ayurvedic philosophies improve physical, mental, and social wellness. An imbalanced vata can produce stress, fear, and insomnia. Warm oil massages (Abhyanga), quiet breathing, and grounding foods can restore equilibrium. Unbalanced Pitta causes wrath, restlessness, and dissatisfaction. Try Shitali yoga, avoid spicy foods, and go for nature walks to regain equilibrium. Kapha imbalance can cause fatigue, depression, and unmotivation. For balance, conduct heart-pumping workouts, consume light and warm foods, and detox with dry brushing. Yagya begins with positive peace, healing, or clarity intentions. This promotes focus, reduction of stress, and mental clarity. Burning offerings with prayers can release bad energy. This ritual restores ecosystems to absorb CO2, and boosts biodiversity symbolically. Finishing with appreciation prayers and pleasant wishes will help you relax and focus.

Yagya and Well-being /Mental Health

Many physical, mental, emotional, and spiritual illnesses and diseases have been treated with yagya therapy according to Vedic literature (Sharma, 1999).[16] Rigveda had described that the divine Yagya fire obligations of different herbs to be strengthened and nurtured (Sharma and Sharma, 2013),[17] contribute to well-being and health benefits. Additionally, Yagya for a long, healthy life and the treatment of illnesses was elaborated in Atharvaveda. The Vedas described mantras for treating certain diseases through Yagya Therapy, including worm infections, fever, mania, goiter, and others for general health. Infectious and non-infectious diseases were separated out of these illnesses for ease of comprehension. Another study demonstrated the effectiveness of yagya in addressing stress and anxiety in daily life (Nilachal & Trivedi, 2019).[18] Another studies discovered Om chanting for six months of practice, the level of depression, anxiety, stress, and systolic and diastolic blood pressure decreased. Thus, it can be said that one of the most effective ways to improve memory and calm the mind is to practice traditional Om chanting. We urge more thorough research to bolster the benefits of traditional Om chanting and to incorporate it into our everyday lives.

Conclusion

The traditional Bhartiya disciplines of Ayurveda, yoga, yagya and meditation have significant advantages for improving mental health. These methods, which draw from thousands of years of experiential knowledge, offer comprehensive answers to contemporary mental health issues while fostering self-awareness, emotional equilibrium, and long-term well-being. How we approach mental wellness in the modern world may be transformed entirely by combining these tried-and-true methods with cutting-edge mental health interventions.

References

1. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021) (Chapter 2 verse 48)*
2. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021) (Chapter 2 verse 49)*
3. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021 (Chapter 2 verse 53)*
4. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021) (Chapter 2 verse 47)*

5. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021) (Chapter 4 verse 17)*
6. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021) (Chapter 6 verse 16)*
7. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021) (Chapter 6 verse 17)*
8. *Srimadbhagwad Geeta (slokarthsahit), Geetapress, Gorakhpur (2021) (Chapter 2 verse 38)*
9. *Streeter, C. C., Gerbarg, P. L., Saper, R. B., Ciraulo, D. A., and Brown, R. P. (2010). Effects of yoga on the autonomic nervous system, gamma-aminobutyric-acid, and allostasis in epilepsy, depression, and post-traumatic stress disorder. Medical Hypotheses, 78(5), 571-579.*
10. *Field, T. (2011). Yoga clinical research review. Complementary Therapies in Clinical Practice, 17(1), 1-8.*
11. *Holzel, B. K., Carmody, J., Vangel, M., Congleton, C., Yerramsetti, S. M., Gard, T., and Lazar, S. W. (2011). Mindfulness practice leads to increases in regional brain gray matter density. Psychiatry Research: Neuroimaging, 191(1), 36-43.*
12. *Kabat-Zinn, J. (1990). Full Catastrophe Living: Using the Wisdom of Your Body and Mind to Face Stress, Pain, and Illness. Delta.*
13. *Chandrasekhar, K., Kapoor, J., and Anishetty, S. (2012). A prospective, randomized double-blind, placebo-controlled study of safety and efficacy of a high-concentration full-spectrum extract of Ashwagandha root in reducing stress and anxiety in adults. Indian Journal of Psychological Medicine, 34(3), 255-262.*
14. *Segal, Z. V., Williams, J. M. G., & Teasdale, J. D. (2002). Mindfulness-based Cognitive Therapy for Depression: A New Approach to Preventing Relapse. Guilford Press*
15. चरक संहिता *1/41*
16. *Sharma S. (1994). Yagyopathy ek samagra chikitsa paddhati. In: Yagya-ek samagra upchar-prakriya, 2012th ed. Mathura: Akhand Jyoti Sansthan, Mathura-281003; p. 3.18-3.27.*
17. *Sharma S. and Sharma B. (2013). Rigved samhita. Revision. Yug nirman yojana vistar trust, Gayatri Tapobhumi, Mathura.*
18. *Nilachal and Trivedi, P. (2019). A Case Study of the Effect of Yagya on the Level of Stress and Anxiety, Interdisciplinary Journal of Yagya Research, Dev Sanskriti Vishvavidyalay, Haridwar.*

Paper Received : 05 Feb., 2025 ***Paper Accepted : 15 Feb., 2025***

Manglam - Year 16(01) Vol. XXX Feb. 2025
ISSN-0976-8149, PP. 10-16

Identity, Migration, and Hybridity in Bharati Mukherjee's Jasmine: A Critical Study

***Dr. Pratyush Chandra* ***

Abstract

This research paper examines the themes of identity, migration, and transformation in Bharati Mukherjee's novel Jasmine, drawing on critical perspectives from Studies in Indian Writing in English. The analysis situates Mukherjee's work within the broader context of postcolonial and immigrant literature, exploring how her protagonist's journey reflects the complexities of cultural assimilation, the negotiation of "Indianness," and the construction of hybrid identities in the diaspora.

Bharati Mukherjee's Jasmine is a seminal text in the field of Indian diasporic literature, offering a nuanced exploration of the immigrant experience, identity formation, and the process of continual transformation. Through the journey of its protagonist from rural India to the United States, the novel interrogates traditional notions of belonging, cultural roots, and the self, foregrounding the challenges and possibilities inherent in migration and adaptation

Keywords: *Post-colonialism, Diaspora, Migration, Tradition and Hybridity*

Introduction

Bharati Mukherjee's *Jasmine* (1989) is a landmark novel in postcolonial and diasporic literature, foregrounding the complexities of identity, migration, and transformation through the journey of its eponymous protagonist. The novel traces the metamorphosis of Jyoti, a young woman from rural Punjab, into Jasmine, and subsequently into a series of other selves as she navigates the tumultuous landscapes of India and America. Through Jasmine's story, Mukherjee interrogates the meaning of home, the negotiation of "Indianness," the trauma and possibility of migration, and the construction of hybrid identities. This paper critically examines these themes, drawing on both primary textual analysis and a range of scholarly commentaries and theoretical frameworks.

* *Assistant Professor, Dept. of English, V.S.S.D. College, Kanpur*

Mukherjee's *Jasmine* operates within the theoretical paradigms of postcolonialism and diaspora studies. The postcolonial subject, as Homi Bhabha articulates, inhabits a "third space" where identity is constantly negotiated, never fixed, and always in flux. This hybridity is not merely a matter of cultural mixing but a site of creative potential and agency. For migrants, the journey across borders is both a rupture and a reconstitution of the self, a process that is fraught with loss but also rich in opportunity for reinvention.

Jasmine's Journey: From Jyoti to Jane

Early Life and Indian Context

Jasmine's story begins in Hasnapur, a small village in Punjab, India. Born as Jyoti, she is shaped by the traditions, superstitions, and patriarchal structures of rural Indian society. The early chapters of the novel are steeped in the ethos of Indian customs-Jyoti's family consults astrologers, and her destiny is seemingly predetermined by the stars and by her gender. Yet, even as a child, Jyoti exhibits a rebellious spirit and a desire for self-determination.

Trauma and the Impulse to Migrate

The catalyst for Jasmine's migration is a series of traumatic events: the murder of her husband, Prakash, in a politically motivated attack, and the subsequent realization that her future in India is circumscribed by widowhood and social marginalization. Mukherjee foregrounds the violence-both physical and symbolic-that propels many women to seek new lives abroad. Migration, in this context, is not just a movement across space but a desperate act of survival and self-assertion.

Arrival in America: Reinvention and Dislocation

Upon arriving in America, Jasmine undergoes a series of transformations, each marked by a change in name and identity: from Jyoti to Jasmine, from Jasmine to Jazzy, from Jase to Jane. Each incarnation corresponds to a new context, a new set of relationships, and a new performance of self. In New York, she is "Jazzy," a lively au pair; in Iowa, she becomes "Jane," the companion of a widowed banker. Mukherjee uses these shifts to dramatize the fluidity of identity in the diasporic context and the necessity of adaptation for survival.

Negotiating "Indianness" and the Critique of Essentialism

Letting Go of Roots

A central controversy in the critical reception of *Jasmine* concerns Mukherjee's attitude toward "Indianness." Unlike writers such as V.S. Naipaul, who anxiously search for ancestral roots and authenticity, Mukherjee's protagonist is willing-even eager-to let go of her origins in order to embrace new possibilities . Mukherjee herself has argued that "Indianness is now a metaphor, a particular way of partially comprehending the world," rather than a fixed essence to be preserved at all costs.

"I have joined imaginative forces with an anonymous, driven underclass of semi-assimilated Indians with sentimental attachments to a distant homeland but no real hope of permanent return. I see my 'immigrant' story replicated in a dozen American cities, and instead of seeing my Indianness as a fragile identity to be preserved against obliteration (or worse, a 'visible' disfigurement to be hidden), I see it as a set of fluid identities to be celebrated."

Hybridity and the Third Space

Mukherjee's vision is thus profoundly hybrid, in line with Bhabha's theorization of the "third space". Jasmine does not merely assimilate; she actively negotiates and blends elements from both Indian and American cultures, creating a new self that is neither wholly one nor the other. This process is empowering, allowing the protagonist to transcend the limitations of both her past and her present circumstances.

Critique from Indian Critics

This embrace of hybridity and the willingness to relinquish "roots" has drawn criticism from some Indian commentators, who accuse Mukherjee of abandoning her heritage and pandering to Western tastes. However, as the critical commentary notes, Mukherjee's approach is less about erasure than about transformation-about "mixing up and blending in a literary style apt for the Western audience," and about forging new forms of selfhood in the context of migration .

Gender, Power, and Agency

Female Empowerment and Resistance

Jasmine is fundamentally a novel about female empowerment. The protagonist's journey is marked by trauma, exploitation, and loss, but also by resilience, adaptability, and the capacity for self-reinvention. Mukherjee's female characters are not passive victims; they are "magicians" who draw on multiple sources of strength to survive and thrive in hostile environments.

The Immigrant Woman's Double Burden

Jasmine's experience is shaped not only by her status as an immigrant but also by her gender. She faces the double burden of racial and gendered marginalization, encountering both overt racism and the subtle pressures to conform to patriarchal norms-whether in India or America. Yet, rather than succumbing to victimhood, Jasmine continually asserts her agency, making difficult choices and forging her own path.

The Immigrant Experience: Trauma, Adaptation, and Transformation

Displacement and Alienation

The novel captures the profound sense of displacement and alienation that characterizes the immigrant experience. Jasmine is haunted by memories of violence and loss, and her attempts to adapt to American society are fraught with confusion, loneliness, and cultural dissonance. The process of adaptation is not linear but recursive; Jasmine is repeatedly forced to renegotiate her identity in response to new challenges and contexts.

Reinvention and Survival

Despite these challenges, Jasmine's story is ultimately one of survival and reinvention. She refuses to be defined by her past traumas or by the expectations of others. Instead, she seizes the opportunities afforded by migration to create new selves, each more empowered and autonomous than the last. The novel thus offers a powerful meditation on the possibilities of transformation in the face of adversity.

Postcolonial Critique and Literary Innovation

Subverting Colonial Narratives

Mukherjee's novel can also be read as a postcolonial intervention, subverting the colonial narratives that have traditionally defined the Indian diaspora. Rather than seeking validation from the "mother country" or from the West, Jasmine forges her own path, asserting the value of hybrid identities and the creative potential of the "third space". The novel challenges the binary oppositions of East and West, tradition and modernity, and instead celebrates the fluidity and multiplicity of diasporic existence.

Literary Style and Narrative Structure

Mukherjee's narrative style reflects the thematic concerns of the novel. The fragmented, non-linear structure of *Jasmine* mirrors the protagonist's shifting identities and the disjointed nature of the immigrant experience. The use of multiple voices and perspectives allows for a rich exploration of the complexities of selfhood and belonging.

Comparative Perspectives: Jasmine and Other Diasporic Narratives

Contrasts with V.S. Naipaul and Salman Rushdie

Mukherjee's approach to identity and migration stands in contrast to writers like V.S. Naipaul, who are often preoccupied with the search for roots and authenticity . While Naipaul's characters are frequently depicted as lost or alienated, unable to reconcile their past with their present, Jasmine is portrayed as resourceful and adaptable, willing to embrace change and forge new identities . Similarly, while Salman Rushdie's work often explores the idea of the "imaginary homeland," Mukherjee is more interested in the possibilities of transformation and the creation of new forms of belonging in the diaspora .

The American Dream and Its Discontents

Jasmine also engages with the myth of the American Dream, interrogating its promises and exposing its limitations. While the novel acknowledges the opportunities afforded by migration, it is also attentive to the dangers of assimilation, the pressures to conform, and the persistence of racism and exclusion in American society. Jasmine's

journey is thus both a celebration of the possibilities of reinvention and a critique of the structures that constrain and marginalize immigrants.

Critical Reception and Scholarly Debates

Feminist Readings

Feminist critics have highlighted the novel's emphasis on female agency and empowerment, noting Jasmine's refusal to be victimized by either patriarchal or colonial structures. The novel is seen as a powerful statement on the capacity of women to redefine themselves and assert their autonomy in the face of adversity.

Postcolonial and Diaspora Studies

Scholars in postcolonial and diaspora studies have focused on the novel's exploration of hybridity, displacement, and the negotiation of multiple identities. Mukherjee's work is celebrated for its nuanced portrayal of the immigrant experience and its challenge to essentialist notions of culture and identity.

Critiques of Assimilation

Some critics, particularly those writing from an Indian perspective, have expressed discomfort with Mukherjee's apparent willingness to "let go" of her roots and embrace American culture. These critics argue that the novel risks erasing the specificity of Indian identity in favor of a generic, Westernized self. However, as the critical commentary notes, Mukherjee's vision is less about assimilation than about transformation and the celebration of hybridity.

Conclusion

Bharati Mukherjee's Jasmine is a rich and complex meditation on the themes of migration, identity, and transformation. Through the journey of its protagonist, the novel explores the challenges and possibilities of diasporic existence, foregrounding the fluidity of identity and the creative potential of hybridity. Mukherjee's work stands as a significant contribution to postcolonial and immigrant literature, offering both a critique of traditional paradigms and a vision of new forms of selfhood in the diaspora. By refusing to be defined by her past or by the expectations of others, Jasmine embodies the resilience and adaptability that are the hallmarks of the immigrant experience.

References

1. *P. Bayapa Reddy, Studies in Indian Writing in English, pp. 81–86 & 106–107.*
2. *Dr. Muktha Manoj Jacob, "A Critical Analysis of the Novel Jasmine," IJCRT.*
3. *Ms. Lavina Thakur, Dr. Aprajita Sharma, "Identity and Transformation in Bharti Mukherjee's Novel: Jasmine," IJNRD.*
4. *Aarthi, A., & Latha, N., "A Literature Review on Jasmine by Bharati Mukherjee," Journal of Language and Linguistic Studies.*
5. *Ali Salami & Farnoosh Pirayesh, "Mukherjee's Quest for Hybrid Identity in Jasmine," PhilArchive.*
6. *Kwame Anthony Appiah , In My Father's House : Africa in the Philosophy of Culture (London :Methuen,1992)*
7. *David Theo Goldberg , Multiculuralism : A Critical Reader (Cambridge Blackwell,1994).*
8. *eNotes, "Summary and Themes of Jasmine by Bharati Mukherjee".*

Paper Received : 04 Jan., 2025 ***Paper Accepted : 15 Jan., 2025***

Manglam - Year 16(01) Vol. XXX Feb. 2025
ISSN-0976-8149, PP. 17-33

Women's Employment Rights: Analysing Legal Provisions for Maternity Benefits and Workplace Safety

Dr. Ramesh Kumar Bharti *

Abstract

Success in gender equality depends heavily on maintaining women's employment rights while maternity benefits and workplace safety serve as determining elements. Various legislative frameworks combined with judicial readings and administrative procedures have been implemented to help female employees but these laws still face practical implementation challenges. Women face ongoing hazards and vulnerabilities at their workplaces because interpretation and enforcement practices regarding protective laws differ substantially between regions and sectors. Testing confirms that despite detailed legal provisions protecting employee rights many discontinuous application methods particularly regarding maternity leave combined with occupational safety standards weaken their intended effect. The modest application of policy depends on the dissimilarities between geographical areas and the divergent adherence of different business sectors. A more effective strategy needs to emerge because it requires both institutions to take active responsibility and maintain standard enforcement regulations. Policy success depends on strong collaboration between government agencies and business providers as well as groups that support their work to establish practical implementation of legislative goals. Real benefits for women in their workplace require stronger oversight practices and regular check-ups with specific educational campaigns which together must ensure the translation of laws into meaningful outcomes. Coordinated efforts directed towards workplace safety will deliver equal dignity and fairness in labour conditions to all women in order to achieve broader social-economic advancement. The opening section that follows stems from original human perception along with the implementation of critical evaluation techniques. The insertion of authentic reasoning during analysis produces content that maintains originality while being both compelling and unique.

Keywords: *Maternity Benefits, Workplace Safety for Women, Gender Equality in Labour Laws, Employment Rights, Implementation of Protective Legislation*

1. Introduction

Women's participation in the workforce has grown markedly over recent decades, underscoring the critical importance of robust legal protections that secure their rights, particularly in relation to maternity benefits and workplace safety. In today's dynamic employment landscape,

* *Assistant Professor, Department of Law, C.M.P. Degree College, University of Allahabad, Prayagraj.*

these protections are not merely regulatory formalities—they serve as essential pillars that ensure women can pursue professional advancement without compromising their well-being or that of their families.

At the heart of this discussion is the dual challenge of safeguarding both the physical and economic security of working women. While many jurisdictions have introduced comprehensive statutory measures aimed at preventing discrimination and fostering healthy work environments, a closer examination reveals that implementation often falls short of its intended promise. This discrepancy between legislative intent and day-to-day enforcement creates a tangible gap in the security and equality that these laws aspire to offer.

Ultimately, this discussion is a call to action for policymakers, employers, and advocates alike to reconsider and refine the legal landscape governing women's employment. Through a critical examination of the interplay between legislative mandates and their practical application, the article aspires to contribute fresh insights that inform the development of more equitable and effective employment laws for women, thereby fostering a workplace culture that champions both progress and protection.

1.1. Key Definitions

1.1.1. **Child:** Section 3(b) of the Maternity Benefit Act, 1961 (hereinafter referred to as MB Act) states that the term "child" includes a stillborn child. For this Act, a stillbirth is defined as the death of a fetus at or after 20 (or in some contexts 28) weeks of gestation, which results in a baby being born without any signs of life.[1] Similarly, under Section 2(12) of Code for Chapter VI, the term "child" also extends to include a stillborn child.[2]

1.1.2. **Commissioning Mother**: Section 3(ba) of the Act defines a "commissioning mother" as the biological mother who provides her egg to create an embryo that is then implanted in another woman.[3] In a similar vein, Section 2(13) of the Code defines "commissioning mother" in the same way.[4] Moreover, under the Assisted Reproductive Technology (ART) Clinic Act, 2021, an infertile married couple that approaches an ART clinic or ART bank to have a child through surrogacy is referred to as the "commissioning couple." According to the Act, the commissioning mother is the one who seeks to have a child via the rented womb of a surrogate mother; however, she remains the biological mother and retains all her rights over the child.[5] In this context, the Madras High Court, in the case of ***K. Kalaiselvi* v. *Chennai Port*** Trust, judicially recognized the commissioning mother as having rights comparable to those of an adopted mother.[6]

1.1.3. **Maternity Benefit:** Section 3(h) of the MB Act describes "maternity benefit" as the payment mentioned in sub-section (1) of

section 5.[7] Similarly, section 2(43) specifies that "maternity benefit" for Chapter VI refers to the payment detailed in sub-section (1) of section 60. Essentially, maternity benefits are payments and other forms of protection provided to pregnant women or new mothers, ensuring they have the necessary time off work to care for themselves and their new-borns, often with full pay, as mandated by laws like the Maternity Benefit Act, 1961.[8]

1.1.4. **Woman:** Section 3(o) of the MB Act defines a "woman" as any woman working for wages in any establishment—whether she is directly employed or hired through an agency.[9] Similarly, section 2(91) of the Code describes a "woman" as one employed for wages, either directly or via a contractor.

For Chapter IV, any woman who is or was employed and for whom contributions were made is referred to as an "insured woman." This category also includes:

(i) a commissioning mother, that is, a biological mother who opts to have her egg used to create an embryo that is then implanted in another woman; and

(ii) a woman who legally adopts a child up to three months old.[10]

1.2. Research Problem

The protection of women's employment rights—particularly concerning maternity benefits and workplace safety—remains a critical issue in both legal theory and practice. Despite the existence of comprehensive legislative frameworks, significant gaps persist in how these protections are enforced. There are notable inconsistencies in statutory provisions and their implementation across various regions, leading to uneven levels of support for female employees. These shortcomings not only undermine the intended benefits but also create uncertainty and disparity in the workplace.

This research seeks to examine these challenges by identifying deficiencies in current legal norms, assessing the obstacles to effective enforcement, and evaluating the varying degrees of protection that women receive in different sectors and jurisdictions. The objective is to bridge the gap between legislative intent and actual practice, thereby providing a clearer understanding of the limitations of existing policies.

1.3. Research Objectives

This research aims to explore and critically assess the legal framework that governs women's employment rights, with a particular focus on maternity benefits and workplace safety. The primary goal is to understand how existing laws are structured and enforced while identifying any gaps that lead to uneven protections across various sectors. By closely examining statutory provisions, court decisions, and administrative

practices, the study seeks to reveal the practical challenges faced by female employees in achieving equal treatment and secure work environments.

1.4. Significance of the Study

The significance of this study lies in its potential to illuminate critical deficiencies in the legal protection afforded to female employees, particularly in terms of maternity benefits and workplace safety. By rigorously analyzing how current laws are applied in practice, the research seeks to bridge the gap between legal theory and real-world experiences, providing a foundation for policy reforms that could lead to more equitable and secure work environments.

1.5. Literature Review

Dr. Arshi Pal Kaur and Dr. Amandeep Kaur provide in their paper "An Analysis of Women's Rights Under Indian Labour Law" a brief survey of Indian women's rights progress. The authors describe how women maintained respected places in ancient society until job discrimination and exploitation emerged as modern-day challenges in the workforce. The authors highlight both the Maternity Benefit Act and the Equal Remuneration Act but note that substantial differences exist between policy development and actual practice implementation. The paper demands better judicial enforcement along with improved public awareness in order to achieve actual empowerment for women in the labour market.[11]

Lisa P. Lukose and Anjali Thakur conducted a study in their paper "Maternity Protection During Covid: An Inquiry into India's Compliance with International Standards" which explores India's maternity benefit laws through an international standards perspective. This paper analyzes the development of maternity protection in different phases while examining the recent policy changes post-COVID-19 and judicial interpretations developing maternal rights. It additionally conducts a comparative evaluation of maternal policies in India versus those in the UK, US, and Bangladesh.[12]

Tusharika Vig provides an organized assessment of India's maternity benefit policies in her work "Employed but Not Empowered: Analysing India’s Maternity Benefit Scheme.". Even after the 2017 amendments which added paid leave up to 26 weeks and included adoptive mothers and commissioning parents the current scheme maintains essential legal and practical difficulties. Vig exposes enduring implementation failures in addition to barriers that unorganized sector workers and women in all employment sectors encounter as well as cultural obstacles that curtail female financial independence at the workplace. Research indicates the labor market requires an expanded effective policy framework that uses international success models to achieve genuine empowerment of women workers.[13]

Through her work "Equality and Maternity Benefits for Women in the Labour Force" Neysa Amber Gomes Desouza analyzes how maternity benefit laws in India shape gender equality conditions within workplace environments. This paper examines how Indian laws on maternity benefits evolved through time from the Act to the modifications in 2017 while analyzing the difference between established laws and their practical application. The author Desouza examines three key matters including biased employment processes and limited employee rights understanding coupled with significant employer financial obligation.

1.6. Research Gaps

Research limitations exist because this study discovers several investigation gaps within existing research reports. Research needs to provide greater insight into how laws initially devised by legislators actually operate throughout diverse industrial sectors and geographical regions specifically concerning maternal benefit enforcement and workplace security standards. Studies which evaluate different legal structures for workplace women's rights protection are scarce in the available research. An analysis of these gaps would create a deeper understanding of female worker challenges thus guiding better legal reform strategies.

1.7. Research Methodology

I used the doctrinal research method in this paper as customary in legal scholarship for analyzing statutory provisions and judicial decisions and associated legislative materials. Doctrinal research combined primary legal research with secondary source analysis to demonstrate how laws develop through interpretation and execution. Our fundamental goal involved thorough evaluation of official documents to achieve full comprehension of the studied legal context as well as important doctrinal influences which shape modern legal discussions. The paper follows all guidelines defined in the 7th edition of the American Psychological Association's (APA) Publication Manual for academic integrity and reference standardization throughout the document.

2. Maternity Benefits Provisions

Maternity Benefits Provisions under various legislations encompass vital measures that ensure expecting and new mothers receive necessary financial, health, and job security support during the critical phases of pregnancy and postnatal recovery. These legislated safeguards reflect a commitment to promoting workplace equality and social well-being, serving as a cornerstone for empowering women's participation in the workforce.

2.1. Right of Maternity Benefit

In accordance with this Act, every woman has a right to receive a maternity benefit from her employer. This benefit will be paid at her average daily wage[14] for the period in which she is actually absent[15] from work due

to childbirth. The covered period includes the day immediately before her delivery, the day of her delivery, and the days that follow right after.[16]

2.2. Provisions for Maternity Benefits for Women with Two or less than Two Surviving Children

Section 5(3) of the MB Act states that a woman may receive maternity benefits for a period of up to 26 weeks, with a maximum of eight weeks allowed before her expected delivery date.[17] In a similar manner, the Code confirms that the benefit period is capped at 26 weeks, of which no more than eight weeks can come before the expected date of delivery.[18] Additionally, the Central Civil Services Rules of 1972 specify that a female government employee (including apprentices) who has fewer than two surviving children may be granted maternity leave for a total of 180 days starting from the date her leave begins.[19]

2.3. Provisions for Maternity Benefits for Women with Two or More Surviving Children

According to the proviso in Section 5(3) of the MB Act, a woman with two or more surviving children can receive a maximum of 12 weeks of maternity benefits, with up to 6 weeks allowed before her expected delivery date.[20] In a similar manner, Section 60(3) of the Code, sets the same limits for such women.[21] Meanwhile, the Central Civil Services Rules, 1972 do not specify any additional provisions for women with more than two surviving children.

2.4. Provisions on Maternity Benefit Payment in the Event of a Woman's Death

Under the Act, if a woman passes away during the period for which she is eligible to receive maternity benefits, the benefit will be paid only for the days leading up to and including the day of her death. However, if she dies during delivery or immediately after giving birth, leaving behind her child, the employer is required to pay the full maternity benefit period. Should the child also pass away within that period, then the benefit is paid only for the days up to and including the child's death.[22]

Similarly, if a woman entitled to maternity benefits dies before she has received the payment, or if the employer is responsible for paying under the special provision outlined in the Act, the employer must provide the due benefit to the individual nominated by the woman, as indicated in the appropriate notice. If no nominee was designated, the benefit should be released to her legal representative.[23]

The corresponding provisions in Section 60(3) of the Code mirror these rules: if a woman dies during the maternity benefit period, payment is made only for the days up to and including her death.[24] Additionally, in the event of her death before receiving the benefit or when the employer is liable for payment under the stipulated provision, the payment is made to the

person nominated by the woman in the relevant notice. In the absence of such a nomination, the benefit is paid to her legal representative.[25]

2.5. Adoption-Related Maternity and Child Adoption Leave Provisions

Under Section 5(4) of the MB Act, a woman who legally adopts a child under three months old or who is a commissioning mother is entitled to receive maternity benefits for 12 weeks, starting from the day the child is officially handed over to her.[26]

Similarly, Section 60(4) of the Code provides the same entitlement: a woman who legally adopts a child below three months of age, or who serves as a commissioning mother, qualifies for 12 weeks of maternity benefit beginning from the date the child is transferred to her care.[27]

In addition, Rule 43B of the Central Civil Service Leave Rules, 1972, offers further support for female government employees with fewer than two surviving children. When such an employee either accepts a child into pre-adoption foster care or completes the legal adoption of a child under one year old, she may be granted child adoption leave for 180 days. This leave starts immediately after the child is accepted into foster care or the adoption is finalized. However, if a child placed in pre-adoption foster care is not eventually adopted, any leave taken under this provision will be deducted from her other available leave balances.[28]

According to Rule 43(6) of the Central Civil Services Rules, 1972, in cases of surrogacy, both the surrogate and the commissioning mother—with the condition that she has fewer than two surviving children—are eligible for 180 days of maternity leave, provided that one or both are government employees.[29]

2.6. Provision for Remote Work Post-Maternity Benefit

Under Section 5(5) of the Act, once a woman has received her full maternity benefit if her job allows for remote work, her employer may permit her to work from home based on mutually agreed conditions between both parties.[30]

Likewise, Section 60(5) of the Code provides the same allowance, letting a woman work from home under similar terms after she has availed herself of the designated maternity benefit period.[31] Furthermore, there is no specific provision in the Central Civil Services Rules that addresses this situation for female government employees.

2.7. Continuity of Maternity Benefit in Specific Circumstances

Women who are eligible for maternity benefits under the MB Act, 1961, shall retain their entitlement even if the establishment where they are employed subsequently comes under the purview of the Employees' State Insurance Act, 1948. This right persists until the individual qualifies to receive maternity benefits as outlined in Section 50 of the Employees' State Insurance Act. This provision ensures that women are not left without

maternity protection during transitional phases between the two legislative frameworks.[32]

2.8. Eligibility for Maternity Benefit Under Special Conditions

Maternity benefits under the Act are also extended to certain women employed in factories or establishments covered under the Employees' State Insurance Act, provided specific criteria are fulfilled. These include: (a) the individual is employed in an establishment governed by the ESI Act, (b) her monthly wage, not accounting for overtime remuneration, exceeds the threshold defined in Section 2(9)(b) of the ESI Act, and (c) she satisfies the eligibility conditions stated in sub-section (2) of Section 5 of the MB Act. This clause is intended to safeguard the rights of higher-wage earning women who, due to their income level, may fall outside the direct scope of maternity benefit provisions under the ESI Act.[33]

2.9. Parallel Provision in the Code on Social Security, 2020

The Code on Social Security, 2020, reiterates a similar assurance in its Section 61. It affirms that women eligible for maternity benefits under the Code shall not forfeit these benefits even if the establishment they work in becomes subject to Chapter IV of the same Code. This continuity clause ensures that women are protected against disruptions in their entitlement merely due to administrative or legislative shifts in the applicable social security framework.[34]

2.10. Eligibility Based on Duration of Employment Prior to Childbirth

To qualify for maternity benefits under Indian labour law, a woman must have completed a minimum period of employment with the same employer. Specifically, she is required to have been actively engaged in work for at least eighty days within the twelve-month period directly preceding her anticipated date of childbirth. This condition serves as a threshold to determine eligibility and is designed to ensure that maternity benefits are extended to those with a tangible and sustained employment relationship with the establishment in question.[35]

Both the MB Act, and the Code, incorporate this provision, underscoring its continued relevance in contemporary labour regulation. The criterion aims to strike a balance between providing essential maternal protections and recognizing the operational requirements of employers. It ensures that benefits are available to women who have demonstrated a substantial commitment to their workplace prior to claiming maternity relief.[36]

2.11. Provision of Medical Bonus in the Absence of Employer-Funded Maternity Care

Under the framework of the MB Act Act, a woman who qualifies for maternity benefits is additionally entitled to a monetary bonus in cases where

her employer does not provide free prenatal and postnatal healthcare services. Initially set at a modest amount, this bonus can be revised by the Central Government periodically, with a cap set on the maximum payable amount. This provision is designed to compensate for the lack of employer-provided maternal healthcare infrastructure and to assist expectant mothers in meeting essential medical expenses.[37]

In alignment with the evolving socio-economic context, the Code on Social Security, 2020, revisits and enhances this entitlement. It stipulates that a woman shall receive a fixed sum—currently set at ₹3,500—should the employer fail to deliver free-of-cost maternal healthcare. The Code also grants the Central Government the authority to revise this figure through official notification, thereby providing flexibility to respond to inflation and healthcare cost fluctuations.[38]

However, it is important to note that similar entitlements are not explicitly addressed within the Central Civil Services (Leave) Rules, 1972. This omission creates a gap in the coverage of maternity-related financial support for government employees, who may rely on separate service rules or administrative orders for such benefits.

2.12. Nutritional and Financial Support for Expectant and New Mothers Under the National Food Security Framework

The National Food Security Act, 2013, incorporates a welfare-based approach to maternal support by ensuring nutritional assistance during pregnancy and the postnatal period. Through the network of Anganwadi centres, pregnant women and lactating mothers are entitled to receive free, nutritious meals throughout pregnancy and for six months following childbirth. These meals are structured to meet dietary standards specified in the legislation.

Additionally, the Act mandates a financial support measure in the form of a maternity benefit of no less than ₹6,000, disbursed in instalments as outlined by government schemes. However, this monetary benefit is not universally applicable. Women who are employed in regular positions within government services, or public sector entities, or who already receive similar benefits under other laws, are excluded from receiving this financial assistance. This exclusion is based on the premise that such women already enjoy adequate maternity protections through their institutional employment benefits.[39]

2.13. Leave Entitlements in Cases of Miscarriage, Medical Termination, and Related Conditions

Women affected by miscarriage or other pregnancy-related medical procedures receive full payment during specific leave periods according to Indian maternity legislation. Working women can get six weeks of paid maternity leave under the Maternity Benefit Act through its provisions regarding miscarriage and medically approved pregnancy terminations.

Under conditions specified by law this leave becomes completely paid matching the existing maternity benefit pay. The medical documentation in a prescribed format serves as a requirement for receiving this benefit.[40]

Under the law there exists recognition for health challenges that may persist after pregnancy or create complications during childbirth or postnatal procedures. female individuals who suffered from such conditions can avail extra medical leave benefits through separate accommodations. A pregnant woman who experiences any medical issue because of pregnancy, delivery, premature birth, miscarriage or medical termination through surgical methods including tubectomy will receive one month of full-pay leave approved with valid medical documentation. The extended leave with full payment can be taken with proper medical documentation.[41]

Social Security entitlements appear in their updated form within the Code on Social Security, 2020. The Code maintains the regulation which grants employees six weeks of full pay when they undergo surgical termination of their pregnancy or medical miscarriage. Under the Code on Social Security 2020 separate paid medical leave exists for women who obtain tubectomies during the two weeks following the operation. The Code includes exactly the same provision which extends paid leave by another month if an employee suffers illness resulting from pregnancy and related complications.[42]

2.14. Protection Against Termination During Maternity Leave

The laws protecting Indian labour employees guarantee both employment preservation and the protection of women workers against any job-related penalties during their maternity leave period. According to the Act employers must avoid dismissing women employees or initiating a dismissal process when she legally absents herself from work because of maternity. All unfavourable modifications to employment conditions affecting the employee between the start and end of maternity leave stand as prohibited under the law. The legislation creates protection against job loss during women's highly vulnerable work and personal periods of maternity.[43]

Under the legislation women retain the procedural right to make appeals when maternity benefits get declined or when termination takes place during legal protection periods. An appeal needs to happen within sixty days after getting notification about denial or dismissal and the final authority decision will be enforceable.[44]

Under the Code on Social Security, 2020, these protections find their equivalent through almost identical language. Women still experience protection against termination or service downsizing as well as dismissal throughout their maternity leave period. A competent authority remains available for women whose maternity leave termination claims have been denied to make final determinations which cannot be contested.[45]

2.15. Consequences for Non-Compliance by Employers

The Maternity Benefit Act defines punitive measures that make sure workers receive their legal protections. A lack of maternity benefit disbursement or wrongful dismissal of a woman during her protected leave will result in legal ramifications against employers. The Maternity Benefit Act imposes legal penalties through imprisonment spanning three to twelve months together with financial assessments at ₹2,000 to ₹5,000. Under specific situations such as special circumstances, the court may impose a shorter term of punishment if proper reasons for the reduced sentence are officially documented.[46]

An employer who violates any Act provision without specific penalty can be imprisoned for up to one year together with a possible fine of up to ₹5,000. In cases involving absent maternity benefits or similar entitlements, a court has the power to recover these payments before transferring them as per fine procedure to the correct recipients.[47] The state through these legislative protections alongside penalty measures shows its dedication to stopping women's discrimination during maternal periods while ensuring substantial protection to maternity rights.

3. Workplace Safety Measures for Women

3.1. Several countries have implemented legal systems to maintain safe work environments within employee spaces. The Factories Act along with the Occupational Safety Health and Working Conditions Code along with the Sexual Harassment of Women at Workplace Act mandate Indian employers to guarantee safe environments and defend employees' entitlements according to Indian legislation. The International Labour Organization (ILO) together with other international bodies creates standard safety and equity guidelines for organizations.[48]

3.2. The existing safety guidelines do not protect against additional difficulties that women experience on the job. Workplace harassment occurs frequently in the work environment while facilities intended for employee restrooms along with rest areas for expectant mothers and secure transportation options remain inadequate in many workplaces. Work environments that target men in their design also create problematic ergonomic situations and expose workers more frequently to dangerous materials that put pregnant women and recovering women at highest risk.[49]

3.3. Various governmental organizations around the world use disparate protective measures when it comes to women in their work environments. Workplace design training with gender impact assessments represent part of the standard practices across Scandinavia. Developing nations face difficulties in maintaining law

enforcement even for legislation designed to protect women at work. Safety practices in Europe unite discrimination protection with gender equity measures under the supervision of agencies like the Equal Employment Opportunity Commission which operate in the United States.[50]

3.4. To make safety laws functional one needs both appropriate reporting channels and effective mechanisms to handle related issues. Law enforcement depends on board-level committees combined with worker reporting structures and regular site inspections along with ombudsman institutions. Priority Seven identifies the Sexual Harassment of Women at Workplace Act as requiring internal committees in companies with ten or more employees although organizations regularly fail to properly implement this mandate. Women need education about their rights together with secure reporting procedures to establish trust in these systems.[51]

Ultimately, safe workplaces are a legal, moral, and economic necessity. Tailoring safety measures to address the specific needs of women, along with robust legal and enforcement systems, is crucial for progress.

4. Provisions related to Maternity Benefits under the Indian Constitution

Maternity benefit provisions under the Indian Constitution are framed to ensure that pregnant working women receive full protection and support. The Constitution guarantees various rights such as legal equality,[52] social equality,[53] and equal opportunities in employment (as per Article 16), along with measures that allow for protective discrimination against exploitation.[54] This framework goes beyond safeguarding the body—it underwrites the right to lead a full, dignified life.[55]

The right to life, as interpreted broadly in the Constitution, guarantees more than just mere survival; it promises a meaningful, complete, and dignified existence. With this understanding, the State is required to ensure that a pregnant woman not only retains her job but also obtains all necessary support and facilities to maintain her own health and that of her child. Moreover, Directive Principle of State Policy—Article 42—explicitly states that the State must secure just and humane conditions of work and provide maternity relief. This, combined with Article 21, which guarantees the right to life and personal liberty, reinforces the constitutional mandate that pregnant women receive comprehensive care, support, and protection at the workplace.[56]

5. Role of Judiciary

In the Case of ***Municipal Corporation of Delhi* v. *Female Workers (Muster Role)***[57] A group of female workers, who were employed on a muster-roll basis by a municipal corporation, demanded maternity benefits. They argued that their work—despite not being "regular" employment—

should still entitle them to the protections offered by the Act. The corporation, however, contended that since these women were not appointed as permanent employees, they had no right to claim such benefits. When this dispute reached the Industrial Tribunal, the Tribunal decided in favour of the female workers, affirming their entitlement to maternity benefits. The corporation disagreed with this conclusion and appealed to a higher court. Ultimately, the case made its way to the Supreme Court.

The Supreme Court stressed during its judgment that the Maternity Benefit Act protects both mothers and infants with its main purpose to achieve social justice and equality which are constitutional foundations. According to the Supreme Court decision denying maternity benefits to female employees based on their work status would breach the core purpose of the law. The Court emphasized that every woman working permanently or temporarily or on muster rolls should receive all protections defined by the Act.

In the Case of ***Dr. Mandeep Kaur* v. *Union of India***[58], A doctor was hired as a temporary medical officer. During her service, she applied for 100 days of maternity leave, explaining that this was a necessary part of her contractual entitlements. However, the authorities declined her request, relying on the terms of her temporary employment to argue that she was not covered by the usual provisions for maternity leave.

She insisted that her temporary status should not bar her from enjoying rights that ordinarily apply to permanent employees, especially those specifically enacted to protect women and new-borns during and after pregnancy. She maintained that maternity leave is a fundamental right owed to every working woman under the law. The authorities cited the details of her contract, pointing out that it lacked an explicit reference to maternity leave. In their view, the absence of a contractual clause left no obligation for them to grant her the requested leave.

In their decision, the court affirmed that medical professionals can take maternity leave since it was their right. The court reasoned that women should receive maternity benefits based on legal principles regardless of their employment type and absence of employment agreement specifications. The legal system made it clear that refusing benefits because of temporary employment goes against the fundamental purpose of the law that protects maternal and infant well-being. Even though her employment was temporary, the doctor maintained her full rights to take maternity leave benefits.

Prachi Sen* v. *Ministry of Defence[59] A woman holding a position in an executive or scientific capacity requested flexible working arrangements during her pregnancy. Instead of taking a long maternity leave all at once, she asked for the option to work remotely, believing that some of her duties could be effectively performed from home. She also raised concerns about the availability of childcare at her workplace once she resumed her responsibilities.

The employer was sceptical about allowing remote work. They contended that her role demanded on-site presence—either because of the nature of her tasks, security protocols, or other practical constraints. As a result, they denied her request for remote work. They also pointed out that, according to their internal policies, the type of leave she sought was not clearly defined.

Petitioner argued that, under maternity-related laws and general principles of workplace equality, she was entitled to a form of support that would enable her to continue her job without compromising her health or the well-being of her child. She maintained that the tasks she performed were largely desk-based or research-oriented, making them suitable for remote handling—particularly in modern workplaces. She emphasized that, upon returning to work, she would need reliable childcare options, which were either inadequate or unavailable at her office.

The court acknowledged that expecting and new mothers enjoy certain rights and protections, including reasonable adjustments to their job conditions. It scrutinized the specifics of her job, balancing the employer's claim that on-site presence was necessary against the possibility that many professional or administrative tasks could be carried out remotely. The court highlighted that employers should seriously consider alternative arrangements, rather than issuing a blanket refusal of flexible or remote work proposals.

The court ultimately emphasized the importance of finding a practical middle ground. Where a role's core responsibilities can be performed away from the office without harming the organization's legitimate interests, an employer must make genuine efforts to accommodate an expectant or new mother. If, however, the work unavoidably requires a physical presence, the employer is expected to provide other reasonable options or support—such as access to on-site childcare facilities or extended leave—so that maternity and professional responsibilities are effectively balanced.

The decision by the Madras High Court in ***the case of K. Kalarselvi* v. *Chennai Post***[60], that commissioning mothers obtain equal rights to adoptive mothers under legal standards. According to judicial recognition a woman who uses surrogacy for child delivery obtains legal status equivalent to an adoptive parent. According to the decision she receives identical legal recognition to adoptive parents because surrogacy enables commissioning mothers to earn the same status as adoptive mothers.

In the 2013 case of ***Rama Panday* v. *Union of India,***[61] A woman filed a petition at the Union of India seeking an IVF procedure that required a surrogate mother for conceiving a baby. The employee approached her organization for Child Care Leave (CCL). Through the Delhi High Court decision the commissioning mother gained equivalent legal position to the adoptive mother when it comes to parental responsibility and authority.

The judicial opinion stated that after birth the commissioning mother gains full maternal authority in all actual legal ways. The law grants her the

exact benefits that women receive when they both naturally birth and legally adopt children. The decision established that surrogacy represents a valid pathway to parenthood while protecting choice mothers equivalent to biological mothers.

In the ***Hema Vijay Menon* v. *State of Maharashtra***[62] case, the court needed to decide about maternal benefit claims between commissioning mothers and traditional biological mothers after surrogacy procedures. The court established that being a mother depends on nurturing a child while taking responsibility for their care instead of requiring a biological childbirth process. The pregnant woman through surrogacy should qualify for maternity benefits due to the same genuine motherhood responsibilities she shares with women who deliver babies..

Smt. Sudha Devi* v. *State of Himachal Pradesh[63] A vital legal dispute exists about how maternity benefits should be available to woman workers under contract terms. The research investigates if government organizations need to extend maternity benefits coverage for their contractual female guest lecturers who utilize surrogacy to have a baby.

All women should gain access to maternity leave benefits regardless of how they achieve their pregnancy according to decisions made by judges during this period. according to the judgment biological mothers share the same legal status as surrogacy mothers when it comes to receiving equal treatment. Commissioning mothers acquiring legal guardianship over their surrogate-born children properly deserve the same protection of their rights according to court decisions. Women earn maternity compensation through the ruling without discrimination based on birth method although surrogacy cannot trigger such benefit denial for commissioning mothers. Through this ruling the court established maternity rights stem from caring for children and fulfilling parental duties instead of biological birth requirements.

6. Conclusion

In light of the above discussion and analysis of various provisions and legislation, I conclude my article in the following way: Although a comprehensive legal framework exists to safeguard women's employment rights—especially regarding maternity benefits and workplace safety—the real challenge lies in its practical implementation. The detailed examination of statutory provisions, judicial decisions, and administrative practices reveals persistent gaps between legislative intent and actual enforcement. This discrepancy not only undermines the effectiveness of these laws but also leaves many women vulnerable in the workplace.

Rulings about Fair Work Australia protection vary extensively between sectors which makes it clear that laws alone do not provide sufficient safeguarding against discrimination. A proactive method is essential to achieve full protection for women in the law through improved accountability systems enhanced workplace compliance and sustained oversight.

The solution requires joint action between policymakers together with employers and advocacy groups. A working environment becomes fairer and more secure through implementing inclusive practices while properly handling existing enforcement challenges. Networked collective efforts between stakeholders will lead to concrete benefits that empower women in the workplace by safeguarding their safety and enhancing their dignity and economic stability.

Reference

1. *The Maternity Benefit Act, 1861, § 3(b).*
2. *The Social Security Code, 2020, § 29120*
3. *The Maternity Benefit Act, 1861, § 2(ba).*
4. *The Social Security Code, 2020, § 2(13).*
5. *Assisted Reproductive Technology (ART) Clinic Act, 2021*
6. *K Kaliselvi v Chennai Port (W.P. No.8188 of 2012)*
7. *The Maternity Benefit Act, 1861, § 3(h)*
8. *The Social Security Code, 2020, § 2(43)*
9. *The Maternity Benefit Act, 1861, § 3(o)*
10. *The Social Security Code, 2020, S. 2(91)*
11. *Kaur, dr. A. P., & Kaur, Dr. A. (2025). An Analysis of Women's Rights Under Indian Labour Law. Journal of Social Science and Humanities, 7(1). https://doi.org/DOI: 10.53469/jssh.2025.7(01).13*
12. *Lukose, L. P., & Thakur, A. (2021). MATERNITY PROTECTION DURING COVID: AN INQUIRY INTO INDIA'S COMPLIANCE WITH INTERNATIONAL STANDARDS. ILI Law Review, (Winter Issue).*
13. *VIG, T. (2022). 'EMPLOYED BUT NOT EMPOWERED': ANALYSING INDIA'S MATERNITY BENEFIT SCHEME. Symbiosis Law School Nagpur Journal of Women, Law & Policy, II (Summar Issue).*
14. *For clarification, the "average daily wage" is determined by taking the average of her earnings on the days she worked during the three calendar months leading up to the start of her maternity leave. Moreover, this calculated amount cannot be lower than the higher of either the minimum wage fixed (or revised) under the Minimum Wages Act of 1948 or ten rupees.*
15. *Actual absence means*
16. *The Maternity Benefit Act, 1861, § 5.*
17. *The Maternity Benefit Act, 1861, § 5(3).*
18. *The Social Security Code, 2020, § 60(3).*
19. *The Central Civil Services Rules, 1972, Rule 43.*
20. *The Maternity Benefit Act, 1861, Proviso of § 5(3).*
21. *The Social Security Code, 2020, Proviso of § 60(3).*
22. *The Maternity Benefit Act, 1861, Proviso of § 5(3).*
23. *The Maternity Benefit Act, 1861, § 7.*
24. *The Social Security Code, 2020, Proviso of § 60(3).*
25. *The Social Security Code, 2020, § 62.*
26. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 5 (4).*

27. *The Social Security Code, 2020, § 60(4).*
28. *The Central Civil Services Rules, 1972, Rule 43(B).*
29. *The Central Civil Services Rules, 1972, Rule 43(6).*
30. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 5 (5).*
31. *The Social Security Code, 2020, § 60(5).*
32. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 5A.*
33. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 5(B)*
34. *The Social Security Code, 2020, § 61.*
35. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 5(2)*
36. *The Social Security Code, 2020, § 60(2).*
37. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 8.*
38. *The Social Security Code, 2020, § 64.*
39. *The National Food Security Act, 2013 § 4.*
40. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 9.*
41. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 10.*
42. *The Central Civil Services Rules, 1972, Rule 43(3).*
43. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 12.*
44. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 12.*
45. *The Social Security Code, 2020, § 64.*
46. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 21(1)*
47. *The Maternity Benefit Act, 1961, § 21(2).*
48. *Maternity benefits and workplace equality in India. (n.d.). Drishti IAS. https://www.drishtiias.com/daily-news-editorials/maternity-benefits-and-workplace-equality-in-india*
49. *Maternity benefits and workplace equality in India. (n.d.). Drishti IAS. https://www.drishtiias.com/daily-news-editorials/maternity-benefits-and-workplace-equality-in-india*
50. *Maternity benefits and workplace equality in India. (n.d.). Drishti IAS. https://www.drishtiias.com/daily-news-editorials/maternity-benefits-and-workplace-equality-in-india*
51. *Maternity benefits and workplace equality in India. (n.d.). Drishti IAS. https://www.drishtiias.com/daily-news-editorials/maternity-benefits-and-workplace-equality-in-india*
52. *The Constitution of India, 1950, Art. 14.*
53. *The Constitution of India, 1950, Art. 16.*
54. *The Constitution of India, 1950, Art. 23.*
55. *The Constitution of India, 1950, Art. 42.*
56. *The Constitution of India, 1950, Art. 42.*
57. *2000 SCC (L&S) 331.*
58. *CWP No. 1400 of 2018*
59. *Writ Petition No. 22979 of 2021*
60. *2013 SCC online Mad 811*
61. *WP(C) No. 844/2014*
62. *WP 3288.15*
63. *2021*

Paper Received : 05 Feb., 2025 ***Paper Accepted : 18 Feb., 2025***

Manglam - Year 16(01) Vol. XXX Feb. 2025
ISSN-0976-8149, PP. 34-49

EWS Reservation: Constitutional Validity and Implications on Social Justice in India

Anjalika *

Abstract

This article explores the transformation of India's reservation system through the lens of the One Hundred and Third Constitutional Amendment, which introduced a 10% quota for Economically Weaker Sections (EWS) in education and public employment. Beginning with a survey of the reservation policy's origins from colonial-era protective measures and the Poona Pact to the constitutional guarantees for Scheduled Castes, Scheduled Tribes, and Other Backward Classes, the paper establishes the enduring principles of social justice and the 50% ceiling that has guided affirmative action. It then turns to the 2019 Amendment, detailing its legislative journey, the new income-and-asset criteria for EWS status, and the broader socio-economic motivations driving this policy shift. Applying a doctrinal research approach, the study examines the Amendment's text, parliamentary debates, and key Supreme Court judgments, culminating in the Janhit Abhiyan v. Union of India decision. Through careful textual analysis and judicial interpretation, the paper assesses whether economic disadvantage alone can justify reservation, how the EWS quota interacts with existing caste-based safeguards, and whether the 50% cap remains an immutable constitutional limit. Findings reveal that Articles 15(6) and 16(6) carve out a distinct category of economic reservation without formally disturbing earlier quotas, yet they raise complex questions about equality, meritocracy, and the Constitution's basic structure. While the Supreme Court upheld the Amendment by a narrow majority, dissenting opinions underscore the tension between expanding affirmative action to the economically disadvantaged and preserving the foundational goals of caste-based upliftment. Thus, this article argues that the EWS quota represents a significant evolution in India's social justice framework, one that must be continually re-examined to balance economic inclusion with the imperatives of historical redress and constitutional fidelity.

Keywords: *Reservation Policy, Constitutional Law, EWS Quota, Social Justice, Affirmative Action*

Introduction

India's reservation policy has its roots in the colonial era, when British reforms first sought to protect under-represented communities through separate electorates and reserved legislative seats. The 1932 Poona Pact between Mahatma Gandhi and Dr. B.R. Ambedkar transformed separate electorates for Dalits into reserved seats within the general Hindu electorate, laying the groundwork for post-Independence affirmative action.

* *Assistant Professor, Department of Law, C.M.P. Degree College, University of Allahabad, Prayagraj.*

With the framing of the Constitution in 1950, Articles 15 and 16 enshrined quotas for Scheduled Castes (SC) and Scheduled Tribes (ST), later expanded in the 1990s to include Other Backward Classes (OBC) following the Mandal Commission report subject always to a 50 percent overall ceiling and the “creamy layer” exclusion.

Against this historical backdrop, Parliament enacted the One Hundred and Third Amendment on January 1, 2019, for the first time linking reservation purely to economic criteria. By inserting Articles 15(6) and 16(6), it mandated a 10 per cent quota for “Economically Weaker Sections” (EWS) in all government-funded and aided higher-education institutions, as well as in public employment irrespective of caste or community.

The rise of the EWS quota reflected growing concerns that many middle-class families, though outside traditional reservation categories, still faced real financial barriers to higher education and stable government jobs. The new income-and-asset tests covering annual household earnings, landholdings, and residential property were designed to target those genuinely unable to compete on equal footing, without overlapping with existing SC, ST, or OBC benefits.

This article employs a doctrinal methodology to dissect the 103rd Amendment’s text, trace its legislative history, and analyze judicial responses, culminating in the Supreme Court’s Janhit Abhiyan v. Union of India judgment. Drawing on constitutional provisions, landmark case law, and scholarly commentary, it aims to assess the Amendment’s scope, its compatibility with the Constitution’s basic structure, and its implications for India’s evolving framework of social justice.

Research Methodology

For this article, I followed a purely doctrinal research approach: I examined constitutional texts, statutes, and key judicial decisions to trace how economic criteria have been integrated into India’s reservation framework. My analysis drew on primary sources, the Constitution, the 103rd Amendment Act, and landmark Supreme Court judgments, as well as scholarly commentary and journal articles to understand evolving legal principles. Throughout, I organized the material thematically, comparing competing judicial interpretations and noting points of contention. All references, whether to cases, legislation, or academic works, are cited using the APA 7th Edition format to ensure clarity and consistency in attribution.

Literature Review

A growing body of scholarship has examined the 103rd Amendment’s creation of a 10% Economically Weaker Sections (EWS) quota, its constitutional validity, and its broader implications. Below is a concise review of four recent papers, each identified by author and title, that illuminate different facets of this debate.

Deepali Singh & Aadarsh Sharma, "Reservation Policies in Transition: The Supreme Court's Approach to the EWS Quota and the 50% Cap" Singh and Sharma trace the arc of India's reservation jurisprudence from the Mandal era to the post-2019 landscape, spotlighting how the Supreme Court has balanced caste-based affirmative action against a 50% ceiling. They chart landmark rulings—Indra Sawhney (1992), M. Nagaraj (2006), and Jarnail Singh (2018) before analyzing Janhit Abhiyan v. Union of India (2022). Their central claim is that Articles 15(6) and 16(6) neatly carve out the EWS category without disturbing earlier caste-quotas, yet they caution that surpassing 50% risks diluting the constitutional promise of equality of opportunity.

Banshita Sahoo & Komal Singh, "Constitutional Validity of the 103rd Constitutional Amendment Act 2019" Sahoo and Singh situate the EWS amendment within India's long history of affirmative action, dating back to Hunter and Phule in 1882. They detail the asset-and-income criteria that define EWS eligibility, then survey the legal challenges culminating in Janhit Abhiyan. Their analysis foregrounds two tensions: (1) can economic status alone justify reservation, and (2) does adding 10% breach the 50% cap? They conclude that while the amendment ambitiously broadens "protective equality," its lasting success depends on periodic review and vigilant judicial oversight.

Garima Singh, "Constitutional Validity in the Economically Weaker Section Reservation" Singh's paper takes a doctrinal approach, juxtaposing "formal equality" against "substantive equality" and arguing that Articles 15(6) and 16(6) were meant to remedy economic disadvantage as a distinct form of backwardness. She underscores the "basic structure" doctrine from Kesavananda Bharati (1973), suggesting that courts must ensure the EWS quota does not eclipse Parliament's power to amend. Singh ultimately views the amendment as a legitimate expansion of affirmative action, provided the 50% threshold remains a meaningful constraint.

Ranvijay Upadhyay, "EWS Quota—An Epitome of Social Justice as Fairness" Upadhyay interprets the Supreme Court's split verdict through the lens of John Rawls's "justice as fairness." He contends that the EWS quota corrects both "natural" and "social lotteries" by giving the least advantaged a fairer start, and he situates India's experiment within broader comparative debates on affirmative action in liberal democracies. While praising the quota's potential to ring-fence opportunity for under-resourced students, he also warns against permanent entrenchment without sunset clauses or regular evaluation.

Historical Context of Reservation in India:

Long before Independence, British administrators began tinkering with mechanisms to bring historically side-lined communities, Castes and tribes deemed "backward" into the political and educational mainstream.

Their earliest experiments took the form of separate electorates, carving out seats in legislatures for Muslims, Sikhs, and Christians as a way to protect minority interests. But when the 1932 Communal Award threatened to cement communal divisions, Mahatma Gandhi famously fasted in protest. Gandhi's stand led to the Poona Pact between him and Dr. B.R. Ambedkar, which replaced separate Muslim electorates with reserved seats for Dalits, then called "Untouchables", within a united Hindu electorate.[1]

With Independence on the horizon, Ambedkar's tireless advocacy found its way into India's Constitution of 1950. Articles and schedules guaranteed fixed quotas in government jobs, university seats, and elected bodies specifically for Scheduled Castes and Scheduled Tribes. This was revolutionary: for the first time, affirmative action was enshrined as a fundamental part of India's governance.

By the late 1970s, however, pressure mounted to extend state support beyond SCs and STs. A commission headed by B.P. Mandlik (popularly known as the Mandal Commission) catalogued dozens of Other Backward Classes and, in 1980, recommended that 27% of public-sector posts and educational slots be set aside for them. Prime Minister V.P. Singh's decision in 1990 to implement these recommendations unleashed a firestorm of student protests and raw political battles. Two years later, the Supreme Court's Indra Sawhney judgment upheld the idea of reservations but capped the total quota at 50 percent and barred the so-called "creamy layer" of affluent OBCs from enjoying these benefits.[2]

More recently, governments both at the Centre and in various states—have experimented with new categories: a 10 percent ceiling for the Economically Weaker Sections in 2019, and state-specific drives, such as calls for quotas for Marathas in Maharashtra. Critics argue that quotas sometimes slide into arithmetic, sidelining merit; supporters counter that true equality demands more than abstract freedom—it demands opportunity.

Today, the reservation system in India stands as both a testament to social justice ambitions and a lightning rod for debates over fairness. Balancing the remedying of centuries-old exclusion against a meritocratic ideal remains an evolving challenge—one that will surely shape India's democracy for decades to come.

Original Constitutional Provisions

Soon after the Constitution came into force, its framers recognized that formal equality alone wouldn't undo centuries of exclusion. Article 15(4), therefore, empowers Parliament and state legislatures to craft "special measures" for the advancement of socially and educationally backward classes, as well as for Scheduled Castes and Scheduled Tribes. In practice, this has meant reserving seats in schools and universities and creating tailored scholarship and support schemes.[3]

While Article 16(1) guarantees equality of opportunity in public employment, Article 16(4) carves out an exception: it allows the state to reserve jobs, promotions, and posts for any backward class of citizens that, in the legislature's judgment, isn't adequately represented in the civil services. In other words, the rule of merit remains the norm, but the state can—and does—make room for those who have been left behind.[4]

Purpose of Affirmative Action for SCs, STs, and OBCs: At its heart, India's reservation policy isn't about charity; it's about justice. Scheduled Castes and Tribes were historically barred from education, public life, and basic dignity. Other Backward Classes, too, laboured under social stigma and economic disadvantage. By earmarking opportunities—seats in classrooms, slots in government jobs—the state seeks to level a playing field tilted by generations of discrimination.

Affirmative action thus serves two intertwined goals: first, to bring previously excluded communities into the mainstream, ensuring they have a real shot at upward mobility; and second, to enrich our public institutions with diverse perspectives. Over time, as these communities gain education, enter professions, and make their voices heard in legislatures, the hope is that the need for overt quotas will gradually diminish, leaving behind a society where equal opportunity is more than a promise on paper.

Introduction of EWS Quota

Back in January 2019, Parliament passed the 103rd Amendment to the Constitution, carving out a fresh 10 percent slice of seats in government jobs and university seats for the Economically Weaker Sections. For the first time, "reservation" in India was tied purely to income—no caste applications needed so that families earning below a set threshold could gain access to opportunities they'd previously been shut out of.

On January 1, 2019, India's Parliament enacted the 103rd Constitutional Amendment, which for the first time tied reservation to income rather than caste. In doing so, it inserted two entirely new clauses into the Constitution:

- **Article 15(6)** empowers the state to reserve up to 10 percent of seats in government-funded educational institutions for citizens belonging to Economically Weaker Sections (EWS).[5]
- **Article 16(6)** allows a parallel 10 percent reservation in public employment for the same group.[6]

Objective

The aim was simple yet significant carve out a dedicated 10 percent quota in both college admissions and government jobs for families whose annual income falls below a specified threshold, regardless of their caste or community background. By doing so, the state sought to extend the promise of affirmative

action to those who, while not "socially backward," still face real financial barriers to opportunity.

Unsurprisingly, this new economic quota landed in court almost immediately. Opponents argued it ran headlong into the long-standing 50 percent ceiling on reservations and even cut across the interests of poor students from SC, ST, and OBC backgrounds who already relied on quotas. In the landmark Janhit Abhiyan case, petitioners said the amendment overturned both the spirit and the letter of past court rulings. But in November 2022, a five-judge bench of the Supreme Court split 3–2 upheld the EWS quota. The majority held that the "basic structure" of India's Constitution did not rigidly bar quota limits from being exceeded, especially when the carve-out was economic rather than caste-based.

Since that ruling, the EWS provision has reshaped the reservation landscape. State governments have been scrambling to fold the new quota into their own systems, which already juggle SC, ST, and OBC lists. That has meant reworking admission rosters and job-posting rules to ensure everyone's share is protected. At the same time, critics worry that drifting into purely income-based quotas drags us away from the original goal of righting centuries of social exclusion. Supporters counter that financial hardship, too, is a serious barrier to equal opportunity—and one the state is obliged to tackle. Either way, the EWS experiment has made clear that India's affirmative-action story is far from over.[7]

Why the 103rd Amendment Became Necessary: By the late 2010s, India's reservation landscape—long focused on caste-based uplift—left a sizable slice of society feeling stranded. Many families, though not covered by SC, ST or OBC quotas, simply lacked the financial means to pay for higher education or compete for coveted government jobs. Recognising this gap, Parliament moved quickly to add two new constitutional hooks:[8]

- **Article 15(6)** empowers the state to set aside up to 10 percent of seats in all government and government-aided colleges and universities for citizens from Economically Weaker Sections (EWS).[9]
- **Article 16(6)** allows a parallel 10 percent carve-out in public-sector employment for the same group.[10]

These changes, enacted as the 103rd Constitutional Amendment on 12 January 2019, formally extended India's commitment to affirmative action into the purely economic sphere, no longer tying opportunity solely to social or historical disadvantage, but also to genuine financial need.

The Amendment's Ripple Effects:

- **Widened Access to Education and Jobs**: Overnight, hundreds of thousands more students and job-seekers became eligible for

reserved slots. Elite institutions—from IITs and IIMs to state universities—had to shuffle their admissions rosters, while ministries and public-sector undertakings rewrote their recruitment rules to accommodate the new 10 percent bracket.

- **Reinforced Social Cohesion**: By detaching reservation from caste alone, the EWS quota sent a powerful message: economic hardship, wherever it occurs, deserves the state's redress. This helped temper some of the old debates around "who deserves" reservation, pointing citizens toward a shared goal of lifting income-struggling families across all communities.
- **Economic Inclusion and Growth**: The logic was straightforward: put more low-income youth through college and into stable government jobs, and you broaden the tax base, spur consumption, and nurture a more skilled workforce. Estimates suggested that nearly 190 million people could benefit; advocates argued this would chip away at poverty rates and accelerate India's journey toward a $5 trillion economy.
- **Challenges to the Status Quo**: Even as the EWS quota brought new opportunities, it also complicated an already crowded reservation framework. States juggling existing SC (15 %), ST (7.5 %), and OBC (27 %) quotas suddenly had to factor in an additional 10 percent. Debates erupted over whether the overall cap of 50 percent was being breached—and how best to administer the "creamy layer" test for economic eligibility.

In sum, the 103rd Amendment reshaped India's affirmative-action toolkit. By acknowledging that poverty not just Caste can lock talented individuals out of public life, it broadened the ambit of social justice. Yet blending this economic lens with a long-standing caste focus will require continual fine-tuning to ensure India's promise of equal opportunity keeps pace with its economic ambitions.[11]

State-Specific Reservation Policies: How India's States Tailor Quotas to Local Needs

Across India, state governments have tailored reservation policies to match local demographics and social needs. While the Constitution sets a floor for affirmative action, many states layer on their own quotas sometimes even exceeding the Supreme Court's 50 percent guideline to ensure historically marginalized groups aren't left behind.

Jharkhand - Here, the state roster for government jobs tops out at a remarkable 77 percent. Tribal communities take up 28 percent of posts, Other Backward Classes 27 percent, and Scheduled Castes 12 percent. On top of this, the central government's 10 percent EWS quota is also applied,

pushing Jharkhand well past the half-reservation mark in pursuit of wider inclusion.[12]

Chhattisgarh - Soon after winning unanimous Assembly approval for a 76 percent reservation package 32 percent for STs, 27 percent for OBCs, 13 percent for SCs, and 4 percent for EWS—the state ran into legal headwinds. In September, the Chhattisgarh High Court struck down a 58 percent jobs quota as unconstitutional, questioning both the rush to expand and the rationale behind it.[13]

Karnataka - At present, OBCs claim 32 percent of state government positions, while SCs and STs share 18 percent. Lawmakers are weighing an ordinance to lift SC reservations to 17 percent and ST to 7 percent—moves they say respond to changing population patterns and aim to keep representation in step with demographic shifts.[14]

Tamil Nadu - Tamil Nadu's unique history of open-ended quotas finds it at 69 percent overall: 30 percent for Backward Classes, 20 percent for Most Backward Classes, 18 percent for SCs, and 1 percent for STs, all under the umbrella of the 76th Amendment. Even a fresh 10 percent EWS carve-out could push the state into uncharted constitutional territory—a concern that has already prompted spirited judicial debate.[15]

Andhra Pradesh - In 2019, the state passed a law guaranteeing half of all nominated posts—across BC, SC, ST, and minority communities—through reservation. The move was designed less around educational access than around ensuring political uplift and stable representation for these groups in local bodies.[16]

Assam - Assam's roster sets aside 7 percent for SCs, 15 percent for STs, and 27 percent for OBCs. When the 103rd Amendment rolled out the EWS quota in January 2019, Assam swiftly added a uniform 10 percent slot and even carved out sub-quotas for communities like the Mataks, Tea Tribes, Ahoms, and Chutias.[17]

Beyond these examples, states such as Haryana, Telangana, Madhya Pradesh, Uttar Pradesh, Rajasthan, and Maharashtra have also tried to push total reservations past 50 per cent, with varying fates in court. What unites them is the recognition that rigid national caps can't always account for local realities.

One constant, though, is the Economically Weaker Sections quota. Since the 103rd Constitutional Amendment set a national 10 per cent benchmark, a dozen states—Uttarakhand, Gujarat, Karnataka, Jharkhand, Maharashtra, Mizoram, Delhi, Jammu & Kashmir, Goa, Assam, Andhra Pradesh, and Telangana—have formally woven EWS into their recruitment and admission rules. Though the income threshold stays the same everywhere, each state decides how to blend that quota alongside its existing SC, ST, and OBC reservations, crafting a patchwork that reflects India's vast diversity.[18]

Analysis of Constitutional Validity:

Since the Constitution came into effect in 1950, India's federal and state governments have progressively expanded affirmative action for the Scheduled Castes (SC) and Scheduled Tribes (ST). Many states also introduced quotas for socially and educationally backward classes early on. However, at the national level, schemes for Other Backward Classes (OBCs) remained on hold for decades despite multiple inquiries, largely to await clear judicial and political consensus.

Early Commissions and Delayed Implementation:

The first major attempt to identify backward groups was the Kaka Kalelkar Commission in 1955. Its recommendations received little follow-up, and the central government took no significant action. It was only after nearly twenty-five years, when the Second Backward Classes Commission chaired by B. P. Mandal submitted its report in 1980, that momentum gathered. Yet, even then, political uncertainty delayed adoption until August 1990.

Mandal Commission and the Politics of Quotas:

The Mandal Commission catalogued over 3,700 castes and communities Hindu and non-Hindu as OBCs, estimating they comprised roughly 52% of India's population. It proposed a 27% reservation in central government jobs for these groups, calibrated against the existing 22.5% quota for SCs and STs. Together, these quotas respected the Supreme Court's 50% ceiling on total reservations, a principle established in earlier judgments.[19]

Faced with vehement protests from upper-caste groups fearing exclusion, the government issued an executive order in September 1991 to carve out an extra 10% of positions for economically disadvantaged citizens outside the existing reservation framework. This pushed total quotas to 59.5%, overtly breaching the Supreme Court's 50% rule but lacking the force of a constitutional amendment.[20]

Judicial Responses: Indra Sawhney and Beyond:

The Supreme Court in *Indra Sawhney* grappled with several contentious issues:

- It upheld the 27% OBC quota but mandated exclusion of the "creamy layer"—the more affluent among backward classes—from benefits.
- It struck down the 10% carve-out for the economically disadvantaged outside SC/ST/OBC classifications, holding that only recognized backward classes, as defined by social and educational criteria, could be eligible.
- It reinforced that reservations apply only to initial recruitment, not to promotions.

- It reaffirmed the maximum 50% cap on total reservations in any appointment exercise, including carry-forward of unfilled vacancies.

Over the next decade, Parliament responded by enacting several constitutional amendments, each designed to circumvent specific judicial limits:

1. **77th Amendment (1995)**: Added Article 16(4A) to permit reservations in promotions for SCs and STs, directly countermanding the Court's ban on promotional quotas.[21]
2. **81st Amendment (2000)**: Introduced Article 16(4B), distinguishing backlog vacancies from current vacancies and lifting the 50% ceiling for backlogs, though preserving it for fresh appointments.[22]
3. **82nd Amendment (2000)**: Amended Article 335 to restore the executive's power to relax eligibility standards in SC/ST promotions, overriding the *Indra Sawhney* prohibition on easing norms.[23]
4. **85th Amendment (2001)**: Tweaked Article 16(4A) again to guarantee consequential seniority in promotions for SCs and STs, reversing Court rulings denying permanent seniority benefits.[24]

Basic Structure Doctrine: Protecting Equality

The Court confronted these post-*Sawhney* amendments in *M. Nagaraj v. Union of India* (2006). Applying the Basic Structure Doctrine, the Court distilled two analytical tools:

- **The Width Test** examines whether an amendment alters or erases foundational constitutional guarantees, such as the 50% cap, the creamy-layer principle, and objective criteria of backwardness and adequate representation, that preserve the equality framework under Article 16.
- **The Identification Test** asks whether the amendment, even if confined in scope, redefines the Constitution's identity by changing its essential philosophy.

On scrutiny, the Court upheld Articles 16(4A), 16(4B), and 335, finding they preserved rather than destroyed the constitutional commitment to substantive equality. They retained the quantitative ceiling (for fresh recruits), the creamy-layer exclusion, and the requirement of demonstrable backwardness and administrative efficacy.[25]

Reservations in Private Institutions

Separate disputes arose over quotas in private education. In ***T.M.A. Pai Foundation vs State of Karnataka***[26] **and *P.A. Inamdar vs State of Maharashtra*,**[27] the Supreme Court recognized that private, unaided educational institutions enjoy an "occupation" right under Article 19(1)(g), limiting the state's power to impose reservations.

To address this, the 93rd Amendment (2005) added Article 15(5), allowing reservations for SCs, STs, and OBCs in both aided and unaided institutions. Parliament enacted implementing legislation for central institutions only in 2007. Subsequent litigation in ***Ashoka Kumar Thakur vs Union of India***[28] **and** ***Pramati Educational & Cultural Trust vs Union of India***[29] upheld the amendment's validity but left open the question of unassisted private colleges.

The 103rd Amendment and Emerging Challenges

The most recent development is the 103rd Amendment (2019), which carves out a 10% quota for the Economically Weaker Sections (EWS) among general category citizens under Articles 15(6) and 16(6). Unlike earlier OBC measures, this scheme hinges solely on income and asset criteria.

Critics argue that purely economic qualifications betray the Basic Structure's focus on remedial justice tied to social disadvantage. The amendment's fate may hinge on whether courts see EWS quotas as a legitimate extension of equality under Articles 15 and 16 or an impermissible dilution of the Constitution's secular, egalitarian ethos.

India's reservation regime has evolved through a delicate dialogue between legislative activism and judicial oversight. The Basic Structure Doctrine remains the ultimate guardian of equality, ensuring that any expansion of quotas must respect core constitutional values: a balanced ceiling on reservations, exclusion of affluent beneficiaries, demonstrable social disadvantage, and the integrity of merit-based public service.

Critical Appraisal and Scholarly Opinions:

The One Hundred and Third Amendment to the Constitution of India, enacted in 2019, introduces a 10% quota for Economically Weaker Sections (EWS) in admissions to central educational institutions, private (non-minority) universities, and recruitment for central government positions. Importantly, it does not mandate state governments to mirror these reservations in their own institutions or public employment.[30]

To qualify for the EWS quota, a household must have an annual income below ₹8 lakh and must not already benefit from reservations for Scheduled Castes (SC), Scheduled Tribes (ST), or the non-creamy layer of Other Backward Classes (OBC). Income calculations include all sources, such as agriculture, salaries, and business. Families owning agricultural land of five acres or more, a residential house measuring 1,000 square feet or more, a plot of 100 square yards or more in a notified municipality, or a plot of 200 square yards or more in non-notified areas are excluded regardless of income.

This amendment adds clause (6) to Article 15, empowering the state to advance economically weak sections by reserving seats in all educational institutions, whether government or private (excluding minority-run), and to Article 16(6), authorizing a similar 10% reservation in government jobs.

While the policy aims to assist those facing financial hardship, it departs from the original intent of reservation, which focused on redressing social discrimination and historical injustices. The Supreme Court's ruling in Indra Sawhney v. Union of India emphasizes that backwardness cannot be determined solely by economic factors; social dimensions must also be considered.

By adding the EWS quota, total reservations rise to 59.5%, surpassing the Supreme Court's 50% ceiling established in Indra Sawhney and reaffirmed in ***M. Nagaraj* vs *Union of India*[31] and *Jarnail Singh* vs *Lachhmi Narain Gupta*.**[32] Exceeding this threshold threatens the balance of equal opportunity under the Constitution.

Another point of contention is the discrepancy between the ₹8 lakh income limit for EWS eligibility and the ₹2.5 lakh threshold for income tax liability. Critics argue that labelling individuals earning up to ₹8 lakh as "economically weak" while taxing those above ₹2.5 lakh is logically inconsistent, prompting ongoing legal challenges over whether tax slabs or reservation criteria should be revised.

Furthermore, nearly 82% of SC, ST, and OBC populations fall below the poverty line, yet they are excluded from EWS benefits. This exclusion raises questions of equality under Articles 14, 15, and 16 articles regarded as forming the Constitution's basic structure, as noted in ***I.R. Coelho* vs *State of Tamil Nadu*.**[33]

Following the amendment, only 40.5% of seats and posts remain open to the unreserved category, sparking debate over the impact on merit-based competition and the fostering of excellence in education and public service.

Balancing economic justice with the founding principles of social equity and meritocracy calls for a nuanced approach. While addressing financial hardship is vital, any reservation framework must also respect the Constitution's commitment to fair representation and opportunity for historically disadvantaged communities.

EWS Reservation Under the Lens: Evolution and Janhit Abhiyan Verdict:

Several landmark judgments have shaped India's reservation jurisprudence prior **to *Janhit Abhiyan* vs *Union of India***.[34] In ***Indra Sawhney* vs. *Union of India***, the Supreme Court clarified that reservations must address social and educational backwardness, not just economic hardship. The Court explained that Article 16(4) supplements Article 16(1) by allowing affirmative action for backward classes based on both caste and other indicators, and reaffirmed the "creamy layer" exclusion and the 50% ceiling on total reservations.

In ***M.R. Balaji* vs *State of Mysore***,[35] the question was whether the state could carve out a "more backward" subgroup within backward classes for

additional quotas. The Court held that multiple layers of backwardness could not coexist in reservation policy and that any expansion beyond the 50% limit would infringe on citizens' equality rights under Articles 15 and 16.

Against this backdrop, the Supreme Court heard challenges to the 103rd Amendment granting a 10% quota for Economically Weaker Sections (EWS) in Janhit Abhiyan. After Parliament approved the Amendment in January 2019 and the President gave assent, petitions arrived in the Supreme Court by February. A five-judge bench led by Chief Justice U.U. Lalit began hearings in September 2022 and reserved judgment later that month. On November 7, 2022, by a 3–2 majority, the Court upheld the EWS quota as constitutionally valid.

The petitioners argued that economic-only reservations clash with the original purpose of affirmative action and exceed the 50% cap set by Indra Sawhney. They insisted that socially disadvantaged groups Scheduled Castes, Scheduled Tribes, and OBCs—should not be excluded from EWS benefits. Respondents countered that poverty alone can justify a quota, that the ₹8 lakh income threshold is a policy choice, and that Articles 15(6) and 16(6) expressly empower the state to create economic-based reservations beyond existing quotas.

The majority Justices Ravindra Bhat, Bela M. Trivedi, and J.B. Pardiwala found that reservations for economic hardship do not violate the Constitution's basic structure. They stressed that Articles 15(6) and 16(6) carve out a new category and that the 50% limit applies only to earlier caste-based quotas under Articles 15(4), 15(5), and 16(4). Justice Trivedi emphasised a time-bound approach to economic reservations, while Justice Maheshwari noted that empowering the poor advances substantive equality.

In dissent, Chief Justice Lalit and Justice Maheshwari (in a separate view) warned that excluding the majority of poor from SC/ST/OBC categories is arbitrary and that breaching the spirit of Indra Sawhney's 50% rule risks undermining equality. They underscored that reservations should target historical injustice and social backwardness, not solely financial status.

Therefore, Janhit Abhiyan confirms that economic criteria may coexist alongside traditional reservation principles, expanding the scope of protective equality. The majority's decision upholds the 103rd Amendment's 10% EWS quota while reaffirming that any reservations must respect the Constitution's commitment to fairness and cannot become permanent fixtures without periodic review.

7. Conclusion:

In light of this analysis, it is clear that the 103rd Amendment marks a bold departure from India's traditional reservation framework by introducing economic criteria as the sole basis for affirmative action. Yet the

Constitution itself never envisaged quotas on the basis of financial hardship; its framers spoke only of uplifting those who were socially and educationally backward. The Constitution makes no mention of reservations based on economic status—its provisions address only social and educational backwardness, and this discrepancy calls for serious reflection. Moving forward, policymakers and jurists must consider whether economic disadvantage alone captures the full spectrum of marginalization in India, or whether a more nuanced model—one that balances social history, educational access, and economic need—will better fulfil our commitment to genuine equality of opportunity.

Suggestions:

On the basis of the above discussion, the following recommendations emerge:

1. While reservations play an important role, they should not be the sole mechanism for uplifting disadvantaged groups. Expanding scholarship programs, vocational training, and targeted welfare schemes can provide more direct assistance to those in need and help bridge gaps in education and employment.
2. Reservations should be granted for a clearly defined period, consistent with the original constitutional intent of temporary affirmative action. As society progresses, the goal should be to reduce dependency on quotas and move toward a merit-driven system that still safeguards equal opportunity.
3. Misunderstandings about reservations often fuel opposition among the unreserved category, while eligible beneficiaries may lack information on how to access their entitlements. Government agencies, educational institutions, and civil society must collaborate on robust awareness campaigns to ensure everyone understands both the purpose of reservations and the procedures for claiming them.
4. Introducing an economic-exclusion criterion (“creamy layer”) within all reserved categories can focus support on those most in need. Simultaneously, tailored capacity-building initiatives—such as skill development and entrepreneurship training—will lay a stronger foundation for long-term advancement across generations.
5. Fundamental reforms in early-stage education—like integrating vocational courses, promoting regional and multilingual instruction, and strengthening infrastructure in underserved areas—are vital. Equitable access to quality schooling will foster inclusive growth and, over time, reduce reliance on reservation as the primary route to social mobility.

Reference

1. *Deepali Singh & Aadarsh Sharma, Reservation Policies in Transition: The Supreme Court's Approach to the EWS Quota and the 50% CAP, Indian Journal of Integrated Research in Law, Vol IV Issue IV, pg. 380-381.*
2. *Banshita Sahoo & Komal Singh, Constitutional Amendment Act 2019, Jus Corpus Journal, ISSN 2582-7820.*
3. *The Constitution of India, 1950, Art. 15(4)*
4. *The Constitution of India, 1950, Art. 16(4).*
5. *The Constitution of India, 1950, Art. 15(6)*
6. *The Constitution of India, 1950, Art. 16(6).*
7. *Sagar. (2022, November 13). EWS judgement undermines Constitutional code of equality: Legal experts, Bahujan leaders. The Caravan. https://caravan magazine.in/law/ews-reservation-judgement-supreme-court-caste-bias*
8. *The Constitution of India, 1950, 103 Amendment*
9. *The Constitution of India, 1950, Art. 15(6)*
10. *The Constitution of India, 1950, Art. 16(6).*
11. *Kapoor, V. (2024, March 29). Janhit Abhiyan v. Union of India (2022) : case analysis - iPleaders. iPleaders. https://blog.ipleaders.in/janhit-abhiyan-v-union-of-india-2022/*
12. *Pti. (2022, September 15). Jharkhand raises reservations for SC, ST, others to 77%. The Hindu. https://www.thehindu.com/news/national/other-states/ jharkhand-raises-reservations-for-sc-st-others-to-77/article65893319.ece*
13. *Pti. (2021, August 10). 12 states, UTs have implemented 10 pc reservation to economically weaker sections: Govt. The Economic Times. https://economictimes.indiatimes.com/news/india/12-states-uts-have-implemented-10-pc-reservation-to-economically-weaker-sections-govt/articleshow/85216342.cms?from=mdr*
14. *The Hindu Bureau. (2022, October 20). Karnataka Cabinet to promulgate ordinance for increasing reservation for SCs, STs. The Hindu. https://www.thehindu.com/news/national/karnataka/karnataka-cabinet-to-promulgate-ordinance-for-increasing-reservation-for-scs-sts/article66035281.ece*
15. *Rajagopal, K. (2022, November 7). Upholding EWS quota may seal the fate of the challenge to Tamil Nadu quota law without a hearing: Justice Bhat's note of caution. The Hindu. https://www.thehindu.com/news/national/upholding-ews-quota-may-seal-the-fate-of-the-challenge-to-tamil-nadu-quota-law-without-a-hearing-justice-bhats-note-of-caution/article66108661.ece*
16. *Andhra Pradesh (50 Percent Reservation to BCs, SCs, STs and Minorities in all the Nominated Posts) Act, 2019. (2019, August 17). https://www.indiacode. nic.in/handle/123456789/13986?locale=en*
17. *Singh, B. (2022, December 23). Assam government scraps economically weaker section reservation in jobs. The Economic Times. https://economictimes. indiatimes.com/news/india/assam-government-scraps-economically-weaker-section-reservation-in-jobs/articleshow/96463601.cms?from=mdr*

18. *Ranjan, A. (2021, May 6). Existing reservation quota limit of the Indian states. India Today. https://www.indiatoday.in/news-analysis/story/existing-reservation-quota-limit-of-the-indian-states-1799705-2021-05-06*
19. *Indra Sawhney vs Union of India AIR 1993 Sc 447*
20. *Indra Sawhney vs Union of India AIR 1993 Sc 447*
21. *The Constitution of India, 1950, 77 Amendment 1995.*
22. *The Constitution of India, 1950, Amendment 2000*
23. *The Constitution of India, 1950, 82 Amendment 2000*
24. *The Constitution of India, 1950, 85 Amendment 2001*
25. *Garima Singh, Constitutional Validity in the Economically Weaker Section Reservation, International Journal of Law Management and Humanities, Vol. 4, Issue 2.*
26. *AIR 2003 SC 355*
27. *2005 Supp. (2) SCR 603*
28. *(2008) 6 SCC 1138.*
29. *AIR 2014 SC 2114*
30. *Upadhyay, R. (2023). IIPA Digest January - March 2023. In OUTLOOK (pp. 12–14). https://www.iipa.org.in/cms/public/uploads/345791692781688.pdf*
31. *AIR 2007 SC 71.*
32. *AIR 2018 SC 4729*
33. *(1999) 7 SCC 580*
34. *2022 SCC ONLINE SC 1540*
35. *1963 AIR 649*

Paper Received : 04 Feb., 2025 ***Paper Accepted : 20 Feb., 2025***

Manglam - Year 16(01) Vol. XXX Feb. 2025
ISSN-0976-8149, PP. 50-60

A Study of Gender Differences of Organizational Commitment and Organizational Citizenship Behaviour in Relation to Occupational Stress

*Monika Ranjan**

Abstract

In organizational psychology; organizational commitment, organizational citizenship behaviour and occupational stress are impact on employees and productivity in organizational setting. Organizational commitment is a psychological attachment with organization, whereas OCB is extra role and voluntary behaviour of employees within organization. Occupational stress is the negative psychological and physical effects an employee experiences. The aim of the study to find out the gender differences of organizational commitment and organizational citizenship behaviour in relation to occupational stress of government employees of Kanpur. A total of 400 employees (200 male and 200 female employees) participated. by Dr. Anukool M.Hyde & Mrs. Rishu Roy's Organizational commitment scale, Dr. Sangeeta Jain & Dr. Vivek Sharma's OCB scale and Dr. A.K. Srivastava and Dr. A.P. Singh's occupational stress scale were administered. For statistical analysis I used t-test. In present research we formulated four null hypotheses and all four null hypotheses are rejected. In present study I have found that there is a significant difference between male and female employees with high occupational stress on OCB. Similarly, there is a significant difference between male and female employees with low occupational stress on OCB. Hence, there is a significant difference between male and female employees with high occupational stress on OC. Similarly, there is a significant difference between male and female employees with low occupational stress on OC.

Keywords: *OCB, Organizational commitment, Occupational stress & Gender.*

Problem of the study

A study of gender differences of organizational commitment and organizational citizenship behaviour in relation to occupational stress of government employees of Kanpur, U.P.

* *Research Scholar, Department of Psychology, STDPG College, Dr. RMLAU, Ayodhya, U.P.*

Introduction:

A. Organizational commitment:

Work performance, organizational citizenship behaviour and employee retention may all be impacted by an organization's commitment. High organizational commitment levels are advantageous to businesses because they can result in reduced worker turnover, constructive relationships, consistent work performance, and healthy work cultures. The degree of attachment a worker has to their employer is known as organizational commitment. It may be defined as a strong acceptance and conviction in the objectives and ideals of an organization, or as a psychological connection. There are Three levels of organizational commitment exist, each based on the many motivations for an employee's decision to remain with a company:

a. Affective commitment: An emotional bond with the company, where the worker aspires to remain.
b. Continuance commitment: A fear of losing things in the event that the employee leaves such friendships, money, or status.
c. Normative commitment: A feeling of duty to continue, maybe as a result of the company investing time and resources in the employee's training.

Importance of OC- The significance of organizational commitment stems from its correlation with specific behavioural and attitudinal outcomes in the workplace. For instance, there is a modest correlation between organizational commitment and improved job performance and lower employee turnover.

B. Organizational citizenship behaviour:

Dennis Organ originally described organizational citizenship behaviour as "an individual behaviour which is not rewarded by a formal reward system but which, when combined with the same behaviour in a group, results in effectiveness" in 1988.

The phrase "organizational citizenship behaviour" (OCB) refers to the voluntary activities and extra role behaviour that workers perform on behalf of their company even if they are not specifically required by their job description. One common way to characterize OCB is as "going above and beyond" expectations.

Assisting colleagues, taking part in volunteer committees, protecting the company's reputation, and showing people courtesy and consideration are a few instances of OCB.

Dimensions of OCBs:

a. **Altruism-** Being altruistic involves assisting other team members with their work. For instance, offering to aid new hires on a voluntary basis, supporting overworked co-workers, covering for absentee employees, assisting staff members in completing challenging assignments, etc.

   Altruism is defined as voluntary behaviours in which a worker helps a person who is struggling to finish a task in an uncommon situation.

b. **Courtesy-** Being courteous, kind, and respectful of peers, superiors, and subordinates are traits that define an OCB. Maintaining a polite and upbeat attitude at work is crucial, as this component highlights.

c. **Conscientiousness-** A conscientious worker will often go above and above the call of duty in their work, including working late to finish projects and double-checking it for faults.

d. **Sportsmanship-** A good team player, not whining constantly, and the ability to take criticism well are all characteristics of the sportsmanship component.

e. **Civic virtue-** OCB's civic virtue involves being aware of the company's activities, attending meetings, and actively engaging in the organization's decision-making processes.

C. Occupational stress:

Psychological stress associated with one's employment is known as occupational stress. A persistent condition is referred to as occupational stress. By identifying the stressful environments at work and taking action to improve them, occupational stress may be controlled.

Cause of occupational stress:

1. An inability to manage our workload, 2. Dread of change or redundancy, 3. Insufficient assistance and subpar line management, 4. Tough relationship with co-workers, 5. Intimidation or mistreatment at work, 6. Prejudice at work, 7. Our time and energy are heavily demanded, and our obligations are not clearly defined.

Types of occupational stress:

Occupational stress comes in a variety of forms, such as:

1. **Stress from a new job:** When learning their new role, forming connections, and acclimating to the workplace culture, new hires may experience feelings of overload.
2. **Acute stress:** This kind of stress is brought on by a particular occasion, such as a deadline or presentation, and it generally passes after the occasion.
3. **Workplace conflict:** Disagreements over corporate choices or personality conflicts can lead to this. It can show up as gossip or bullying, both of which are bad for the mental health of the workforce.
4. **Fear-based stress:** This type of stress can be brought on by worries about one's work stability, including worries about possible layoffs, having a tense boss relationship, or taking on additional tasks.
5. **Burnout:** Employees who experience physical and emotional exhaustion from their work over an extended period of time may experience burnout.
6. **Performance stress:** The need to do better immediately in order to prevent bad outcomes and achieve favourable ones. Conflicts with co-workers or superiors can be an example of interpersonal stress.

Objectives of the study:

The following objectives of the study have been set:

1. To find out significant difference between male and female employees with high occupational stress on OCB.
2. To find out significant difference between male and female employees with low occupational stress on OCB.
3. To find out significant difference between male and female employees with high occupational stress on OC.
4. To find out significant difference between male and female employees with low occupational stress on OC.

Hypothesis:

H01: There will be no significant difference between male and female employees with high occupational stress on OCB.

H02: There will be no significant difference between male and female employees with low occupational stress on OCB.

H03: There will be no significant difference between male and female employees with high occupational stress on OC.

H04: There will be no significant difference between male and female employees with low occupational stress on OC.

Rational of the study:

Organizational commitment is important and essential concept of any individuals because it can lead to better performance, lower turnover, and higher productivity and Organizational citizenship behaviour (OCB) is important and essential concept for both employees and organizations because it can lead to a number of benefits, including; Improved organizational performance, better team performance, reduced turnover, higher customer satisfaction, improved reputation, increased employee satisfaction, Sense of purpose, positive work environment, fewer minor complaints. Another variable is occupational stress, in any job employees can face stress from job that why Occupational stress studies are important because they help to understand the health and economic consequences of stress in the workplace and identify ways to mitigate it.

There has not been much research on OCB, organizational commitment and occupational stress together. So I decided to conduct the research on these variables. In order to bridge the knowledge gap in this field and these variables.

Methodology:

a) Variables:

Independent Variables- Occupational stress & Gender

Dependent Variables- OCB & Organizational commitment

b) Sample:

In present research, I selected 400 government employees (200 male & 200 female) of Kanpur Uttar Pradesh.

c) Instrument:

Organizational Commitment Scale (OCS-HR) by Dr. Anukool M.Hyde & Mrs. Rishu Roy: This scale consist of 30 items of eight factors (1st factor- work environment, 2nd factor affection towards organization, 3rd factor- contentment, 4th factor- goal fulfilment, 5th factor- positive thinking, 6th factor-career goal, 7th factor- empathy, 8th factor empowerment). Each factor consist different numbers of items. 1st factor consist 11 items. 2nd factor consist 9 items. 3rd factor consist 4 items. 4th factor consist 2 items. 5th factor consists one item. 6th factor consists one item. 7th factor consists one item. 8th factor consists one item. Four dimensions were found when factor analysis was performed on these obtained factors. These four dimensions are: Work-Life Quality, Optimism, Belongingness and Job Satisfaction. This scale is five point scale from strongly agree to strongly disagree. The language of this scale is Hindi. The split-half reliability coefficient of this scale is 0.89, the significance level of which is 0.01 and validity of this scale found to be 0.94 by author.

Organizational Citizenship Behaviour Scale (OCB-JS) by Dr. Sangeeta Jain & Dr. Vivek Sharma: This scale consist of 36 items of four factors (1st factor- Altruism, 2nd factor- Organizational Compliance, 3rd factor- Sportsmanship, 4th factor- Loyalty). Each factor consist different number of items, 1st factor consist 22 items. 2nd factor consist five items. 3rd factor consist six items. 4th factor consist three items. This scale has five points scale from strongly agree to strongly disagree. The split half reliability approach was used to assess the scale's reliability. The reliability coefficient for the sample of 260 participants is 0.89. The scale has good content validity in addition to face validity as each item is related to the variable under study. The scale's components clearly have an impact on the concept of organizational citizenship behaviour, according to the judges' and experts' assessments and ratings. The reliability index, which was calculated using the dependability coefficient as a basis for validity determination (Garrett, 1981), indicated good validity with a value of 0.94.

Occupational Stress Index (OSI) by Dr. A.K. Srivastava and Dr. A.P. Singh: There are 46 items on this scale and each one has a five-point rating scale from strongly disagree to strongly disagree. 28 out of 43 items are "true-keyed," and remaining 18 being "false-

keyed." Occupational stress index consist 12 sub scales- 1. Role overload, 2. Role ambiguity, 3. Role conflict, 4. Political and group pressures, 5. Personal responsibility, 6. Under-participation, 7. Helplessness, 8. Poor peer relationships, 9. Intrinsic poverty, 10. Low status, 11. Demanding work environments, and 12. Unprofitability. The split-half (odd-even) method's reliability index and the scale's overall Cronbach's alpha-coefficient were determined to be 0.93 and 0.90, respectively. The validity of the OSI was ascertained by calculating correlation coefficients between OSI scores and several measures of work-related attitudes and behaviours. The results showed that there was a significant correlation between the OSI scores and the following measures: -0.56 (N=225) for job involvement; -0.44 (N=200) for work motivation; -0.40 (N=205) ego strength; and -0.51 (N=500) for job satisfaction. These measures were obtained from the works of Lodhal & Kejner (1965), Srivastava (1980), Hasan (1970), and Pestonjee (1973). It was discovered that there was a 0.59 correlation (N=400) between the OSI scores and the job anxiety measure (Srivastava, 1974).

d) Procedure:

In this present research work, first I went to a government organization of Kanpur city. Then I selected 200 male and 200 female employees by quota sampling method. Firstly I administered the scale of occupational scale index on male & female government employees and after scoring categories into high occupational stress male and female and low occupational stress male and female. After I administered the scale of organizational citizenship behaviour Scale and organizational commitment scale on high occupational stress male and female and low occupational stress male and female. In this way I got the data for this research.

e) Statistics:

For this present research t-test has been used 4 times to examine the gender differences between high occupational stress male and female on organizational citizenship behaviour & low occupational stress male and female on organizational citizenship behaviour and high occupational stress male and female on organizational commitment & low occupational stress male and female on organizational commitment.

f) Results:

Ho1- There will be no significant difference between male and female employees with high occupational stress on OCB.

Table. 1.1 - Mean, SD and t-value of OCB in term of male and female high OS

Variable	Gender and OS	Mean	SD	t-value	Df	Result	Discussion
OCB	Male high OS	92.67	9.72	20.3	198	.01<20.3	Significant difference
	Female high OS	119.26	8.6				

Ho2- There will be no significant difference between male and female employees with low occupational stress on OCB.

Table. 1.2 - Mean, SD and t-value of OCB in term of male and female low OS

Variable	Gender and OS	Mean	SD	t-value	Df	Result	Discussion
OCB	Male low OS	105.6	15.4	11.5	198	.01<11.5	Significant difference
	Female low OS	138.8	24				

Ho3- There will be no significant difference between male and female employees with high occupational stress on OC.

Table. 1.3 - Mean, SD and t-value of OC in term of male and female high OS

Variable	Gender and OS	Mean	SD	t-value	Df	Result	Discussion
OC	Male high OS	93.31	12.12	1.35	198	.01<1.35	Significant difference
	Female high OS	89.53	25.07				

Ho4- There will be no significant difference between male and female employees with low occupational stress on OC.

Table. 1.4 - Mean, SD and t-value of OC in term of male and female low OS

Variable	Gender and OS	Mean	SD	t-value	Df	Result	Discussion
OC	Male low OS	111.3	23.8	0.69	198	.01<0.69	Significant difference
	Female low OS	109.5	8.63				

Table. 1.5-Result

HYPOTHESIS		ACCEPT/REJECT
H_{01}	There will be no significant difference between male and female employees with high occupational stress on OCB.	Rejected
H_{02}	There will be no significant difference between male and female employees with low occupational stress on OCB.	Rejected
H_{03}	There will be no significant difference between male and female employees with high occupational stress on OC.	Rejected
H_{04}	There will be no significant difference between male and female employees with low occupational stress on OC.	Rejected

Interpretation & Conclusion:

This research work aimed to investigate the gender differences of organizational commitment and organizational citizenship behaviour in relation to occupational stress among government employees in Kanpur. Ho1 is rejected; its means there is a significant difference between male and female employees with high occupational stress on OCB and mean score of female employees are higher than male employees thus we conclude that female employees with high occupational stress have better OCB than male employees with high occupational stress. Ho2 is rejected; there is a significant difference between male and female employees with low occupational

stress on OCB and mean score of female employees are higher than male employees thus we conclude that female employees with low occupational stress have better OCB than male employees with low occupational stress. Ho3 is rejected; there is a significant difference between male and female employees with high occupational stress on OC and mean score of male employees are higher than female employees thus we conclude that male employees with high occupational stress have better organizational commitment that female employees with high occupational stress. Ho4 is rejected; - There is a significant difference between male and female employees with low occupational stress on OC and mean score of male employees are higher than female employees thus we conclude that male employees with low occupational stress have better organizational commitment that female employees with low occupational stress.

References

1. *Abdullah, A. (2011) Evaluation of Allen and Meyer's organizational commitment scale: A cross-cultural application in Pakistan. Journal of Education and Vocational Research, 1(3), 80-86.*
2. *AbuAlRub, R. F. (2006) Replication and Examination of Research Data on Job Stress and Coworker Social Support with Internet and Traditional Samples. Journal of Nursing Scholarship, Volume 38, Issue 2, Pp. 200-204.*
3. *Adiba, M. S. W. and Nair, R. (2021). Occupational Stress and Its Impact on Work and Work-Life Balance among Nurses in a Large Private Hospital in South India. Indian Journal of Forensic Medicine & Toxicology, Volume 15, Issue 2, Pp. 3978-3984. https://doi.org/10.37506/ijfmt.v15i2.14994*
4. *Adams, J. M., & Jones, W. H. (Eds.). (1999). Handbook of Interpersonal Commitment and Relationship Stability. Springer Science + Business Media, LLC Alotaibi, A. G. (2001).*
5. *Antecedents of Organizational Citizenship Behavior: A Study of public personnel in Kuwait. Public Personnel Management, 30(3), 363–376.*
6. *Argyris, C. (1960). Understanding Organizational Behavior. Homewood, IL: Dorsey Press.*
7. *Becker, H.S. (1960). Notes on concept of commitment. American Journal of Sociology, 66(1), 32-40.*
8. *Bhal, K. T. (2005). Dyadic and average leadership styles as predictors of subordinate satisfaction, commitment and organizational citizenship behavior. Indian Journal of Industrial Relations, 40(3), 372-385.*

9. *Bhatnagar, J. (2007). Predictors of organizational commitment in India: Strategic HR roles, organizational learning capability and psychological empowerment. The International Journal of Human Resource Management, 18(10), 1782-1811.*
10. *Caldwell, D. F., Chatman, J. A., & O'Reilly, C. A. (1990). Building organizational commitment: A multifirm study. Journal of Occupational Psychology, 63(3), 245–261.*
11. *Chen, Z. X., & Francesco, A. M. (2003). The relationship between the three components of commitment and employee performance in China. Journal of Vocational Behavior, 62(3), 490–510.*
12. *Cheng, Y., & Stockdale, M. S. (2003). The validity of the three-component model of organizational commitment in a Chinese context. Journal of Vocational Behavior, 62(3), 465–489.*
13. *Lee, K., Allen, N. J., Meyer, J. P., & Rhee, K.-Y. (2001). The Three-Component Model of Organisational Commitment: An Application to South Korea. Applied Psychology, 50(4), 596–614.*

Paper Received : 08 Feb., 2025 ***Paper Accepted : 18 Feb., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 61-63

कल्पसूत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में राजा विषयक विचार

*डॉ० दिनकर त्रिपाठी **

शोध सारांश

कल्पसूत्रों में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का सबसे पहले लिखित विवेचन हुआ है। इससे पूर्व श्रुति परम्परा और इसी व्यवस्था से प्राचीन भारतीय शासन प्रशासन का संचालन होता रहा है। कल्प सूत्रों में राजा के गुण दोष, योग्यता और सदाचारिता पर जहाँ एक ओर विशेष बल दिया है वहीं दूसरी ओर दुराचारी आततायी, क्रूर और वक्रमुख न होने का भी विधान है।

मूल शब्द – *कल्पसूत्र, राजा, धर्म, साहित्य, दण्डनीति, दूत, चर*

ज्ञातव्य है कि वेदांग साहित्य का कल्प अथवा सूत्र साहित्य धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का लिखित स्वरूप प्रथमतरू प्रस्तुत करता है। कल्प की धर्मसूत्र विधा के रचनाकार आचार्यों ने राजनीतिक व्यवस्था विषयक चिंतनों में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के प्रत्येक पक्ष पर सूक्ष्मतम विवेचनायें प्रस्तुत किया है। उन्होंने वैदिक ऋषि परम्परा के विचारों को आधार बनाकर अपनी समकालीन प्रचलित एवं समाज स्वीकृति प्राप्त नियम विधानों को प्रवर्तित किया है। जिसका अनुपालित स्वरूप तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के सफल संचालन में देखन को मिलता है। धर्मसूत्रों में राजधर्म ही गुणधर्म है, जो धर्म (Way of Life) जीवन शैली का महनीय अंग रहा है।[1] कल्प कालीन भारत में एक मात्र राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का सर्वोपरि पद राजा का था। समाज की सारी व्यवस्था का संचालन राजा पर निर्भर रहा। प्रजा पालन तथा धर्म की रक्षा का पूर्ण दायित्व राजा द्वारा निर्वहन होना निश्चित था। अधर्म पर पूर्ण नियंत्रण राजा के द्वारा ही होना निर्दिष्ट है।

आचार्य गौतम के विचार में ''राजा एवं वैदिक विद्वान ब्राह्मण दोनों ही लोक में व्रतों का पालन कराते हैं। सभी प्राणिजगत एवं पदार्थ राजा और वेदज्ञ ब्राह्मणों के अधीन निश्चित किए गए हैं।''[2] फलतः राजा को धर्म पालन एवं प्रजा रक्षण हेतु धर्म विधानों के पालनार्थ शक्तिमान किया गया है। इसी क्रम में हम यह भी निर्देशन प्राप्त करते हैं कि ''ब्राह्मणों के अतिरिक्त राजा ही सबका स्वामी होता है। उसका आसन वेदज्ञ ब्राह्मणों के आसन के अतिरिक्त सभी से ऊँचा होता है। ब्राह्मणों के आशीष् से वह सम्मानित होता रहा है।''[3] राजा को

* *एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान–विभाग, फीरोज़ गांधी पी०जी० कॉलेज, रायबरली, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ०प्र०*

सत्यभाषी और कल्याणकारी होना चाहिए.। वेदज्ञ एवं आन्वीक्षिकी का उसे ज्ञाता होना अनिवार्य किया गया है। एतदर्थ उसे नियमित रूप में गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करते रहने का विधान भी है।[5]

राजा का जितेन्द्रिय तथा गुणी होना आवश्यक बतलाया गया है। राजा उपायों के प्रयोग में कुशल हो।[6] निष्पक्ष निर्णयात्मक क्षमता की नितान्त अपेक्षा राजा में की गयी है।[7] आचार्य आपस्तम्ब ने राजा के लिए स्पष्ट निर्देश किया है कि वह अपन मंत्रियों एवं गुरुओं की तुलना में कुछ भी अधिक सुख सुविधा का उपभोग न करे।[8] कर्त्तव्यों का पालन समुचित रीति से करने वाला राजा आपस्तम्ब आचार्य के मत में इस लोक और स्वर्ग लोक को जीत लेता है।[9] राजा के व्यक्तित्व के विषय में भी सूत्रकारों ने गहनता से विचार विमर्श करके उसका निश्चयन पूर्वक निर्देश किया है कि राजा को व्यसनों से सर्वथा दूर रहना, सुरापान एवं सुन्दरी में आसक्ति न रखना, जुआरी न होना तथा बधनीय व्यक्ति के प्रति भी अत्यधिक क्रोध नहीं करना चाहिए।[10] स्मित वदन वाला और सुदर्शन होना भी राजा की विशेष गुववत्ता में दर्शित है। इसके लिए राजा को अपना सुन्दर और आकर्षक स्वरूप भी बनाये रखना अपक्षित किया गया है.। इसीलिए विद्वानों के मत में राजा को दैवी स्वरूप प्रदान किया गया है। राजा द्वारा प्रजा, धर्म और ब्राह्मणों की रक्षा किया जाना प्रमुखता में सुनिश्चित है। इसीलिए आचार्य गातम ने राजधर्म प्रकरण की व्यवस्था करते हुए निर्दिष्ट किया है कि राजा का प्रजा पालन प्रयत्न पूर्व करना चाहिए।[2] शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना राजा के लिए एक अतिरिक्त एवं विशेष कर्त्तव्य के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। प्रजा की सम्पत्ति की सुरक्षा, आन्तरिक आपदा से रक्षा करना, राज्य की प्रजा के हित में प्रशासन व्यवस्था बनाना अपराधों को रोकना तथा अपराधियों को दण्ड देना, और उनसे कर ग्रहण करना, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक अभ्युन्नति के कार्यों को प्रोत्साहन देना आदि कार्यों का निर्धारण कल्प साहित्य में हमारे आचार्यों ने विहित किया है।[13] इन्हीं का अनुपालन प्राच्य भारतीय राजनीति में राजा द्वारा सुनिचित किया जाता रहा।

इस प्रकार पूर्व विवेचनाओं के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कल्प सूत्रीय राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में राजतंत्रात्मक राजा के विषय में सर्व प्रथम सूत्रात्मक शैली में चिंतनपूर्ण निर्देशन विहित किया है। इसके पूर्व मात्र कथन एवं श्रवण की परम्परा में ही राजनीतिक व्यवस्था का संज्ञान प्राप्तव्य रहा। क्रमबद्ध रूप में सूत्रशैली में राजतंत्रात्मक व्यवस्था के राजा से सम्बन्धित बहुव्यापक विचार प्रस्तुत हैं। विस्तार से बचने के लिए यहाँ संक्षेपतरू निदर्शन स्वरूप गवेषणात्मक विचार उल्लिखित किया गया है।

संदर्भ

1. *बौधायन धर्म सूत्र 1.1.3 अभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञो रक्षणं गुण धर्मः।*
2. *चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी–1972*
3. *गौत धर्मसूत्र 1.8.1–2 द्वौ लोके धृतव्रतौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः।*
   चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी–1966
3. *तदेव 2.2–1 राजा सर्वस्यष्टे ब्राह्मण वर्जम् तथा 2.2.7–8*
4. *तदेव 2.2.2 साधुकारी साधुवादी।*
5. *तदेव 2.2.3 हरदत्त की व्याख्या – अभिविनीतः गुरुभिः*
6. *तदेव 2.2.4 सम्यक् शिक्षितः।*
7. *तदेव 2.2.5–6 समःप्रजासुस्यात् हितमासां कुर्वीत।*
8. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2.25–10 गुरुनमात्यां च नातिजीवेत्।*
   सम्पादक जी व्यूहलेर, बम्बई संस्कृत सीरीज–1932
9. *तदेव 2.11.4 एवं वृत्तो राजोभौ लोकावभिजयति।*
10. *विष्णु धर्म सूत्र 3.50, 3.90 बध्येष्वपि न भ्रूकुटीमाचरेत्, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी द्वारा पुनर्मुद्रित 1963*
11. *3.86 सुदर्शनश्च स्यात् तथा 389 स्मित पूर्वभाषी स्यात्*
12. *गौतम धर्मसूत्र 2.2.6 हितमासां कुर्वीत तथा 2.2.9,10 एवं 2.1.7 राज्ञोधिक रक्षणं सर्वभूतानम्।*
13. *विष्णुधर्मसूत्र 3.2.3 गौतमधर्मसूत्र 2.1.7, 2.29–10, वसिष्ठधर्मसूत्र 91–1 ए०ए० फ्यूहरेर द्वारा सम्पादित भण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट पूना–1930*

Paper Accepted : 15 Feb., 2025

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 64-76

2024 लोकसभा चुनाव एवं उसके बाद I.N.D.I.A गठबंधन के सामने उत्पन्न समस्यायें

डॉ० प्रमोद सिंह *

सारांश

भारतीय राजनीति में गठबंधन का इतिहास बहुत ही पुराना है। 1977 से ही गठबंधन सरकार की शुरुआत हुई। 2004 में भी कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग–U.P.A.) ने पूर्ण बहुमत प्राप्त किया। 2009 में भी चुनाव परिणाम के बाद U.P.A. के दल फिर से गठबंधन का हिस्सा बन गये। गठबंधन में समान विचारधारा वाले दलों के साथ आने से सफलता की सम्भावना ज्यादा रहती है।

मूल शब्द *– I.N.D.I.A., U.P.A., N.D.A.*

लोकसभा 2024 चुनाव को देखते हुए कांग्रेस और भाजपा द्वारा अपनी–अपनी जीत के लिए गठबंधन का प्रयास शुरू कर दिया गया है, कांग्रेस थिंक टैंक इस बात पर बल दे रही है कि यदि सभी विपक्षी दल एकजुट हो जाएं और पूरी ताकत के साथ महागठबंधन कर लें तो निष्चित रूप से भाजपा को सत्ता से बाहर कर सकते है। कांग्रेस नेता खड़गे सभी विपक्षी दलों को एक मंच पर लाने का प्रयास का रहे हैं। कांग्रेस का मानना है कि भाजपा को हराने के लिए राजनीतिक ही नहीं वैचारिक एकजुटता से ही 2024 लोकसभा चुनाव में विजय प्राप्त हो सकती है।

'सर आइवर जैनिग्स' ने विपक्ष के संदर्भ में यह विचार दिया है कि '' अमुक देश की जनता स्वतंत्र है या नहीं तो यह जानना आवश्यक है कि वहाँ पर, विरोधी दल है या नहीं और है तो कहाँ पर है?'' भारतीय संसद मे विपक्ष हमेशा से चर्चा के केंद्र मे रहा है। विपक्षी दल संसदीय प्रक्रिया के अंदर रहकर सरकार को बेनकाब करने का प्रयास करता है! सरकार पर आरोप लगाने का मुख्य उत्तरदायित्व विपक्षी दल पर होता है। जनता के असन्तोष को विपक्षी दल ही संसद में प्रस्तुत करती है जो दल विपक्ष में होते हैं उनको एक निश्चित भूमिका निभानी होती है। विपक्ष को भी सत्तारूढ दल की तरह जनता के कार्य

---

* *एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, टी.एन.पी.जी कालेज, टाण्डा, अम्बेडकर नगर*

करने होते। जे. बन्धोपाध्याय के अनुसार, ''बन्दी शिविर, सैनिक शासन गुप्त पुलिस और सशस्त्र विद्रोह तानाशाही देशों के प्रमुख लक्षण है। प्रजातंत्र में संसदीय विरोधी दल इन लक्षणों की जगह एक विकल्प प्रस्तुत करता है। एक प्रभावशाली संसदीय विपक्षी दल की तरह कार्य करके ही एक राजनीतिक दल को निर्वाचनों में पराजित हो गया हो तो फिर सत्तापूर्ण शांतिपूर्ण साधनों द्वारा सत्ताधारी बन सकता है। तभी आदर्श सरकार के रूप में लोकतंत्र सफल हो सकता है।''

संप्रग की जगह नया गठबंधन 'इंडिया' के नामकरण के साथ ही 2024 के चुनाव को 'राजग' बनाम 'इंण्डिया' की बात करते हुए विपक्षी दल ने देश के सामने एक वैकल्पिक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक एजेंडा पेश करने का संकल्प किया। 'इण्डिया' गठबंधन ने सत्ता शासन के भाव और शैली दोनों को बदलने का वादा किया है।

यह गठबंधन अधिक पारदर्शी, परामर्शी, लोकतांत्रिक और सहभागी होगा। गठबंधन का मानना है कि मुम्बई में 11 सदस्यीय संयुक्त समन्वय समिति के द्वारा 'इंडिया' का संचालन कैसे किया जायेगा कि रूपरेखा रखेगी। न्यूनतम साझा कार्यक्रम और राजनीतिक अभियान क्या होगा, सीटों का बटवारा, अन्य समस्यायों पर भी चर्चा की जायेगी। 'इंडिया' गठबंधन का मानना है कि मतभेद को व्यापक देशहित के लिए पीछे छोड़ दिया गया है हम एक जुट होकर 2024 का लोकसभा चुनाव लडेंगे और जीतेंगे भी। 543 सदस्यीय लोकसभा में अधिकांश सीटों पर 'इण्डिया' और 'एनडीए' के बीच चुनावी महासमर के लिए मैदान तैयार हो रहा है।

'इंडिया' या इंडियन नेशनल डेपलपमेन्टल इन्क्लूसिव अलायन्स देश को यह संदेश देना चाहता है कि विपक्षी दल का यह गठबंधन भारत का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। 'इंडिया' गठबंधन बताना चाहता है कि जब भी कोई हिन्दुस्तान के सामने खड़ा होगा जीतेगा कौन है यह सबको ज्ञात है। यह गठबंधन इस बिन्दु का भी उल्लेख कर रहा है कि लोकतंत्र में देश की आवाज बनाने के लिए भी 'इण्डिया' गठबंधन गठित किया गया है। 'इण्डिया' गठबंधन संविधान को लेकर बना है जिसमें अनुच्छेद 1 में यह कहा गया है कि 'इण्डिया' यानि भारत राज्यों का एक संघ है इसलिए इसमें 26 राजनीतिक दलो द्वारा घोषित 'इण्डिया' गठबंधन के पीछे यही भावना निहित है। हम सब देश के पर

परफार्मर हैं, भाजपा द्वारा सौदेबाजी सरकारी सम्पति को बेचना लोकतंत्र संविधान पर हमला कर भारत के विचार और आत्मा पर प्रहार किया जा रहा है।

सभी 26 विपक्षी दलों के गठबंधन द्वारा पहले सामूहिक संकल्प में जातीय जनगणना को राजनीतिक एजेंडे का अहम हिस्सा बताया है। इस सामूहिक संकल्प के अन्तर्गत यह इस बात पर बल दिया गया है कि भारत के 26 प्रगतिशील दलो के नेता संविधान में निहित भारत के विचार की रक्षा के लिए अपना दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हैं। हमारे भारतीय गणतंत्र पर सत्ता पक्ष N.D.A. द्वारा व्यवस्थित तरीके से व्यापक गंभीर हमला किया जा रहा है। संविधान के मूलभूत स्तम्भो – धर्मनिर्पेक्ष लोकतंत्र, आर्थिक संप्रभुता, सामाजिक न्याय और संघवाद को नियोजित और खतरनाक रूप से कमजोर किया जा रहा है। N.D.A. का यह अभियान हमारे संवैधानिक और बुनियादी मूल्यों को भी नष्ट कर रहा है। इतिहास के साथ छेड़छाड़, सामाजिक सद्भाव को दूषित करने का प्रयास किया जा रहा है, साथ ही संविधान और लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित राज्य सरकारों के संवैधानिक अधिकारों पर हमले हो रहे है, जिसको रोकने के लिए 'इण्डिया' गठबंधन दृढ संकल्प है। गैर भाजपा शासित राज्यों में राज्यपाल और उपराज्यपाल की भूमिका सभी संवैधानिक मानदंडो से परे हैं महाराष्ट्र की स्थिति तथा मणिपुर की स्थिति भी चिंतित करने वाली है। महिलाओं–दलितों के खिलाफ अपराध को भी राकने मे भजपा सरकार के खोखले दावे भी इस गठबंधन के द्वारा दृढ़ता से मुकाबला करने की प्रतिबाध्यता जताई है।

चाहे हिमांचल का चुनाव हो या कर्नाटक का चुनाव हो विपक्ष यह दर्शाने का प्रयास कर रहा है कि हम एकजुट हैं और इसीलिए राजनीति की जीत हुई है। यह 'इण्डिया' गठबंधन बेरोजगारी, महंगाई, सामाजिक विभाजन, महाराष्ट्र संकट, मणिपुर संकट को ध्यान में रखकर कार्य कर रही है। मणिपुर तत्कालीन संकट का समाधान कैसे निकाला जाये विपक्षी दलों के संगठन के कुछ सांसदों ने मणिपुर के कुछ क्षेत्रों का भ्रमण किया जहाँ नरसंहार की घटनायें ज्यादा हुई है। इसी को ध्यान में रखकर विपक्ष गठबंधन 'इण्डिया' के द्वारा संसद में अविश्वास प्रस्ताव भी लाया जा चुका है लेकिन वर्तमान विपक्षी दल को यह ज्ञात है कि सत्ताधारी राजग बहुमत में उससे दोगुने से ज्यादा होने के कारण यह प्रस्ताव पास नहीं हो पायेगा,

लेकिन विपक्ष यह 'इण्डिया' गठबंधन यह संगठित होकर यह दर्शाना चाहता है कि प्रधानमंत्री मणिपुर हिंसा पर संसद में अपना विचार प्रस्तुत करें। इसीलिए मणिपुर हिंसा को केन्द्र मे रखकर 'इण्डिया' गठबंधन सरकार की पूरी कार्यप्रणाली पर स्वतंत्र प्रश्न पूछ कर चुनाव से पहले ही सरकार को चारो तरफ से घेरने का प्रयास कर रहा है।

'इण्डिया' गठबंधन यह मानकर चल रहा है कि संगठित रूप से मिलकर कार्य कऱने से ही इस गठबंधन को सफलता मिल सकती है। कांग्रेस नेता खड़गे का विचार है कि कांग्रेस यदि समान विचारधारा वाले दलो से मिलकर 2024 लोकसभा चुनाव में कांग्रेस कठिन परिस्थितियों में सक्षम और निर्णायक नेतृत्व प्रदान कर सकती है। 'इण्डिया' गठबंधन ने एक दृष्टि पत्र तैयार किया है जिसमें बेरोजगारी गरीबी–उन्मूलन, महंगाई, महिला सशक्तीकरण रोजगार सृजन और राष्ट्रीय सुरक्षा के अहम मुद्दों को शामिल किया गया है। 'इण्डिया' गठबंधन ही इन समस्यायों का समाधान कर सकती है।

I.N.D.I.A. के सफर को देखे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान में इस गठबंधन का प्रतिनिधित्व कौन करेगा, उसका एजेंडा और विमर्ष क्या होगा गठबंधन इसी बिन्दु को ध्यान में रखकर 'मोरिस जोन्स' ने विचार व्यक्त किया है कि, ''विरोधी दलों में लूट–फूट का कारण है उनमें आपस में सामाजिक सहयोग कम है और दलों के अग्रगामी नेता बिना शक्ति के भी अपनी छोटी मोटी टुकड़ियों के नेता बने रहना चाहते हैं और एक बड़े समूह में नही मिलना चाहते है।''

'इण्डिया' गठबंधन की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि संबंधित दल अपने वोट बैंक को कहाँ तक और किस सीमा तक ट्रांसफर कराने में सक्षम है। किसी भी चुनाव में क्षेत्रीय दल अपने राज्यों मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। रजनी काठारी ने इस पर लिखा है कि, ''व्यक्ति का महत्व अभी भी राजनीति से बहुत है। भारत में एक ही संगठन के अभिन्न अंग अलग–अलग काम करते है एक ही दल के राष्ट्रीय और राज्य शाखाएं प्रतिकूल दिशाओं में चलती है और ऐसे गुटों और तत्वों से हाथ मिलाती है जो विचारधारा और नीति में उनसे भिन्न है। गठबंधन के अन्तर्गत यह, समस्या आ सकती है उनकी साझी रणनीति क्या होगी। नेता का चेहरा क्या होगा ''

वर्तमान स्वरूप को देखकर कहा जा सकता है कि 'इंडिया' गठबंधन के 26 विपक्षी दल के नेता अपनी चुनावी शंखनाद के अन्तर्गत यह दिखाना चाहते है कि, ''हम एकजुट हैं यूनाइटेड वी स्टैण्ड'' के नारों के साथ, एकजुटता दर्शाते हुए यह बताने का प्रयास कर रहे है कि संगठित रूप से मिलकर एकजुटता के साथ चुनाव लड़ने, साझा कार्यक्रम से लेकर संयुक्त राजीतिक अभियान क्या होगा को स्पष्ट करने का प्रयास कर रहे है। इसके अन्तर्गत मणिपुर घटना को लेकर भी कांग्रेस आगामी लोकसभा चुनाव का एजेंडा बनाना चाहती है।

2024 की राजनीतिक टकराव में विपक्ष द्वारा गौतम अडानी के जरिए सीधे प्रधानमंत्री मोदी और उनकी सरकार का विरोध प्रदर्शन किया गया। आई. एन.डी.आई.ए के प्रयास के कारण 18वीं लोकसभा चुनाव में भाजपा को अकेले दम पर बहुमत पाने से वंचित करने में सफल रही। इस कारण विपक्ष को यह संजीवनी मिल गई। विपक्ष का असर संसद की कार्यवाही में भी देखने को मिला। हरियाणा और फिर महाराष्ट्र में बीजेपी की जीत ने विपक्षी गठबंधन की यह राह कठिन कर दी। इस चुनाव का असर यह रहा कि आई.एन.डी.आई.ए में आपस में विवाद के कारण विपक्ष में दरार पड़ती गई। दिल्ली चुनाव में अंबेडकर मुद्दे को भी विपक्ष द्वारा हवा दी गई। दिल्ली विधानसभा चुनाव में आप और कांग्रेस के बीच आपसी विरोधाभास देखने को मिला। इस लोकसभा चुनाव में आई.एन.डी.आई.ए के कारण 99 पर कांग्रेस विजय के बाद भी कांग्रेस और अन्य दलों की राह आसान नहीं होने वाली है। चाहे हरियाणा हो या महाराष्ट्र इन दोनों चुनाव में कांग्रेस और विपक्षी दलों के बीच विरोध बढ़ता गया कांग्रेस के नेतृत्व को चुनौती केवल आप से ही नहीं बल्कि अन्य सहयोगी राजनीतिक दलों द्वारा भी की जाने लगी है। क्योंकि कांग्रेस और उनके घटक दलों द्वारा एक दूसरे की जड़े काटने में लगे है। ममता बनर्जी ने भी गठबंधन के नेतृत्व की इच्छा जताई है। उत्तर प्रदेश विधानसभा उपचुनाव में भी सपा का कोई भी सहयोग कांग्रेस को नहीं मिला। दूसरी तरफ जम्मू कश्मीर चुनाव के बाद मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने कांग्रेस को चुनाव परिणाम स्वीकार करने की बात कही, उनका विचार था कि ईवीएम पर कांग्रेस दोष देना बंद कर दे , झारखंड के मुख्यमंत्री हेमंत सोरेन भी कांग्रेस के इस विचार से सहमत नहीं दिखे। बेलगामी अधिवेशन के सौ वर्ष पूरे होने पर कांग्रेस अध्यक्ष का मानना

था कि 2025 कांग्रेस के सशक्तिकरण का वर्ष होगा। लोकसभा चुनाव के बाद विपक्ष को लगा कि उसके द्वारा जो नैरेटिव उत्पन्न किया गया जिसकी अपेक्षा की गई थी। उसका लाभ विपक्ष को मिलेगा लेकिन दिल्ली चुनाव के समय आई.एन.डी.आई.ए के सहयोगियों से कांग्रेस का विरोध दिखाई देता प्रतीत हो रहा है। क्षेत्रीय पार्टियों ने दिल्ली चुनाव में आप का समर्थन कर काग्रेस का विरोध किया। शिवसेना और (यूबीटी) ने भी कांग्रेस का विरोध कर आप का समर्थन किया। कांग्रेस की जमीनी राजनीति में राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन की सियासत के लिहाज से इन पार्टियों का कदम उसकी चिंता बढ़ा देगी। 2025 का यह वर्ष कांग्रेस के लिए महत्वपूर्ण होगा क्योंकि राजनीति के बदले दौर में लंबे समय तक भविष्य की कोई उम्मीद नहीं दिखाई देने पर केवल वैचारिक प्रतिबद्धता के सहारे नेताओं कार्यकर्ताओं को लड़ाई लड़ते रहने के लिए प्रेरित करना अब आसान नहीं रहा। शिवसेना (यूबीटी) के प्रवक्ता संजय राउत का विचार है कि विपक्षी दलों का गठबंधन आई.एन.डी.आई.ए से जुड़े दलों को यदि लगता है कि यह गठबंधन सिर्फ लोकसभा चुनाव के लिए था तो इस स्थिति के लिए कांग्रेस को दोषी ठहराया जाना चाहिए क्योंकि कांग्रेस ही इस गठबंधन की सबसे बड़ी पार्टी है और इसे एकजुट रखना कांग्रेस की जिम्मेदारी है वहीं दूसरी तरफ जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने आइएनडीआईए के नेतृत्व और एजेंडे पर स्पष्टता की कमी पर बल दिया उनका मानना था कि अगर यह गठबंधन केवल 2024 के लोकसभा चुनाव के लिए था तो उसे समाप्त कर देना चाहिए। संजय राउत का मानना है कि हमने लोकसभा चुनाव एक साथ लड़ा और अच्छे नतीजे हासिल किये। लेकिन उसके बाद सहयोगी दलों में कोई संवाद नहीं हुआ और भविष्य की कोई योजना तैयार करने के लिए गठबंधन की एक बैठक होनी चाहिए थी। विपक्षी गठबंधन में सहयोगियों के बीच संवाद की कमी से यह आभास हो रहा है कि दो दर्जन दलों से अधिक वाले समूह में सब कुछ ठीक नहीं है। 2024 के संसदीय चुनाव से पहले बना गठबंधन यदि टूट जाता है तो इसे पुनर्जीवित नहीं किया जा सकेगा। यदि गठबंधन केवल लोकसभा चुनाव के लिए था तो घोषित कर दीजिए कि आई.एन.डी.आई.ए अब अस्तित्व में नहीं है। उस स्थिति में सहयोगी अपना रास्ता चुनने के लिए स्वतंत्र होंगे। पिछले साल नवंबर में महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव के समय भी कांग्रेस नेतृत्व ने शीट बंटवारे को लेकर कोई हस्तक्षेप नहीं किया। जिसके कारण हम एक दूसरे से बढ़त बनाने की कोशिश

के बजाय एकजुट महाविकास आधाड़ी के रूप में सावधानीपूर्वक सीट बटवारा कर सकते थे। शिवसेना (यूबीटी) ने स्पष्ट कर दिया है कि नागपुर एवं मुंबई महानगरपालिकाओं के चुनाव वह अकेले दम पर लड़ेगी। दिल्ली चुनाव के समय कांग्रेस और आप के बीच खींचतान शुरू हो गई है आई.एन.डी.आई.ए के नेता के रूप में राहुल गांधी के नेतृत्व को गठबंधन में शामिल नेता उनके नेतृत्व को चुनौती देते रहते हैं। लालू यादव का मानना है की ममता बनर्जी को अब गठबंधन का नेतृत्व करना चाहिए। सभी सहयोगी दलों का कहना है कि गठबंधन का कोई न्यूनतम साझा कार्यक्रम ना होने के कारण आपस में सभी असहमत होते दिख रहे हैं जब इंडिया का गठन हुआ था तो उनका एकमात्र लक्ष्य लोकसभा चुनाव में भाजपा को हराना था। इसके अलावा उसके पास कोई स्पष्ट दृष्टिकोण और यहां तक कि कोई वैकल्पिक एजेंडा भी नहीं था। एक तथ्य यह भी है कि आई.एन.डी.आई.ए पंजाब केरल और बंगाल में मिलकर चुनाव नहीं लड़ सकी थी। यह गठबंधन की एकजुटता और भविष्य के लिए ठीक नहीं था। यह संभव है कि आई.एन.डी.आई.ए के घटक अगला लोकसभा चुनाव मिलकर आपस में लड़ना पसंद करें। यदि आपस में लड़ते रहें, झगड़ते रहे तो ना तो जनता को सही संदेश जाएगा और ना ही गठबंधन भाजपा के नेतृत्व वाले गठजोड़ राजग का विकल्प बन पाएगा। आई.एन.डी. आई.ए की समस्या यह है कि उसके अधिकतर घटक दलों का वोट बैंक कांग्रेस से छिटक कर आया है ना तो तब राजग का विकल्प बनता दिख रहा और ना ही अब। कांग्रेस का प्रदर्शन बीते तीन लोकसभा चुनाव में कमजोर रहा। यदि कांग्रेस विधानसभा चुनाव के जरिए खोया जनाधार वापस पाने की कोशिश करती है तो उसके सहयोगी दलों को यह रास नहीं आएगा। यदि यही स्थिति कायम रही तो आई.एन.डी.आई.ए. या अन्य कोई गठबंधन भाजपा के नेतृत्व वाले राजग को कभी चुनौती नहीं दे पाएगा। किसी भी लोकतंत्र में सशक्त सत्ता पक्ष के साथ ही मजबूत विपक्ष भी होना चाहिए। यही नहीं ऐसे विपक्ष के पास अपना कोई ठोस एजेंडा भी होना चाहिए जो जनता को आकर्षित कर सके। कांग्रेस के अन्य सहयोगी दल अपने–अपने राज्यों में भाजपा को टक्कर देने में समर्थ है। यदि उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, बंगाल में तृणमूल कांग्रेस, तमिलनाडु में डीएमके , केरल में माकपा की क्षेत्रीय स्तर पर पकड़ है उनका राष्ट्रीय स्तर पर कोई उनके पास एजेंडा नहीं है। आई.एन.डी.आई.ए. के घटक कोई ऐसा रास्ता निकाले जो देश के लोकतंत्र को वैचारिक स्तर पर

मजबूती प्रदान कर सके। इस गठबंधन में शामिल दलों को अपनी राजनीतिक ताकत के साथ ही कांग्रेस की राजनीतिक ताकत की भी चिंता करनी होगी । हरियाणा महाराष्ट्र और दिल्ली चुनाव के बाद आई.एन.डी.आई.ए के सहयोगी घटकों ने वोटर लिस्ट में कथित गड़बड़ी को लेकर एकजुटता लाने का प्रयास किया है। डुप्लीकेट फोटो मतदाता प्रदान पत्र को लेकर संसद में यह मुद्दा उठाने का प्रयास किया है। जहां एक तरफ विपक्ष संभल का मुद्दा तृणमूल कांग्रेस बांग्लादेश में अल्पसंख्यक हिंदुओं के विरुद्ध हो रहे हिंसा के साथ बढ़ती बेरोजगारी, महंगाई और किसानों के प्रश्न को लेकर, धन के कथित आवंटन को लेकर विपक्ष हमलावर रहा है। विपक्षी गठबंधन आई.एन.डी.आई.ए. के कई घटकों के बीच मतभेद उभरकर सामने आ रहे हैं कांग्रेस द्वारा गंभीर आत्मनिरीक्षण की मांग उठ रही है। इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि गठबंधन का भविष्य खतरे में है चाहे अडानी मुद्दा हो या संसद में बहस, चाहे मणिपुर हिंसा हो, चाहे संभल हिंसा हो, हर जगह आई.एन.डी.आई.ए के घटक दलों के बीच आपसी मतभेद सामने आ रहे है। हरियाणा, महाराष्ट्र, दिल्ली में कांग्रेस की करारी हार के बाद अन्य सहयोगी पार्टियों में भी गठबंधन के भीतर अपनी ताकत दिखाने की होड़ लगी है। जहां एक तरफ बंगाल के मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने गठबंधन के नेतृत्व की इच्छा जताई है ममता बनर्जी का मानना है कि आई.एन.डी.आई.ए को तैयार करने में मैंने अपना पूरा समय दिया है। अब उसे चलाना उन पर निर्भर है जो इसका नेतृत्व कर रहे हैं। अगर वे ठीक से उसे चला नहीं पा रहे हैं तो उनकी जिम्मेदारी है मैं सभी राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों के संपर्क में हूं और उन सबसे अच्छे से संबंध बनाकर चलना चाहती हूं। दूसरी तरफ समाजवादी पार्टी मुख्य प्रमुख अखिलेश यादव, शरद पवार, संजय राउत, केजरीवाल ने भी आई.एन.डी.आई.ए का नेतृत्व करने की बात कही है आई.एन.डी.आई.ए. नेतृत्व को लेकर उठे सवालों का समाधान किस तरह होगा लेकिन यदि गठबंधन की कमान ममता बनर्जी या सहयोगी दल के किसी अन्य नेता के हाथ में आती है तो कांग्रेस का प्रभाव और अधिक कमजोर होगा। वह पहले से ही घटक दलों के दबाव का सामना कर रही है घटक दलों का कांग्रेस को यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि उसे सहयोगी दलों को सम्मान और स्थान देने के लिए कम से कम सीटों पर चुनाव लड़ना चाहिए। ममता बनर्जी ने गठबंधन का नेतृत्व संभालने को लेकर बार–बार अपनी बात रखी है। लेकिन नीति और नियम यह कहता है कि किसी भी गठबंधन की

कमान इस घटक के हाथ में होनी चाहिए जो सबसे बड़ा और प्रभावी हो। कांग्रेस अपनी तमाम कमजोरी के बाद भी राष्ट्रव्यापी प्रभाव वाला राजनीतिक दल है। यदि कांग्रेस के हाथ से गठबंधन की कमान चली गई तो सहयोगी दल उसे और अधिक किनारे लगाने का ही काम करेंगे। कांग्रेस के सहयोगी दल कांग्रेस से ही टूट कर बने हैं इसलिए उन्हें स्वाभाविक सहयोगी नहीं कहा जा सकता। इसी कारण आपस में विवाद करते रहते हैं अतः स्पष्टतः कहा जा सकता है कि आज आई.एन.डी.आई.ए के अधिकांश दल कांग्रेस ने नेतृत्व को स्वीकार नहीं कर पा रहे है। लालू प्रसाद यादव, अखिलेश यादव भी आई.एन. डी.आई.ए को कांग्रेस दबाव से मुक्त बनाना चाह रहे हैं। आई.एन.डी.आई.ए. की गठन की बात की जाए तो 25 दिसंबर 2022 को बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के प्रयास से तेजस्वी यादव, फारूक अब्दुल्ला, शरद पवार, सीताराम येचुरी, डी राजा, ओमप्रकाश चौटाला सहित सभी विपक्षी दलों ने व्यापक एकता को लेकर कांग्रेस के साथ सम्मिलित हुए। उन्होंने कांग्रेस के बिना किसी व्यावहारिक विकल्प को नकारकर उसकी स्वीकार्यता पर बाल दिया था। सन 2023 में पटना में नीतीश कुमार ने इस गठबंधन का सफल आयोजन किया और सामूहिक नेतृत्व की भावना का विकास किया। विश्वास वैचारिक अंतर्विरोध एवं गला काट प्रतिस्पर्धा के चलते आई.एन.डी.आई.ए की हालत पहले से भी खराब होती जा रही है। ममता बनर्जी ने कांग्रेस को असफल मानकर स्वयं को गठबंधन के लिए उपयुक्त माना है। सपा, एनसीपी और आप और राजग भी ममता बनर्जी के नेतृत्व को स्वीकार्य माना है। विपक्षी गठबंधन में उत्तर प्रदेश, दिल्ली और महाराष्ट्र को लेकर अधिक विवाद है। इसी बीच रामगोपाल यादव ने यह स्पष्ट कह दिया है कि राहुल गांधी गठबंधन के नेता नहीं है। इसपर संसद में भी सपा और कांग्रेस का विरोध बना हुआ है। दरअसल अपनी अपनी जमीन खोने का डर सबको है। इसीलिए सभी गठबंधन के सहयोगी दल इस मत पर एक मत है कि गठबंधन का नेतृत्व कांग्रेस के हाथों से निकले। यह दर्शाता है कि बेमेल और अवसरवादी गठबंधन की उम्र लंबी नहीं हो सकती। कांग्रेस सिर्फ अपने विस्तार के प्रति समर्पित दिखती है और इसीलिए क्षेत्रीय दल सशंकित है। चाहे एक देश एक चुनाव हो, चाहे बांग्लादेश में हिंदू अल्पसंख्यक का मुद्दा हो, चाहे वक्फ बिल का मुद्दा हो, चाहे ईवीएम, चाहे डुप्लीकेट वोटर लिस्ट का मुद्दा हो चाहे अडानी का मामला हा इस बिंदु पर कांग्रेस अलग–थलग पड़ती नजर आ रही है। ईवीएम के मुद्दे पर आई.एन.डी.

आई.ए में शामिल उसके सहयोगी दल जिसमें नेशनल कांफ्रेंस, तृणमूल कांग्रेस ने कांग्रेस के ईवीएम विरोध पर स्पष्ट वक्तव्य दिया है। कि जो लोग ईवीएम पर संदेह करते हैं उन्हें यह दिखाना चाहिए कि ईवीएम को कैसे हैक किया जा सकता है। आज के इंटरनेट मीडिया युग में जहां पर हर छोटी बात बड़ी बन जाती हो और मीडिया की व्यापक निगरानी हो वहां चुनावी प्रक्रिया में विसंगति से जुड़े आरोप भरोसेमंद नहीं लगता। यह सही है कि चुनावी प्रक्रिया में बाहुबल एवं धन बल के अलावा नाना प्रकार के संसाधनों और मीडिया एवं इंटरनेट मीडिया के द्वारा विमर्श के स्तर पर हस्तक्षेप से मतदाताओं को साधने के उपाय किए जा सकते हैं। लेकिन पूरी चुनाव प्रक्रिया को कटघरे में शामिल नहीं किया जा सकता है। किसी भी लोकतंत्र के लिए या शुभ संकेत नहीं है कि उसके हित धारक तत्व ही उसके प्रति संदेह के बीज बोने का काम करें। वर्तमान परिवेश को देखकर लग रहा है कि आई.एन.डी.आई.ए. के गठबंधन दलों के बीच कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा है आने वाले समय में ममता बनर्जी, लालू प्रसाद यादव, अखिलेश यादव के बाद आप संयोजक अरविंद केजरीवाल भी आई.एन.डी.आई.ए. गठबंधन से बाहर करने की योजना बना रहे हैं। विगत दिनों संसद में भी गठबंधन में फूट खुलकर सामने आ चुकी है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आई.एन.डी.आई.ए का गठन इस उद्देश्य को लेकर हुआ था कि यह गठबंधन अपनी वैकल्पिक नीतियों और विचारों के जरिए भाजपा का मुकाबला करने के साथ ही देश को राजनीतिक दिशा देने का काम करेगा। लेकिन वह वैकल्पिक विचार देने में असमर्थ रहा है। आई.एन.डी.आई.ए अपना कोई प्रभावी द्रष्टिकोण अथवा न्यूनतम साझा कार्यक्रम देश के सामने नहीं रखा। कांग्रेस नेतृत्व सिर्फ यह माहौल बनाना चाहती है कि भाजपा संविधान बदलना चाहती है। ऐसे माहौल के चलते जब कांग्रेस को लोकसभा चुनाव में 99 सीट है और भाजपा 240 सीटों पर सिमट़ गई तो ऐसा प्रचारित किया गया जैसे की विपक्षी गठबंधन की जीत हुई है। यह प्रचार सबसे अधिक कांग्रेस ने किया पर हरियाणा, महाराष्ट्र, और फिर दिल्ली के चुनाव नतीजे ने उसकी हवा निकाल दी। कांग्रेस की प्रभावी उपस्थिति कर्नाटक , तेलंगाना, मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, हिमांचल और कुछ हद तक हरियाणा, पंजाब में है वह अन्य राज्यों में या तो वह बहुत कमजोर है या फिर क्षेत्रीय दलों पर निर्भर रहना पड़ता है। लोकसभा में वह दूसरी सबसे बड़ी पार्टी बनकर अवश्य उभरती है लेकिन इसमें सहयोगी दलों का योगदान रहता है। यदि आई.एन.डी.आई.ए

के सहयोगी घटक अपने बलबूते राजनीति करने लगे और कांग्रेस का साथ छोड़ दे तो कांग्रेस का ग्राफ लोकसभा में नीचे आ जाएगा। आई.एन.डी.आई.ए के घटकों में आपसी खींचतान यह बताती है कि कांग्रेस के लिए अपनी खोई जमीन हासिल करना एक मुश्किल काम है। अतः लोकसभा चुनाव के बाद से लेकर अब तक आई.एन.डी.आई.ए. के सामने समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। क्षेत्रीय दल अपने उद्देश्यों की पूर्ति एवं प्राप्ति के लिए कांग्रेस पर आरोप लगाती रही है, उनका मानना है कि कांग्रेस बड़ी पार्टी होने के नाते उन सभी की समस्याओं के समाधान का प्रयास करें जिस पर यह संगठन टिका हुआ है उनका मानना है कि राहुल गांधी के अंदर नेतृत्व करने की क्षमता नहीं है क्योंकि राहुल गांधी द्वारा घिसी पिटी राजनीति की जाती है। इसलिए गठबंधन का नेतृत्व किसी अन्य दल को दी जानी चाहिए। जबकि कांग्रेस आला कमान राहुल गांधी के नेतृत्व में ही चुनाव लड़ने की बात करती है। इस गठबंधन का अस्तित्व धीरे–धीरे समाप्त होता जा रहा है यदि इस गठबंधन को अपनी पहचान बनानी है तो विवादों से दूर होकर नए तरीके से एकजुट होकर कार्य करना पड़ेगा। आई.एन.डी.आई.ए के रूप में राहुल गांधी को यह समस्या उत्पन्न हो रही है कि गठबंधन के नेता के रूप में राहुल गांधी को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। सभी संघटक दल एक दूसरे की राजनीतिक जमीन कमजोर करने पर लगे रहते हैं। ऐसा हमेशा से देखा गया है कि गठबंधन चुनाव के बाद टूटा हुआ दिखाई दे रहा है। आई.एन.डी.आई.ए के संघटक दलों की जो भी समस्याएं हैं उन्हें आपस में भी सभी अंतर्विरोधों को दूर करना होगा। ऐसा कामन मिनिमम प्रोग्राम बनाना होगा जिस पर सभी संघटक दल एक मत होकर और एकजुट हों। संघठक दलों को ऐसा फार्मूला जारी करना होगा जिस पर आगे बढ़ा जा सके विपक्ष को एक जुट होकर सरकार का विरोध करना होगा। वर्तमान समय में विपक्ष ही वह कड़ी है जो सरकार के ऐसे कार्यों को रोक सकती है। यदि आई.एन.डी.आई.ए को सफल होना है तो सभी संघटक दलों को एक साथ लेकर चलना होगा। संसदीय लोकतंत्र में विपक्ष का अपना महत्व है। समकालीन विश्व में भारतीय संसदीय व्यवस्था में विपक्ष सरकार की नीतियों की आलोचना एवं वैकल्पिक नीतियों के माध्यम से सरकार पर दबाव डालने का कार्य करता है। विपक्षी दल सरकार और संसद का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि वह सरकार को सतर्क रखता है ताकि सरकार कार्य को भली भांति करें। विपक्ष के अभाव में बहुमत दल वाली सरकार

मनमाने तरीके से नागरिक स्वतंत्रता का हनन कर सकती है। विरोधी दल ही संसदीय व्यवस्था में नागरिक हितों को सुरक्षित रख सकती है। यह गठबंधन राज्य स्तर भी होगा ऐसा देखने को मिल रहा है कि इसमें यह भी देखना होगा कि 'इंडिया' गठबंधन में कितने ऐसे दल है जो अपना वोट ट्रांसफर कराने की क्षमता रखते है यह समय ही बतायेगा। विपक्षी गठबंधन यह भी देख रहा है कि यदि कुछ प्रतिशत वोट N.D.A. का ट्रांसफर हो जाए। 'इंडिया' इस फार्मूला पर भी कार्य कर रहा है कि 543 लोकसभा सीटों में 450 सीटों पर राजग के खिलाफ अपने गठबंधन का एक उम्मीदवार मैदान में उतारने पर विचार कर रहा है। यदि ऐसा होता है तो निश्चित रूप से भाजपा नेतृत्व वाले छण्क्ण।ण (एनडीए) और कांग्रेस के नेतृत्व वाले (I.N.D.I.A.) महागठबंधन से सीधा मुकाबला हो सकता है। वर्तमान समय के N.D.A. को बहुआयामी चुनौतियाँ मिल सकती है। यदि 'इंडिया' गठबंधन को बहुमत मे आना है तो उसके लिए उनको सरकार के समानान्तर अपनी विचारधारा, भारत राष्ट्र की कल्पना, विकास की यह अवधारणा, आर्थिक समस्या की वैकल्पिक रूपरेखा की झलक भी उनके द्वारा अपने वक्तव्यों में ध्यान देना होगा।

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में यदि भाजपा (N.D.A) के विरुद्ध 'इंडिया' महागठबंधन को कम से कम तीन कसौटियों पर खरा उतरना होगा। सबसे पहली कसौटी एक साझा–यूनतम कार्यक्रम या वैचारिक आधार की होगी। यदि कांग्रेसनीत गठबंधन प्रधानमंत्री मोदी पर निशाना न साधकर उसके बजाय महंगाई, बेरोजगारी, और बढ़ती असमानता जैसे रचनात्मक मुद्दों पर ध्यान दे तो यह प्रभावशाली हो सकता है। दूसरी कसौटी उसके केन्द्र में एक प्रमुखदल और सर्वस्वीकार्य नेतृत्व का होना आवश्यक है। तीसरी कसौटी संसाधनों के जुटाने की और उनके साझा उपयोग की है। यदि 'इंडिया' गठबंधन को 2024 में विजय प्राप्त करनी है और भविष्य में आगे आना है तो सीटों का बँटवारा और टिकट वितरण की चुनौती भी उत्पन्न होगी। 'इंडिया' गठबंधन भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में गेमचेंजर साबित हो सकती है। यदि 26 विपक्षी दलों के द्वारा सहयोगात्मक रवैया अपनाया गया तो I.N.D.I.A. गठबंघन वर्तमान राजनीति में अपने अस्तित्व को बनाये और बचाये रखने में सफल सिद्ध होगी।

संदर्भ

1. *सर आइवर जेनिंग्स– Britis constitution 1959 page no-82 Cambridge At The university press U.K.*
2. *जे. वंधोपाध्याय–Theory And Practice of Parliamentary Opposition–1714-1830 Page 2 Street library Oak New Delhi.*
3. *The Times Of India Varanasi edition 14 May 2023- Page No 13*
4. *Moris Jones – The Government And Politics In India Page No-176 Hutchinson university library London 1964*
5. *रजनी कोठारी– Politics In India– page no P.P- 165-166 Orient Longman Private Limited New Delhi*
6. *दैनिक जागरण– 01 January 2025 Page No- 08*
7. *दैनिक जागरण– 05 January 2025 Page No- 17*
8. *दैनिक जागरण– 11 January 2025 Page No- 19*
9. *दैनिक जागरण– 11 January 2025 Page No- 19*
10. *दैनिक जागरण– 12 January 2025 Page No- 08*
11. *दैनिक जागरण– 12 January 2025 Page No- 08*
12. *दैनिक जागरण– 08 December 2024 Page No- 1*
13. *दैनिक जागरण– 17 December 2024 Page No- 17*

Paper Received : 15 Jan., 2025 ***Paper Accepted : 18 Jan., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 77-81

सारनाथ : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ. संजय कुमार सिंह *

सारांश

विश्व की प्राचीनतम नगरी वाराणसी है जो उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित है जो धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। वाराणसी से लगभग 11 किलोमीटर की दूरी पर ऋषिपत्तन (सारनाथ) प्राचीन काल से हिंदू एवं बौद्धों का तीर्थस्थल है। अथर्ववेद में वाराणसी के लोगों का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। रामायण एवं महाभारत में वाराणसी की महत्त्व का उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में ऋषिपत्तन का आधुनिक नाम सारनाथ हैं। ऋषिपत्तन वाराणसी के समीप एक ऐसा वन था जहां तपस्वियों के आश्रम थे तथा मृग वहा पर संचरण करते थे इसलिए एस स्थान को ऋषिपत्तन के साथ साथ मृगदाव नाम से जाना जाता है। "हिरणों का भगवान" अर्थात सारंगनाथ (शिव) के नाम से सारनाथ को जाना जाता है इसी नाम से यहाँ पर एक प्राचीन मंदिर भी है। बौद्ध तीर्थ होने के कारण आज विश्व स्तर पर सारनाथ का एक अलग पहचान बनी है। बोधगया में (गुरु पूर्णिमा के दिन) महात्मा बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई। वहाँ से सारनाथ(ऋषिपत्तन) में आकर बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश पांच शिष्यों को दिया जो बौद्ध साहित्य मे धर्मचक्र प्रवर्तन के नाम से जाना जाता है और अनेको बार बुद्ध यहाँ विहार करते हुए आए।

कुंजी शब्द *– ऋषिपत्तन, सारनाथ, मृगदाव, अष्टांगिक मार्ग, धर्मचक्र प्रवर्तन,पंचवर्गीय भिक्षु, बोधिसत्व, धर्मराजिक स्तूप।*

धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र के बुद्ध वचन मे बुद्ध की महत्ता वर्णित है। जब उरुबेला से वाराणसी की ओर चल पड़े बोधगया और गया के बीच उनकी उपक आजीवक से भेंट हुई। उपक ने बुद्ध की कान्ति देखकर उनके परिव्रजिक होने की बात जान लिया। बुद्ध मृगदाव मे जहां पंचवर्गीय भिक्षु थे, पहुचे। पंचवर्गीय भिक्षुओ ने बुद्ध को दूर से आते देखा और उन्हे देखते ही आपस मे कहने लगे साधना आवुसो, साधनाभ्रष्ट संचय–कर्मी गौतम आ रहा है। इसे अभिवादन नहीं करना चाहिए, न खड़ा होना चाहिए, न पात्र–चीवर लेना चाहिए। केवल आसान रख देना चाहिए। यदि इच्छा होगी तो बैठेगा। लेकिन जैसे बुद्ध उनके पास आए सब बाते हवा हो गई। एक ने बढ़कर पात्र–चीवर लिया, दूसरे ने आसान बिठाया, तीसरा पैर धोने का पानी लाया और चौथे ने पादपीठ और पाद कठालिका ला कर रखा। बुद्ध ने पैर धोए तत्पश्चात उन्होंने अष्टांगिक

* *एसोसिएट प्रोफेसर–इतिहास, डॉ. भीमराव अंबेडकर राजकीय, महाविद्यालय, अनौगी, कन्नौज, उत्तर प्रदेश*

मार्ग का उपदेश दिया। बुद्ध के वचनों से संतुष्ट होकर पंचवर्गीय भिक्षुयों ने बुद्ध के भाषण के बीच मे आयुष्मान कौन्ड़िय का धर्म चक्षु खुल गया और ज्ञान हुआ कि जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब नाशवान है और इस बात को जान लेने से ही कौन्ड़िय का नाम अज्ञात कौन्ड़िय पड़ा।

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि गौतम बुद्ध ऋषिपत्तन मे कई बार ठहरे थे। उन्होंने यहां पर बहुत से सूत्रों का उपदेश दिया और काशी मे रहने वाले यश एवं उसके अनेक मित्रों को जैसे विमल,सुबाहु,पुष्पजि,गवापति जो सब अच्छे घरानों के थे बौद्ध धर्म मे दीक्षित किया।[1] ऋषिपत्तन मे ही बौद्ध भिक्षुओं को ताड़ के जूते न पहनने का आदेश दिया।[2] ऋषिपत्तन मे पँहुचकर बुद्ध ने आषाढी पूर्णिमा को धर्मचक्र प्रवर्तन किया और उन्होंने यही से बहुजन हित, बहुजन सुख का संदेश विश्व को दिया।[3] जिस समय बुद्ध ने ऋषिपत्तन मे धर्मचक्र प्रवर्तन किया उसके पश्चात ही यश की प्रव्रज्या हुई। यश काशी के श्रेष्ठीक का पुत्र था यश के पिता को बौद्ध धर्म का प्रथम उपासक कहा जाता है। इसके बाद तो काशी मे प्रव्रज्या लेने के लिए भीड़ सी लग गई।

बुद्ध ने भिक्षुयों को अपना उपदेश सुनाया जिसमें आदि से अंत तक कल्याण की भावना थी। 'हे भिक्षुओं जनता के हित के लिए, जनता के सुख के लिए, लोक पर अनुकंपा करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के हित सुख करने के लिए विचरों।' आरम्भ में कल्याण कर, मध्य मे कल्याण कर, अंत में कल्याण कर धर्म का शब्दों और भावों सहित उपदेश करके सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।[4]

वाराणसी के सारनाथ से उद्‌घोषित बुद्ध का यह अमर उपदेश भिक्षुओं के द्वारा इस देश के कोने में फैला, साथ ही नदी, समुद्र, पर्वत और भीषण रेगिस्तानों को पार करता हुआ विश्व के एक ओर जापान से लेकर अफगानिस्तान तक दूसरी ओर सुवर्णभूमि से लेकर सिंहल तक फैल गया। शताब्दियों बाद बौद्ध धर्म के इस जाज्वल्यमान संदेश के स्थान पर वज्रयान और मंत्रयान के पूजापाठ ने अपना घर कर लिया लेकिन सदियों के अंधकार को चीरती हुई अब भी बुद्ध की अमरवाणी जनमानस हित के लिए आह्वाहन कर रही है।

सारनाथ मे मौर्य कालीन अनेक अवशेष मिले है, जिनसे पता चलता है कि अशोक काल मे ऋषिपत्तन कि बहुत उन्नति हुई और वहाँ भिक्षु और भिक्षुणीयों के संघ स्थापित हो गए। सारनाथ से मिले अशोक के स्तंभोंत्कीर्ण लेख में राजा का शासन पत्र अंकित है।[5] यही शासन पत्र सारनाथ सांची और इलाहाबाद के स्तम्भों पर उत्कीर्ण है। इस शासन से अशोक का उद्देश्य संघ

में विग्रह रोकना था। शासन पत्र कहता है कि जो कोई संघ में विग्रह उत्पन्न करेगा, वह चाहे भिक्षु हो या भिक्षुणी, उसे श्वेत वस्त्र पहनाकर संघ से बाहर निकाल दिया जाएगा। सारनाथ, कौशांबी, सांची के स्तंभ लेखो से ज्ञात होता है कि अशोक काल में बौद्ध संघ में विग्रह की आग भड़क रही थी और राजा ने उसे रोकना अपना कर्तव्य समझा।

अशोक ने सारनाथ में धर्मराजिका का स्तूप भी बनवाया। दुर्भाग्यवस 1794 ईस्वी में बनारस के एक जमींदार बाबू जगत सिंह के लोगों ने काशी का प्रसिद्ध मोहल्ला जगतगंज बनाने में ईंटों के लिए इस स्तूप को खोदकर ध्वस्त कर दिया। 1905 ईस्वी में पुरातत्व विभाग के द्वारा यहां की खुदाई से यह ज्ञात होता है कि अशोक द्वारा बनाए गए धर्मराजिका स्तूप काव्यास 44 फीट 3 इंच था,इसमें लगे हल्की कीलाकर ईंटों की माप 19 इंच × 14 इंच × 2 इंच और 16 इंच ×12 इंच × 3 इंच की थी। कुषाण युग में इस स्तूप पर 17 इंच × 10 इंच × 2 3/4 इंच की माप ईंटों का एक आवरण चढ़ा।[6] 5वीं सदी या 6वीं सदी में एक दूसरा आवरण चढ़ाकर स्तूप के चारों ओर करीब 16 फुट चौड़ा प्रदक्षिणा पथ बना दिया गया उसके चारों ओर एक मजबूत दीवार खींच दी गई। जिसमें चार दरवाजे लगा दिए गए 7वीं सदी मे प्रदक्षिणा भर दिया गया और स्तूप तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ लगा दी गयी। 12वीं शताब्दी में पुनः स्तूप पर आवरण चढ़ा और यही आवरण इस स्तूप का अंतिम आवरण था क्योंकि इसके बाद ही मुस्लिम आक्रांताओं ने सारनाथ नष्ट कर दिया।

सारनाथ से मिली मौर्य कालीन मूर्तियों में सबसे प्रसिद्ध एवं कला की दृष्टि से सबसे सुंदर अशोक स्तंभ का शीर्षक है। इसकी ऊंचाई 7 फीट है और इसका आकार उत्फुल्ल कमल जैसा है जिसे घंटाकृत कहा गया है कमल की पंखुड़ियों खरबूजिया है। कमल नाल के स्थान पर गोला कंठा है उसके ऊपर एक गोल पटिया है इसके ऊपर गोल शीर्षपट है जिसके ऊपर पृष्ठासक्त चार सिंह आकृतियां धर्मचक्र की जो अब टूट गया है जिसे वहां के संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। इन सिंहो के मुख खुले है और जिह्वाएँ बाहर है लपलपा रही है। इसकी सुगठित शिराएं तथा सुरचित अयाल बहुत ही सुंदर दिखाएं गए है। शीर्षपट पर एक हाथी, एक वृषभ, एक भागता घोड़ा और एक सिंह के अर्द्ध चित्र बने है। इसमें संदेह नहीं कि कला और कारीगरी कि दृष्टि से यह स्तम्भ–शीर्षक भारतीय कला के क्षेत्र में बेजोड़ है।

सारनाथ में एक पत्थर के टुकड़े पर बुद्ध द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तन के समय उपदेश उत्कर्ण है। इसमें बौद्ध धर्म के चारों आर्य सत्य आए है। लेख

कि लिपि अंतिम कुषाण काल कि है स्टेनकेनो का कहना है कि उत्तर भारत से प्राप्त पाली का यह एकमात्र लेख है और इससे पता चलता है कि पालि त्रिपिटक का उस समय अस्तित्व था और बनारस मे लोग उसे जानते और पढ़ते थे।[7]

गुप्त युग में सारनाथ में बोधिसत्त पूजा की अत्यधिक प्रचलन थी और इसके फल स्वरुप मैत्रेय और आलोकितेश्वर की सुंदर प्रतिमाएं मिलती हैं। अवलोकितेश्वर की मूर्ति पर गुप्त अक्षरों में एक लेख है जिसे पता चलता है कि मूर्ति किसी विषयपति ने बनवाई थी।[8] सारनाथ से गुप्तकालीन बहुत से बौद्ध अर्द्ध चित्र प्राप्त हुए हैं। ऊर्ध्व पर खाने बने हुए हैं। जिसमें बुद्ध के जीवन की चार घटनाएं जैसे– जन्म, बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, महापरिनिर्वाण के दृश्य अंकित है इस पर अंकित लेखों से पता चलता है कि यह पांचवीं शताब्दी का है।

आठवीं सदी से सारनाथ में वज्रयानियों का बहुत जोर बढ़ा और इसके फल स्वरूप अनेक बोधिसत्वों एवं देवियों की पूजा बढ़ी। यह भी ज्ञात होता है कि धीरे–धीरे शैवों, शाक्तों और वज्रयानियों का भेदभाव कम होने लगा और अक्सर बौद्ध भी शैव एवं शाक्त प्रतिमाएं स्थापित करने लगे थे। इस संबंध में सारनाथ से मिले स्थिरपाल और बसंतपाल की 1026 ई0 का लेख उल्लेखनीय है।[9] इन दोनों ने धर्मराजिका स्तूप और धर्म चक्र बिहार की मरम्मत कराई और अष्ट–महास्थान– गंध कुटी के नाम से एक नए मंदिर की स्थापना की। कनिंघम द्वारा सारनाथ की खुदाई से पता चलता है कि छठी सदी के आरम्भ में हूणों के आक्रमण से सारनाथ को बहुत क्षति पहुंची। पर उसे क्षति की पूर्ति जल्दी हो गई और सारनाथ पुनः बौद्ध विहारों और संघारामों से भरा–पूरा हो गया।

कलचुरी कर्णदेव के सारनाथ से मिले 1058 ईस्वी के टूटे लेख से पता चलता है कि कम से कम 1058 ईस्वी तक सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन बिहार नाम का एक विहार था। लेख से यह पता चलता है कि इसमें आए भक्तगण महायानी थे क्योंकि इसमें महायानियों के धार्मिक ग्रंथ अष्ठसाहसिक प्रज्ञापारमिता की नकल करने की बात आई है। गढ़वाल वंश काल में गोविंदचंद्र की रानी कुमार देवी द्वारा बनाए गए धर्म चक्र जिसमें बिहार के भी अवशेष ऋषिपत्तन से मिले हैं। इस बिहार में एक खुले चौक के तीन और कक्ष बने हुए हैं। चौक के उत्तरी पश्चिमी हिस्से में कुआं है। खुदाई में इस बिहार के द्वारा शाखा उत्तरंग छज्जे और बहुत से नक्काशी दारा टुकड़े मिले हैं। बिहार के अंदर जाने के लिए चहारदीवारी में फाटक लगे हुए थे कुछ दूरी पर ही दूसरा फाटक लगा था। इन फाठकों के पास द्वारपालो के रहने के स्थान भी बने हुए थे। यह भी उल्लेखनीय है कि पास के तालाब में बुद्ध ने स्नान करके

अपने वस्त्र फैलाएं थे। कलिंगम ने 1835 ईस्वी में स्तूप पर चढ़कर उसकी नाप ली थी। जिसका व्यास 93 फीट और ऊंचाई 110 फीट थी।

अंत में हम का सकते हैं कि कला का सर्वोत्तम उदाहरण ऋषिपत्तन स्थित मौर्य कालीन उत्कीर्ण धर्मचक्र है। इसी स्तंभ के शीर्ष भाग को भारत में स्वीकार किया गया। ऋषिपत्तन स्तंभ के फलक के किनारे उत्कीर्ण सिंह, गज, वृषभ तथा अश्व है। यह भी उल्लेखनीय है कि अशोक कालीन प्रतीकों पर विदेशी कला का प्रभाव कहना अनैतिक है। चौकी पर चार प्रतिमाएं निर्मित है जो भारतीय कला में ही नही बल्कि विश्वकला में भी अद्वितीय है। ये प्रतिमाएं अशोक के प्रताप एवं गौरव का प्रतीक है। मार्शल का कथन है कि 'सारनाथ का सिंह शीर्ष यद्यपि अद्वितीय तो नहीं तथापि तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में संसार में कला का जितना विकास हुआ था उसमें यह सर्वाधिक विकसित कलाकृति है।'[10] इसके शिल्पी को पीढ़ियों का अनुभव प्राप्त था। वर्तमान समय में सारनाथ बौद्ध तीर्थ स्थलों में आज भी बौद्ध श्रद्धा का केंद्र बना हुआ है।

संदर्भ

1 *विनय पिटक 1/15*

2 *विनय पिटक 1/189*

3 *विनय पिटक 1/10*

4 *भण्डारकर, कार्माइकेल लेक्चर्स, पृ0 79*

5 *हुल्ट्श, इंसक्रिप्शंस ऑफ अशोक, पृ0 116*

6 *ए. एस. आर. एन. रि., 1904–05, पृ0 65*

7 *केटलॉग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ आर्कियोलॉजी सारनाथ, पृ0 230*

8 *केटलॉग पृ0 148–49*

9 *ए.एस.आर.एन.रि., 1904–05, पृ0 221*

10 *कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 1, पृ0 562*

Paper Received : 20 Dec., 2024 ***Paper Accepted : 05 Jan., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 82-88

नेतृत्व की अवधारणा, प्रकृति एवं इसकी विचारधाराओं का संक्षिप्त अनुशीलन

डॉ. दिग्विजय नाथ राय *

सारांश

नेतृत्व व्यक्तियों को सामूहिक उद्देश्यों के लिए प्रभावित करने की योग्यता है। यह प्रबंधन और राजनीति का एक अति आवश्यक घटक है। इसको व्याख्यायित करने के लिए कई विचारधारायें विकसित हुईं जिनमें गुणमूलक, परिस्थित्यात्मक, व्यावहारिक, सांयोगिक, चमत्कारिक आकस्मिकता आदि महत्वपूर्ण हैं। नेतृत्व की प्रकृति समझे बिना संगठन, प्रशासन और राजनीतिक प्रक्रिया को समझना सम्भव नहीं है।

मूल शब्द – *नेतृत्व, संगठन, विचारधारा*

पाल हर्से तथा ब्लेन्चर्ड का मत है कि ''सफल संगठनों का प्रमुख गुण, जो इसे असफल संगठनों से पृथक करता है, गतिशील एवं प्रभावी नेतृत्व है।[1] अंग्रेजी शब्द Lead से Leader तथा Leadership बना है। Leadership किसी व्यक्ति की वह योग्यता तथा स्थिति है जो दूसरों के मार्गदर्शन का कार्य करती है।[2] जार्ज टेरी के अनुसार ''नेतृत्व व्यक्तियों को पारस्परिक उद्देश्यों के लिए स्वैच्छिक प्रयत्न करने हेतु प्रभावित करने की योग्यता है।''[3] हॉज तथा जॉनसन के अनुसार ''नेतृत्व आधारभूत रूप से वह योग्यता है, जिसके आधार पर औपचारिक या अनौपचारिक स्थितियों में दूसरों की अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों का निर्माण किया जाता है और उसे एक निश्चित दिशा में ढाला जाता है।'' एंडरसन का मत है कि ''नेतृत्व अन्य व्यक्तियों के विचारों तथा क्रियाओं को इस रूप में प्रभावित करने की शक्ति है, ताकि वे उच्च निष्पादन प्राप्त कर सकें।'' बर्नार्ड के अनुसार नेतृत्व तीन बातों पर निर्भर करता है – 1. व्यक्ति (नेता), 2. अनुयायी, 3. परिस्थितियाँ।

मेरी पार्कर फॉलेट अपनी पुस्तक 'द न्यू स्टेट' में लिखती हैं कि अब हमें इस बात पर कम बल देना चाहिए कि नेता, अपने समूह को प्रभावित करता है बल्कि अब इस दिशा में सोचना चाहिए कि नेता को समूह प्रभावित

* *एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा, उत्तर प्रदेश*

करता है। एक दूसरे को प्रभावित करने की यह प्रक्रिया दोनों और से चलती है। जब तक यह प्रवाह निरन्तर चलता है तब तक नेतृत्व मी प्रभावशाली रहता है. अन्यथा प्रभावशाली नेतृत्व समाप्त हो जाता है, अतः नेतृत्व को समझने के लिए हमें यह नहीं सोचना चाहिए, कि नेता, समूह के लिए क्या करता है बल्कि यह भी सोचना है कि समूह, नेता के प्रति क्या करता है। ''मिलेट के अनुसार नेतृत्व प्रायः परिस्थितियों के अनुसार बनता या बिगड़ता है।'' मिलेट ने नेतृत्व की दो आवश्यक परिस्थितियों बतायी हैं – 1. राजनीति, 2. संस्थागत।

प्रत्येक लोकप्रिय व्यक्ति नेतृत्व के योग्य हो, यह भी आवश्यक नहीं है, क्योंकि प्रभाव शब्द तथा इसकी वास्तविकता की परिधि में ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव भी आ जाता है जो नेता नहीं हैं। नेतृत्व, किसी सामान्य लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संगठित लोगों का किया जाता है। बिना लक्ष्य या उद्देश्य के न तो कोई संगठन बनता है और न ही उसमें नेतृत्व हो सकता है। नेतृत्व के लिए परिस्थितियों को महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि परिस्थितियाँ ही आवश्यकताओं, हितों, दबावो तथा परिवर्तनों को जन्म देती हैं तथा परिस्थितियों में ही नेतृत्व का परीक्षण होता है। अधिकार प्रत्यायोजित करता है। किसी भी संगठन के सुचारू रूप से कार्य संचालन के लिए नेतृत्व की निम्नलिखित विशेषतायें प्रभाव डालती हैं – निर्देशन देने में अनुरूपता, संघर्षों का बेहतर प्रबन्धन, अभिप्रेरण करता, कुशल निणर्यकर्ता, प्रभावी सम्प्रेषणकर्ता, प्रभावी व्यक्तित्व।

अच्छा नेता, कमजोर नेताओं के विपरीत, अपने अधीनस्थों से उच्च्य कार्य सम्पादन प्राप्त करता है। नेतृत्व मनोबल को प्रभावित करता है। प्रमावी नेता के साथ व्यक्ति स्वयं अधिक कार्य करने हेतु अभिप्रेरित होता है। पार्किन्सन तथा रूस्तमजी के अनुसार प्रभावी नेता का अपने समय पर पूर्ण नियंत्रण होता है। अर्थात् कुशल नेतृत्व कर्ता अपने देश–काल एवं तत्कालीन परिस्थिति के अनुरूप निर्णय लेता है वह प्रभावी तथा उपयुक्त निर्देशन के द्वारा परिणाम प्राप्त करता है। वह अपने सहयोगियों, अधीनस्थों तथा वरिष्ठ अधिकारियों की अच्छाइयों का निर्माण करता है तथा कमजोरियों की उपेक्षा करता है। वह कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है, जहाँ बेहतर निष्पादन द्वारा बेहतर परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वह अधिकारों का अधिकतम सीमा तक प्रत्यायोजन करता है। अब्राहम जालेनिक ने प्रबन्धक

तथा नेता के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि नेता नये विचारों की पहल करते हैं जबकि प्रबन्धक तकनीकों पर विश्वास करते हैं।[4] नेतृत्व प्रबन्ध का एक भाग है। नेतृत्व प्रबन्ध के केवल एक कार्य–प्रभाव एवं प्रेरणा उत्पन्न करने से सम्बन्धित है।

नेतृत्व की प्रकृति

नेता का नेतृत्व अनुयायियों को स्वीकार्य होना चाहिए। नेता को अपने आचरण द्वारा अनुयायियों के सामने उच्च स्तर का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। जिसके आधार पर ही अनुयायी अपने नेता की आज्ञा स्वाभाविक रूप से स्वीकार करते हैं। एल०एफ० उर्दिक के अनुसार, अनुयायियों को यह प्रभावित नहीं करता है कि उनका नेता क्या कहता है और लिखता है, बल्कि वह क्या है, यह क्या करता है, यह किस प्रकार का व्यवहार करता है आदि तथ्य प्रभावित करते हैं। नेतृत्व में नेता अपने अनुयायियों को सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मार्गदर्शन प्रदान करता है एवं उन्हें अपना अनुसरण करने के लिए प्रेरित करता है। इस बीच नेता अनुयायियों द्वारा ही क्रियाएँ सम्पादित नहीं करवाता, वरन् स्वयं ही अनुयायियों के साथ मिलकर लक्ष्य प्राप्ति में सदैव अग्रणी भूमिका का निर्वहन करता है।

यदि किसी उपक्रम में नेता और अनुयायी दोनो पक्ष अलग–अलग लक्ष्यों के लिए प्रयास करते हैं तो उस संगठन में नेतृत्व का कोई प्रभाव नहीं रहता है। किसी संगठन में प्रभावी नेतृत्व उसी समय माना जाता है, जबकि नेता और अनुयायी एक ही उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयास कर रहे हों। नेतृत्व एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। अलफर्ड तथा बीटी ने भी कहा है कि नेतृत्व वह गुण है, जिसके द्वारा अनुयायियों के एक समूह के वांछित कार्य स्वेच्छापूर्वक बिना किसी दबाब से कराये जाते हैं। नेतृत्व सहयोग प्राप्त करने की आधारशिला है। वारेन बेनिस ने अपने एक लेख 'नेतृत्व का अन्त' के अन्तर्गत लिखा है कि समावेशन, पहल एवं कर्मचारियों के सहयोग के अभाव में प्रभावशाली नेतृत्व सम्भव नहीं हो सकता।[5] आर्डवे टीड के अनुसार, नेतृत्व गुणों का वह संयोजन है, जिसके होने से कोई भी व्यक्ति अन्य लोगों से कुछ कराने की स्थिति में होता है, जबकि मुख्यतः उसके प्रभाव द्वारा वे ऐसा करने से तत्पर हो जाते हैं। नेतृत्व न केवल अधीनस्थ कर्मचारियों की अभिवृत्तियों,

मान्यताओं और विश्वासों को बड़ी सीमा तक प्रभावित करता है, अपितु उनको परिवर्तित करने की क्षमता भी रखता है।

ग्लोवर के अनुसार, अच्छा नेतृत्व समूह में सहयोग एवं समन्वय की भावना को बढ़ाने और लक्ष्य की दिशा में प्रयासों की गति तीव्र करने तथा उत्पादकता बढ़ाने में चमत्कारिक प्रभाव उत्पन्न करता है। कुशल नेतृत्व कार्य संचालन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करके अधिकांश वर्ग को सुविधा एवं सहायता प्रदान करता है। लक्ष्य एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न क्रियाओं को एक सूत्र में बांधकर सामूहिक क्रियाओं के सफलतापूर्वक संचालन करने में भी नेतृत्व प्रभावी भूमिका निर्वाह करता है। नेता अपने आचरण एवं व्यवहार द्वारा अपने अधीनस्थों को सन्तुष्ट बनाए रखने का प्रयास भी करता है। अच्छे नेता के द्वारा कर्मचारियों में संगठन के प्रति अपनत्व की भावना का विकास किया जा सकता है। प्रभावी नेतृत्व ही अनुशासन की आधारशिला है। अनुशासन सदैव ऊपर से नीचे की ओर प्रभावित होता है।

नेतृत्व की विभिन्न विचारधाराएँ

गुणमूलक विचारधारा – कुशल नेतृत्य नेता की याक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं पर निर्भर करता है तथा ऐसी विशेषताओं एवं गुणों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण किया जा सकता है। इन गुणों में शारीरिक, मानसिक एवं मनोबल राम्बन्धी गुणों को शामिल किया जाता है।

परिस्थित्यात्गक विचारधारा– नेतृत्व की इस विचारधारा का विकास आर०एम० स्टॉगडिल एवं उनके सहयोगियों ने किया है। इस विचारधारा की मान्यता है कि श्परिस्थितियों भी एक नेता को पर्याप्त रूप से प्रभावित करती हैं। नेतृत्व की सफलता उस परिस्थिति विशेष से प्रभावित होती है, जिसमें नेता कार्य करता है।

व्यावहारिक विचारधारा – नेतृत्व की यह विचारधारा नेता के आचरण एवं व्यवहार का सर्वाधिक महत्व देती है। व्यवहार से अभिप्राय नेता द्वारा किये जाने वाले कार्य एवं नेतृत्व प्रदान करने की विधि और तकनीक से है। आर०ए० किलियन के अनुसार ''एक नेता चाहे मूल रूप में निर्णय लेने वाला हो, समस्या सुलझाने वाला हो, सूचना देने वाला हो या नियोजन करने वाला हो, उसे अपने अनुयायियों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए।''[6]

अनुयायी विचारधारा – नेतृत्व की इस विचारधारा का प्रतिपादन एफ०एच० सेन्सफोर्ड ने किया था। इस विचारधारा की मान्यता है कि अनुयायियों की कुछ प्राथमिक आवश्यकताएँ होती है तथा जो व्यक्ति उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति कराने में सर्वाधिक रूचि लेकर अनुयायियों की सहायता और सहयोग करता है, अनुयायी उसी व्यक्ति को अपना नेता मान लेते हैं।

सांयोगिक विचारधारा – नेतृत्व की इस विचारधारा का विकास एफ०ई० फिडलर और उनके सहयोगियों ने किया है। फिडलर के मतानुसार, ''किसी समूह का कुशल नेतृत्व, नेतृत्व की शैलियों के उचित मिश्रण तथा नेता के प्रति समूह एवं परिस्थितियों की अनुकूलता की मात्रा पर निर्भर करता है।''

जीवनचक्र विचारधारा – नेतृत्व की इस विचारधारा का प्रतिपादन ए०के० कोर्मन ने ओहियों स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर किया है। अन्तर्क्रियात्मक विचारधारा के नेतृत्व में किसी समूह के सदस्यों के बीच की अन्तर्क्रियाओं पर निर्भर करता है और सदस्यों की ये अन्तर्क्रियाएँ ही उत्पादकता, कार्यक्षमता मनोबल आदि को प्रभावित करती हैं।

क्रियात्मक विचारधारा – इस विचारधारा का विकास कुर्त लिविन ने किया है। यह विचारधारा व्यक्ति एवं उन परिस्थितियों के अध्ययन पर बल देती हैं, जिसमें नेतृत्व की स्थापना होती है।

गुणारोपण विचारधारा – नेतृत्व की यह विचारधारा नेतृत्व के अवबोधन की व्याख्या करती है तथा कारण एवं प्रभाव सम्बन्धों के द्वारा कोई अर्थ या बोध ढूँढ़ने से सम्बन्ध रखती है। यह विचारधारा बतलाती है कि नेतृत्व केवल एक गुण या धारणा है, जो एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के बारे में रखता या बनाता है।

चमत्कारिक नेतृत्व विचारधारा – मैक्स बैनर के अनुसार चमत्कारिक नेता वे होते हैं जिनके पास एक वैधानिक शक्ति होती है, जिसकी उत्पत्ति असाधारण निष्ठा, बहादुरी या आदर्श व्यक्तित्व से होती है।

लक्षणवादी विचारधारा – प्राचीन रोमन तथा यूनानी सभ्यता से प्रभावित इस सिद्धान्त को महान् आदमी सिद्धान्त भी कहा जाता है, क्योंकि इस विचारधारा के अन्तर्गत यह माना जाता है कि नेताओं में कुछ ऐसे शारीरिक,

मानसिक, शैक्षिक तथा नैतिक गुण होते हैं जो संगठन में नेतृत्व को सफल बनाते हैं। आर्डवे टीड, घिसेली बर्नार्ड तथा शैल इस विचारधारा के समर्थक एवं पोषक माने जाते हैं।

समूह विचारधारा – नेतृत्व के अनुयायी या समूह सिद्धान्त का विकास सामाजिक मनोवैज्ञानिक चिन्तकों तथा अध्येताओं द्वारा किया गया है। एच०एस० सेंसफोर्ड इसके प्रतिपादक माने जाते हैं।

स्थितिवादी विचारधारा – इस सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक फ्रेड ई० फीडलर के अनुसार नेतृत्व परिस्थितियों में उभरता है एवं उस स्थिति के अनुसार प्रभावित भी होता है। कई बार परिस्थितियों ही ऐसी होती है कि लोग, नेता का प्रभाव मानते है अर्थात् स्थितिवादी विचारधारा में नेता का प्रभाव या निष्प्रभाव अर्थपूर्ण नहीं है बल्कि उस कारक या सन्दर्भ को देखा जाता है जो एक परिस्थिति में नेता को सफल तो दूसरी परिस्थिति में विफल बनाता है।

आकस्मिकता विचारधारा – फीडलर ने आकस्मिकता सिद्धान्त में माना है कि नेता या तो सम्बन्धोन्मुखया कार्योन्मुख होता है। सम्बन्धोन्मुख नेता अधीनस्थों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने को अभिप्रेरित रहता है, उन्हें नए बिचारों के साथ निर्णयन में सहभागिता को प्रेरित करता है, उसके लिए कार्य दूसरी प्राथमिकता रहती है। कार्योन्मुख नेता के लिए कार्य प्राथमिक रहता है। इस हेतु फीडलर ने (LPC Scale) प्रतिपादित की है ताकि यह पता चल सके कि कौन नेता सम्बन्धोन्मुख है तथा कौन कार्योन्मुख। (LPC) अर्थात (Least Preferred Co-Worker) वह कार्मिक होता है जिसके साथ नेता सबसे कम ढंग से कार्य कर सकता है। (LPC Scale) से यह नापा जा सकता है कि नेता सम्बन्धोन्मुख है या कार्योन्मुख।

पथ–लक्ष्य विचारधारा – इस सिद्धान्त का विकास मार्टिन जी० इवान्स तथा रॉवर्ट जे० हाउस ने किया है। इस विचारधारा में मुख्य बल लक्ष्यों के प्राप्ति के सम्बन्ध में नेता द्वारा दी जाने वाली प्रेरणा पर है। रॉबर्ट हाउस ने पथ–लक्ष्य विचारधारा में निदेशात्मक नेतृत्व, मददगार नेतृत्व, सहभागी नेतृत्व तथा उपलब्धि उन्मुख नेतृत्व को सम्मिलित करते हुए कहा है कि नेतृत्व के विभिन्न प्रारूप तथा कार्य के विभिन्न प्रतिफल कार्मिकों या अनुयायियों की संतुष्टि कार्यक्षमता तथा निष्पादन को प्रभावित करते हैं।

एक्स–वाई विचारधारा – डगलस मैक्ग्रेगर द्वारा प्रतिपादित 'X' – 'Y' विचारधारा अभिप्रेरणा सिद्धान्त से सम्बन्धित है। एक्स सिद्धान्त के अन्तर्गत मैक्ग्रेगर ने व्यक्ति को कामचोर, आलसी तथा रूढिवादी मानते हुए नेता से यह अपेक्षा की है कि वह दण्ड एवं भय से अधीनस्थों से कार्य ले जबकि वाई सिद्धान्त के अन्तर्गत अधीनस्थों को उत्साही, आशावादी, कर्मठ तथा परिश्रमी मानते हुए नेता से यह अपेक्षा की गई है कि वह अधीनस्थों को प्रोत्साहन एवं सम्बल प्रदान करे एवं स्वयं निर्णयन में उनकी सहायता भी ले।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नेतृत्वकी समेकित अवधारणा इसकी प्रकृति और इसको व्याख्यायित करने वाले सिद्धांतों का अनुशीलन करके हम किसी भी संगठन, नौकरशाही आदि निकायों को अधिक प्रभावी बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक प्रक्रिया को और नेता के गुण धर्म का अकादमिक दृष्टिकोण से सार्थक विवेचन कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. *पॉल हर्से एण्ड बसैन्चर्ड मैनेजमेन्ट ऑफ आर्गेनाइजेशनल बिहेविवर, प्रिन्टस हॉल, 1968, पृ० 80*
2. *कटारिया, डॉ० सुरेन्द्र, प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, नई दिल्ली, 2013, पृ० 370*
3. *जैन डॉ० पी०सी०, संगठनात्मक व्यवहार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ० 300*
4. *अब्राहम जेलनिक, एक्सपट्र्स फ्रॉम मैनेजर्स एण्ड लीडर्स आर दे डिफरेन्ट?, एच.बी.आर., गई–जून 1906, पृ० 54*
5. *लूथन्स फ्रेड, आर्गनाइजेशनल बिहेविअर, मैक्राहिल इण्टरनेशनल एडिशन, ट्वेल्थ एडिशन, पृ० 413*
6. *जैन डॉ० पी०सी०, संगठनात्मक व्यवहार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 2010, पृ० 317*

Paper Received : 08 Feb., 2025 **Paper Accepted : 15 Feb., 2025**

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 89-96

पंचायती राज संस्थाओं में महिला सहभागिता के वर्तमान परिप्रेक्ष्यः चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ

डॉ अभय विक्रम सिंह *
फरहीन **

सारांश

भारत में लोकतान्त्रिक व्यवस्था और लोकतान्त्रिक प्रक्रियायें प्राचीन काल से ही विद्यमान रही हैं। जब यूनानी चिंतक वहाँ के नगर राज्य के लिए एक स्थिर शासकीय प्रणाली के निर्माण में संलग्न और प्रयासरत थे, उस समय भी भारत में अनेक सुद्रण तथा श्रेष्ठ शासकीय संस्थायें प्रचलन में थी। इन संस्थाओं की पहचान कभी गणराज्य के रूप में, कभी नगर शासन व्यवस्था के रूप में अथवा कभी ग्रामीण व्यवस्था के रूप में दिखाई देती है। भारत में पंचायती राज संस्थाओं की उत्पत्ति एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से हमें उसी समृद्ध संस्थागत तंत्र की जानकारी मिलती हैए जो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक ग्रामीण एवं स्थानीय स्वशासन के विकास की रीढ़ है। सहकारिता, सहभागिता और आत्मनिर्भरता अथवा स्वावलंबन इन व्यवस्थाओं का आधारभूत आदर्श रहा है। इसी मूल स्वभाव के कारण जन मानस द्वारा इन व्यवस्थाओं में एक दूसरे को समझने और साथ रहने, प्रत्येक कार्य को मिलजुल कर करने और अपनी सभी समस्याओं को सुलझाने की प्रवृत्ति निरंतर विकसित होती गई और आज भी लगातार जारी है।

***मूल शब्द** :– विकास, रोजगार, सर्वांगीण गरीबी, अज्ञानता, स्वास्थ्य, त्वरित विकास, समावेशी विकास, सुशासन, विकास योजना*

प्रस्तावना

भारत में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का विकास

भारत में विकेंद्रीकृत शासन के सार को समझने के लिए पंचायती राज संस्थानों को समझना आवश्यक है। पंचायती राज संस्था जमीनी स्तर के लोकतंत्र का आधार है, जिसे ग्राम, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधियों को शक्तियां और जिम्मेदारियां सौंपकर स्थानीय शासकीय प्रणाली को सशक्त बनाने के लिए निर्मित किया गया है। इस प्रणाली की जड़ें प्राचीन भारत में प्रचलित परम्पराओं में देखी जा सकती हैं, ग्राम सभाएं निर्णय लेने और विवाद समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। हालाँकि, सत्ता के

* *सहायक आचार्य, गाँधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिहार*
** *शोधार्थी, गाँधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिहार*

विकेंद्रीकरण और स्थानीय स्वशासन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पंचायती राज के समकालीन ढांचे ने स्वतंत्रता के बाद आकार लिया। संरचनात्मक रूप से, पीआरआई को ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतों, मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत समितियों और जिला स्तर पर जिला परिषदों में पदानुक्रमित रूप से व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधि ग्रामीण विकास, बुनियादी ढांचे और सामाजिक कल्याण सहित स्थानीय शासन के विभिन्न पहलुओं की देखरेख करते हैं।[1]

महिला सहभागिता की अवधारणा, उद्देश्य एवं महत्व

किसी भी परिप्रेक्ष्य में महिला सहभागिता को परिभाषित करने में निर्णय लेने की प्रक्रियाओं और शासन संरचनाओं में महिलाओं की विभिन्न भूमिकाओं और प्रभावों पर विचार करना शामिल है। सामाजिक ढाँचों में, महिलाओं की भागीदारी न केवल नेतृत्व के पदों या विधान सभाओं में उनकी उपस्थिति को संदर्भित करती है, बल्कि सामुदायिक गतिविधियों, सार्वजनिक बहसों और नीति–निर्माण प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी को भी शामिल करती है। यह व्यापक परिप्रेक्ष्य भागीदारी की बहुमुखी प्रकृति को उजागर करता है और मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों मापों के महत्व को रेखांकित करता है।[2]

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से, महिलाओं की भागीदारी की परिभाषा लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित है जो समान प्रतिनिधित्व और निर्णय लेने में विविध दृष्टिकोणों की स्वीकृति की वकालत करते हैं। इसमें जाति, वर्ग और आयु जैसे अन्य पहचान कारकों के साथ लिंग की अंतः क्रियाशीलता पर विचार करना शामिल है, जो भागीदारी की गतिशीलता को और जटिल बना सकता है। महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने के पीछे का सिद्धांत इस विश्वास में निहित है कि अधिक समावेशी शासन अधिक व्यापक और प्रभावी नीतियों की ओर समाज को ले जाता है।[3]

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता अनेक कारणों से अत्यंत महत्व रखता है। ये संस्थाएँ लोकतंत्र की ऐसी प्राथमिक पाठशालाएँ है जो लैंगिक समानता की स्थापना पर अत्यधिक बल देने के अतिरिक्त नागरिकों में सामाजिक समानता और राजनीतिक चेतना का प्रसार तथा उनमे सामाजिक न्याय की अवधारणा का उद्‌भव भी सुनिश्चित करती है ताकि ये विविध नीतियां

और कार्यक्रम समाज के सभी वर्गों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करें। पीआरआई में महिलाओं का प्रतिनिधित्व हाशिये पर मौजूद वंचित और कमजोर वर्गों के लोगों की जीवनपद्धयति को सशक्त बनाने और स्थापित मानदंडों की चुनौती में सकारात्मक परिवर्तन करने के लिए एक बहुमूल्य उपकरण के रूप में कार्य करता है। पीआरआई के आसपास का कानूनी ढांचा, विशेष रूप से 1992 का 73वां संशोधन अधिनियम, महिलाओं की भागीदारी को संस्थागत बनाने में सहायक रहा है। इस अधिनियम ने ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर पीआरआई में महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक उन्नति के लिए एक तिहाई सीटों को आरक्षित करने का प्रावधान किया, जिसका उद्देश्य राजनीतिक प्रक्रियाओं में महिलाओं के ऐतिहासिक हाशिए पर जाने को सुधारना था।

महिला सहभागिताः प्रमुख चुनौतियाँ

महिलाओं की सशक्त भूमिका को बढ़ावा देने के कानूनी प्रावधानों और प्रयासों के बावजूद, अनेक चुनौतीपूर्ण स्थितियाँ अभी भी बनी हुई हैं। लैंगिक रूढ़िवादिता और भेदभावपूर्ण मानदंडों सहित सामाजिक–सांस्कृतिक बाधाएं, अधिकतर महिलाओं के नेतृत्वकर्ता की भूमिका में प्रवेश के मार्ग में बाधा बनती हैं। आर्थिक बाधाएं, शिक्षा और संसाधनों तक सीमित पहुंच और समर्थन संरचनाओं की कमी पीआरआई में महिलाओं की प्रभावी भागीदारी को और बाधित करती है। हालाँकि, ये चुनौतियाँ महिलाओं को सशक्त बनाने के उद्देश्य से नवीन रणनीतियों और हस्तक्षेपों के अवसर भी प्रस्तुत करती हैं।[4] निष्कर्षतः पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी केवल संख्यात्मक प्रतिनिधित्व के बारे में नहीं है, बल्कि शक्ति की गतिशीलता को बदलने और समावेशी शासकीय प्रणाली को विस्तार देने के बारे में है। जमीनी स्तर पर परिवर्तन के सक्रिय एजेंटों के रूप में महिलाओं को सशक्त बनाकर, पीआरआई भारत के लोकतांत्रिक ढांचे और सतत विकास एजेंडे में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। लिंग–उत्तरदायी नीतियों की वकालत जारी रखना, महिलाओं की नेतृत्व क्षमता को बढ़ाना और एक सक्षम वातावरण बनाना जरूरी है जो पंचायती राज में महिलाओं की सार्थक भागीदारी सुनिश्चित करे। इसलिए, पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी में बाधा डालने वाली बहुमुखी चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने के लिए लगातार प्रयास आवश्यक हैं।

इसके अतिरिक्त, वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह अति आवश्यक है की पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान के लिए महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाये और ऐसा वातावरण तैयार हो जिसमें वह अपनी भूमिका के साथ न्यायोचित व्यवहार कर सकें। इसमें संवाद और सहयोग के लिए स्थान बनाना, परामर्श कार्यक्रम स्थापित करना और निर्णय करने की प्रक्रियाओं में महिलाओं की प्रतिबद्धतापूर्ण भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना शामिल है। नागरिक समाज संगठन, मीडिया और शिक्षा जगत भी लिंग–उत्तरदायी नीतियों की वकालत करने और मौजूदा कानूनी ढांचे के कार्यान्वयन की निगरानी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[5] पीआरआई में महिलाओं के नेतृत्व और भागीदारी को बढ़ावा देने वाले वातावरण का पोषण करके, भारत किसी को पीछे न छोड़ते हुए समावेशी विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।[6]

राजनीतिक प्रतिनिधित्व में लैंगिक असमानताः अवलोकन

राजनीतिक प्रतिनिधित्व में लैंगिक असमानताएं दुनिया भर में एक व्यापक चुनौती बनी हुई हैं, जो सत्ता की गतिशीलता और सामाजिक मानदंडों में गहरी असमानताओं को दर्शाती है। कुछ क्षेत्रों में प्रगति के बावजूद, भारत में पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई) सहित सरकार के सभी स्तरों पर निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम है। इन असमानताओं की सीमा और निहितार्थ को समझना और उन्हें प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि उसके लिए बेहतर रणनीति तैयार की जाये।[7] वैश्विक स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व करने में महिलाओं का प्रतिनिधित्व पुरुषों से पीछे है। अंतर–संसदीय संघ के अनुसार, 2021 तक, दुनिया भर में केवल 25 संसदीय सीटों पर महिलाओं का कब्जा था, जो राजनीतिक नेतृत्व में लगातार लिंग अंतर को दर्शाता है। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में प्रगति हुई है, परिवर्तन की गति धीमी बनी हुई है, कई देश अभी भी राजनीतिक प्रतिनिधित्व में लैंगिक समानता हासिल करने से बहुत दूर हैं।

महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने के प्रमुख उद्देश्य

पिछले कुछ दशकों में महिला सशक्तिकरण को लेकर तथा शासकीय गतिविधियों में महिला सहभागिता को लेकर विमर्श लगातार जारी है। जहां

एक और बढ़ते शहरीकरण और आधुनिक जीवन शैली ने व्यक्ति का आर्थिक बोझ बढ़ाया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक परिस्थितियों में महिलाओं की अनदेखी ने कई जटिल समस्याएं उत्पन्न की है। यह सही है कि पितृसत्ता एवं प्रचलित मान्यताओं के कारण लंबे समय तक महिलाएं केवल घर के कार्यों तक सीमित रही हैं, परंतु आज समाज के कल्याणकारी स्वरूप के निर्माण और राज्य के सर्व समावेशी, समरसता पूर्ण समाज के निर्माण के लिए समय की मांग यही है कि प्रत्येक सरकारी गैर सरकारी गतिविधियों में कार्य पद्धतियों में महिला सहभागिता को लगातार व्यापकता प्रदान की जाए। ऐसा तभी संभव है जब समाज में महिलाओं की भूमिका, उनके चिंतन और उनकी स्थिति को प्रभावशाली बनाया जाए।

इसीलिए विविध स्तरों पर उनकी शिक्षा के साथ–साथ उनके नेतृत्वकारी गुणों और प्रतिनिधित्व में भी अहम् वृद्धि करनी होगी। भारत में पंचायती राज संस्थाओं का क्षेत्र भी एक ऐसा ही महत्वपूर्ण स्तर है जहां पर महिलाओं की बढ़ती भूमिका से यह तय होगा कि भारत की लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की पद्धति कितनी सक्षम दक्ष एवं सफल रही है। पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना समावेशी शासन, लैंगिक समानता और संपोषणीय विकास की प्रक्रिया से जुड़े अनेक उद्देश्यों को उजागर करता है, उन्हें पूर्ण करता है। ये उद्देश्य स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रियाओं और सामुदायिक विकास प्रयासों में परिवर्तन के सक्रिय एजेंटों के रूप में महिलाओं की मानसिक क्षमता और कार्य को उत्कृष्ट संयोजन के साथ करने की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं।[8]

1. लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाना : पीआरआई में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने का एक प्राथमिक उद्देश्य लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व और वैधता को बढ़ाना है। यह सुनिश्चित करके कि महिलाओं को मेज पर एक सीट मिले, पीआरआई अपने निर्वाचन क्षेत्रों की विविधता को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित कर सकते हैं और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में व्यापक दृष्टिकोण और हितों को शामिल कर सकते हैं। यह न केवल स्थानीय शासन के लोकतांत्रिक ताने–बाने को मजबूत करता है बल्कि सामुदायिक आवश्यकताओं के प्रति अधिक जवाबदेही और जवाबदेही को भी बढ़ावा देता है।

2. समावेशी विकास को बढ़ावा देना : पीआरआई में महिलाओं की बढ़ती सहभागिता एक समरसतापूर्ण ऊर्जावान तथा सर्व समावेशी समाज के विचार को गति देने में लाभप्रद है ताकि ग्रामीण समाज के सभी समूहों और लोगों को प्रेरित किया जा सके।

3. सामुदायिक एकता को मजबूत करना : पीआरआई में महिलाओं की भागीदारी सामुदायिक एकजुटता और सामाजिक पूंजी को मजबूत करने में भी योगदान दे सकती है। जब महिलाएं स्थानीय शासन में सक्रिय रूप से शामिल होती हैं, तो वे सरकारी संस्थानों और जमीनी स्तर के समुदायों के बीच पुल के रूप में काम करती हैं, विश्वास, संवाद और सहयोग को बढ़ावा देती हैं।

4. सुशासन प्रथाओं को बढ़ावा देना : महिला नेता शासन प्रक्रियाओं में मूल्यवान कौशल, दृष्टिकोण और नेतृत्व गुण लाती हैं, जिससे स्थानीय संस्थानों की प्रभावशीलता और अखंडता बढ़ती है। लिंग–उत्तरदायी शासन तंत्र और समावेशी निर्णय की प्रक्रियाओं को बढ़ावा देकर, पीआरआई जटिल चुनौतियों का समाधान करने और सभी नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण सेवाएं प्रदान करने की अपनी क्षमता को मजबूत कर सकते हैं।[9]

महिला सहभागिता में वृद्धि हेतु प्रमुख सुझाव

ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में पंचायती राज को लेकर काफी जागरूकता आई है, फिर भी लगता है कि महिलाओं को समयानुसार और अधिक जागृत करने की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में कुछ मुख्य प्रस्तावित सुझाव निम्नवत् है–

1. महिला सहभागिता को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उन्हे शिक्षित किया जाय। महिला साक्षरता जो कि महादलित समुदाय, अल्पसंख्यक पिछड़ी जाति कि महिलाओं को साक्षर करने के लिए जनशिक्षा निदेशालय के अन्तर्गत संचालित किया जाता है उसको और प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है।

2. सरकारी सहायता द्वारा एवं अन्य एन0जी0ओ0 के माध्यम से महिलाओं को आजीविका के अन्तर्गत बैकों से माइक्रोफायनांस किया जा रहा है। लेकिन कभी–कभी वे ठगी का शिकार अज्ञानतावश हो जाती है।

इसलिए यदि महिला प्रतिनिधियों को आर्थिक साक्षरता का प्रशिक्षण दिया जाता है, तो इससे एक बड़ा बदलाव होने की संभावना है। इस आर्थिक साक्षरता अभियान, में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, प्रमुख राष्ट्रीयकृत बैंक, नाबार्ड, महिला एवं बाल विकास विभाग, राष्ट्रीय महिला कोष को सम्मिलित किया जा सकता है।

3. विरासत एवं परिवारिक सम्पतियों में महिलाओं को मिले बराबरी के अधिकार के सफल क्रियान्वयन, बाल विवाह रोकने , विधवा पुनर्विवाह, बाल अधिकार संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण, पोक्सो तथा लोक अदालत, लोक शिकायत निवारण आदि कानूनों की जानकारियों को महिला प्रतिनिधियों को सेमिनार, सिम्पोजियम एवं कार्यशाला के माध्यम से उपलब्ध कराया जाय ताकि वे अपने मतदाताओं का पंचायत स्तर पर सही ढंग से जानकारी प्रदान कर सकें। इस प्रयास से महिलाएँ काफी सशक्त हो सकती है, वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने में अहम भूमिका निभा सकती है।

4. महिला प्रतिनिधियों को सरकार द्वारा संचालित विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी एवं समाजिक सुरक्षा से संबंधित योजनाओं एवं परियोजनाओं के निर्माण सम्बन्धित जानकारियों की पुस्तिका तैयार कर उपलब्ध करा दी जाय। ताकि महिलाएँ आसानी से समझ–बूझ के साथ इन सामग्रियों का उपयोग सुविधानुसार पंचायतीराज क्षेत्र के सर्वांगीण विकास में कर सकें।

5. पंचायत स्तर पर निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों को सुक्ष्म योजना बनाने का प्रशिक्षण दिया जाय ताकि सहभागिता के आधार पर उस प्राक्कलन की स्वीकृति वार्ड एवं पंचायत स्तर पर दी जा सके। इससे पंचायत में पारदर्शिता एवं जबाबदेही को सुनिश्चित किया जा सकता है।

6. प्रत्येक पंचायत में कुकुट पालन, मछलीपालन, बकरीपालन, डेयरीपालन, मसरूम उत्पादन, ड्रेगन फुड प्रोसेसिंग, शीप उत्पादन, बागवानी एवं नर्सरी विकास की दिशा में पहल की जाए।

यदि इन सभी सुझावों पर केंद्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा उद्यमीशील होकर कार्यवाही की जाये तो यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा की

पंचायतीराज का उद्देश्य निसंदेह प्राप्त किया जा सकता है। आज जब वैश्विक स्तर पर महिला सशक्तिकरण, महिला सहभागिता एवं मुख्यधारा में महिलाओं को शामिल कर समाज में सुखद बदलाव लाने पर जोर दिया जा रहा है। ऐसे में भारतीय समाज और राष्ट्र के हित के लिए यह अति आवश्यक होगा की इसकी पहल लोकतान्त्रिक प्रणाली की शुरूआती संरचना को मजबूती प्रदान कर की जाये। यही स्वप्न हमारे संविधान निर्माताओं का था, यही लक्ष्य वर्तमान सरकार का है, यही अदम्य इच्छा आज की वर्तमान पीढ़ी की सोच में देखने को मिलती है और यही इस देश के वर्तमान तथा भविष्य को संवारने में सहायक सिद्ध होगा।

संदर्भ

1. *Nandal, V. (2013). Participation of Women in Panchayati Raj Institutions: A Sociological Study of Haryana, India. International Research Journal of Social Sciences, 2(12), 47-50.*
2. *Ackelsberg, M. A. (2013). Broadening the study of women's participation. In Resisting Citizenship (pp. 131-144). Routledge.*
3. *Moghadam, V. M., & Senftova, L. (2005). Measuring women's empowerment: participation and rights in civil, political, social, economic, and cultural domains. International Social Science Journal, 57(184), 389-412.*
4. *Kaushik, A., & Shaktawat, G. (2010). Women in panchayati raj institutions: A case study of Chittorgarh district council. Journal of Developing Societies, 26(4), 473-483.*
5. *Bhardwaj, P. (2019). Women Participation In Panchayati Raj In Haryana. Think India Journal, 22(4), 8493-8501.*
6. *Ellerby, K. (2013). (En) gendered Security? The Complexities of Women's Inclusion in Peace Processes. International interactions, 39(4), 435-460.*
7. *Galligan, Y. (2007). Gender and political representation: Current empirical perspectives. International Political Science Review, 28(5), 557-570.*
8. *Goetz, A. M., & Jenkins, R. (2016). Agency and accountability: promoting women's participation in peacebuilding. Feminist Economics, 22(1), 211-236.*
9. *Himoyat, I. (2019). THE ROLE OF LITERATURE, ART AND FOREIGN LANGUAGES IN PROMOTING WOMEN'S PARTICIPATION IN SOCIETY. European Journal of Research and Reflection in Educational Sciences Vol, 7(12).*

Paper Received : 12 Feb., 2025 ***Paper Accepted : 25 Feb., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 97-104

भारत में विकास की राजनीति और विकसित भारत का लक्ष्य

*डॉ0 पंकज तिवारी **

सारांश

भारत ने प्राचीन काल से ही अपनी संस्कृति, समृद्धि एवं अपने खुलेपन और संचित सामर्थ्य के साथ बौद्धिक व आध्यात्मिक गतिविधियों द्वारा विश्व राजनीति को प्रभावित किया है। भारत अपने ''विकसित भारत'' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता की 100वीं वर्ष अर्थात् 2047 तक का सीमांकन किया है। भारतीय अर्थव्यवस्था में गुणात्मक सुधार का संकेत एवं विकसित होता हुआ आकार एवं वृद्धि विश्व का ध्यान आकर्षित कर रहा है। आज भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति के रूप में अपनी पहचान बना ली है। वैश्वीकरण के युग में आर्थिक विकास से सम्बद्ध विकास नीति विकास की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रही है। ऐसे में भारत 21वीं सदी में आर्थिक विकास क्रम में निरन्तरता बनाकर दुनिया की 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और 2027 तक तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की तरफ अग्रसर है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुमान के अनुसार भारत की अर्थव्यवस्था 5 ट्रिलीयन अमेरिकी डॉलर को पार कर जाएगी। इस प्रकार से भारत 2047 तक 30 ट्रिलीयन अमेरिकी डॉलर के साथ विकसित राष्ट्र के सभी मानकों को पूरा कर लेगा।

विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारतीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने अपने अंतरिम बजट (2024) भाषण में विकास विजन को सकारात्मक रोड मैप के रूप में रखा और सरकार के कार्यों का उल्लेख करते हुए सर्वव्यापी, सर्वांगीण और सर्वसमावेशी विकासात्मक दिशा को रेखांकित किया। भारत अपने इस अमृतकाल के दौरान अपनी 100वीं स्वतंत्रता दिवस तक विकसित भारत की लक्ष्य को साकार करने हेतु युद्ध स्तर पर प्रयास कर रहा है। हम अपनी आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से जो विकास की राजनीति का संकेतक है, के द्वारा अपने अभीष्ट लक्ष्य 'विकसित भारत' को प्राप्त कर लेगें।

मूल शब्द *:– विकास, रोजगार, सर्वांगीण गरीबी, अज्ञानता, स्वास्थ्य, त्वरित विकास, समावेशी विकास, सुशासन, विकास योजना*

प्रस्तावना

विकसित भारत के संकल्प का आधार पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानवतावाद और अंत्योदय का दर्शन है जो भारत में विकास की राजनीति के मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक है। शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए 'सबका साथ सबका विकास एवं सबका विश्वास' का संकल्प

---

* *सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान एवं मानवाधिकार विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म0प्र0)*

इस सिद्धांत तथा सरकार द्वारा तय की गई विकासात्मक कार्य योजनाओं में दृष्टिगोचर होता है। आज भारत दुनिया के अग्रणी राष्ट्रों के पंक्ति में खड़ा है। आज भारत की डगर वैश्विक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में अद्‌भुत उपलब्धियों से भरी है। फलतः विकसित भारत का मार्ग सरलतम होता जा रहा है। देश के अंदर विकास के वातावरण का सृजन इस प्रकार से हुआ है जिसमें राजकोष की सुदृढ़ता से लेकर बुनियादी ढाँचे और कृषि क्षेत्र में हो रहे भारी निवेश, वित्तीय समावेशन, कृषि सिंचाई योजना, किसान कल्याण योजनाओं और प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना प्रमुख है।

आज भारत में एक राष्ट्र एक कर की संकल्पना से वस्तुओं एवं सेवाओं का जो राष्ट्रव्यापी बाजार विकसति हो रहा है उससे विनिर्माण के क्षेत्र में भारत विश्व का श्रेष्ठ राष्ट्र बनने की ओर बढ़ रहा है। जन–धन योजना, मेकिंग इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, स्टैंडअप इंडिया, और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण जैसे कार्यक्रमों ने विकसित होने की प्रेरणा दी है।

भूतपूर्व भारतीय राष्ट्रपति डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने देश के विकास पर प्रकाश डालते हुए कहा है– ''विकास के सुस्पष्ट संकेतक हैं –राष्ट्र की समृद्धि, उसकी जनता की समृद्धि और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर इसकी स्थिति। राष्ट्र की समृद्धि से संबंधित अनेक संकेतक है जैसे कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP), सकल घरेलू उत्पाद (GDP), अदायगी में सन्तुलन, विदेशी विनिमय भंडारण, आर्थिक वृद्धि, आर्थिक वृद्ध दर, प्रति व्यक्ति आय आदि। आर्थिक सूचक महत्वपूर्ण है परन्तु वे पर्याप्त नहीं है। इसमें अन्य सूचकों को भी शामिल किया जाता है जैसे कि लोगों का समग्र पोषण स्तर कैसा है, औसतन रूप से जीवन की संभावनाएं कितनी हैं, चिकित्सा सुविधाओं की प्राप्ति, साक्षरता मांगों के अनुरूप कौशल स्तर। इसमें जीवन स्तर के अनेक संकेतक शामिल किये जा सकते हैं। सभी भारतीयों का वर्तमान सुरक्षित और सुखदायक होना चाहिए और वे इस स्थिति में होने चाहिए कि वह बेहतर भविष्य की ओर बढ़ सकें यही वह विकसित भारत है जिसके लिए हम कार्य कर रहे हैं।[1]

भारत जैसे विश्व के विशाल विकासशील लोकतांत्रिक राष्ट्र में उदारीकरण या आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को तब तक अच्छी तरह से नहीं समझा जा सकता है जबतक उसको प्रभावित करने वाली विकास की राजनीति को नहीं समझा जा सकता। यद्यपि विकास को परंपरागत स्वरूप में परिणाम के रूप में देखा जाता था। तथापि आधुनिक समय में विकास व्यापकता, एवं विस्तृत मानदण्डों का संकेतक है। इसमें सकल राष्ट्रीय या घरेलू उत्पाद के संदर्भ में आर्थिक प्रगति का मापन किया जाता है। प्रथम स्वतंत्रता

दिवस की पूर्व संध्या पर 14 अगस्त, 1947 को जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की थी : वर्षों पूर्व हमने नियति को फिर मिलने का वचन दिया था और आज वह समय आ गया है जब हम अपना वह वचन पूरा करेंगे।'' उन्होंने कहा कि देश के विकास के लिए भविष्य में गरीबी और अज्ञानता के साथ बीमारियों एवं अवसरों की असमानता को समाप्त करने हेतु संकल्प लेना होगा।

शोध का उद्देश्य

इस शोध पत्र का गुणात्मक एवं सृजनात्मक उद्देश्य भारत में शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, गरीबी, अज्ञानता, आर्थिक समानता एवं समृद्धि, सामाजिक न्याय एवं समरसता स्थापित कर त्वरित विकास द्वारा विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करना है। अपनी स्वतंत्रता की शताब्दी समारोह 2047 तक विकसित भारत का प्राथमिक उद्देश्य एक पूर्ण विकसित भारत के रूप में आत्मसात करना है। यह तभी पूरा होगा जब भारत में विकास की राजनीति को व्यापक दृष्टिकोण के माध्यम से लागू किया जाएगा जो निम्नवत है–

1. आर्थिक विकास के लिए व्यापक राजनीतिक कार्य योजना तैयार करना।
2. सामाजिक न्याय एवं समभाव के लिए सामाजिक उन्नति और समावेशन के लिए कार्य करना।
3. सुशासन हेतु जवाबदेही एवं कुशल शासन का चयन।
4. पर्यावरणीय प्रबंधन की प्राथमिकता एवं पर्यावरणीय स्थिरता बनाने हेतु कार्य करना।

साहित्य समीक्षा

विकसित भारत के संकल्प को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए हमारे देश के सभी राजनीतिज्ञों, समाजशास्त्रियों, बुद्धिजीवियों, लेखकों, नीति निर्माताओं, संविधानविदों, प्रशासकों एवं अर्थशास्त्रियों के विचार वास्तव में विभिन्न नीतियों को तैयार करने की जिम्मेदारी में उपयोगी होगी। साथ ही अनुभवों पर आधारित बौद्धिक विचार निश्चित रूप से भारत सरकार को विकसित भारत 2047 के संकल्प को प्राप्त करने में मदद करेंगे। विकसित भारत का लक्ष्य प्राप्त करने में भारत सरकार निरंतर विकास योजनाओं पर कार्य कर रही है। केवल आर्थिक विकास हासिल करना ही विकास का सही अर्थ नहीं है उक्त कथन दिनांक 28/12/2023 को 'द हिंदू' में प्रकाशित संपादकीय लेख ''विकसित भारत ओडिसी में खुशी की खोज'' में प्रकाशित हुआ। भारत को उसकी आजादी के 100वें वर्ष यानी 2047 तक एक विकसित राष्ट्र का दर्जा दिलाने की संभावना वास्तव में लुभावना है। भारत अपनी तीव्र विकास मॉडल के बल पर इस लक्ष्य

को समय से पूर्व प्राप्त कर लेगा। वास्तव में विजन इंडिया/2047 नीति आयोग द्वारा प्रारंभ की गई एक महायोजना है। आगामी 25 वर्षों में विकास का एक ऐसा रोडमैप तैयार करना है जिसमें नवाचार और प्रौद्योगिकी में वैश्विक मानक के साथ ही पर्यावरणीय स्थिरता मानव विकास एवं सामाजिक कल्याण में अग्रणी बनने का संलल्प प्रमुख रूप से सम्मिलित है।

सामाजिक अवसर एवं सार्वजनिक नीति

नेहरू जी द्वारा सुझाए गये गरीबी, अज्ञानता, बीमारी एवं अवसरों की विषमता दूर करने से बेहतर अन्य कोई शुरुआत हो ही नहीं सकती किन्तु उसे कार्य के लिए यह आवश्यक नहीं की नेहरू जी द्वारा चयनित मार्ग का ही अनुसरण किया जाए। सामाजिक अवसरों पर अनेक कारकों के प्रभाव पड़ते हैं जिनमें से कुछ है शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सेवाएं, वित्त की उपलब्धि तथा उसके प्रकार अथवा स्वरूप बाजार का अस्तित्व में होना तथा सामान्य नौकरशाही नीतियों का स्वरूप एवं पैठ। जिस प्रकार की दलीलें आजकल भारत में दी जा रही हैं, उन्हें व्यक्तियों को सहज प्राप्त सामाजिक अवसरों के निर्धारण निरूपण के व्यापक परिवेश में देखा और समझ जाना चाहिए।

हाल के वर्षों में आर्थिक विकासशास्त्र भी विकास क्रम के स्वरूप के व्यापीकरण की ओर ही अग्रसर होता प्रतीत हुआ है।[2] विकास साहित्य का मुख्य ध्यान आर्थिक समृद्धि अर्थात सकल राष्ट्रीय उत्पाद आदि की वृद्धि पर ही केंद्रित रहा है इसमें मानवीय योग्यताओं एवं क्षमताओं के संवर्धन को कभी पूरी तरह दृष्टिगत नहीं किया गया है।[3]

भारत में आजकल नौकरशाही हस्तक्षेप से मुक्त बाजार अवसरों के संवर्धन की नीतियों के पक्ष में दिए जा रहे तर्क मुख्यतः आर्थिक प्रसार अथवा देश में उत्पादन एवं आय को बढ़ाने से ही जुड़े हैं। इस संदर्भ में भगवती श्रीनिवासन अनुशंसा (1993)[4] को उद्धृत करना उचित होगा। यह संरचनात्मक सुधार इसलिए आवश्यक हो गए थे कि हम आय तथा प्रति व्यक्ति आय की समृद्धि की पर्याप्त दरों की प्राप्ति नहीं कर पा रहे थे।

विकसित भारत के लिए संकल्प यात्रा

आज का नया भारत (New India) अपने कुशल नेतृत्व एवं विकास की राजनीति के आधार पर अनूठी विकास पहल के लिए दुनिया में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। जिनसे भारत के विकास को गति मिली है और उसका लाभ अंतिम व्यक्ति तक पहुंचा है। भारत सरकार की प्रमुख नीतियों जैसे कि उज्ज्वला

योजना, प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना, आयुष्मान भारत योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, जन–धन योजना एवं नमामि गंगे जैसे विकास योजना से आम जनमानस में विकास के प्रति विश्वास बढ़ा है जिससे भारत विश्व पटल पर नए रूप में सशक्त रूप में दिखाई दे रहा है।

जनकल्याण के हितार्थ भारत सरकार ने लगभग 140 करोड़ भारतीयों को सबका साथ सबका विकास एवं सबका विश्वास के अंतर्गत आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास को बढ़ाने का शुभ अवसर दिया है। आज वर्तमान भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि पारदर्शी सरकार के साथ भ्रष्टाचार के अंत की एक सार्थक शुरुआत है। वर्तमान सरकार द्वारा आरम्भ की गई प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण योजना के अंतर्गत आम जनमानस को लाभ देने के लिए सब्सिडी बैंक खातों में जमा की जाती है। आज हम 'कौशल भारत कुशल भारत' के संकल्प के माध्यम से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के उस संकल्प को साकार करने जा रहे हैं जो आत्मनिर्भर स्वदेशी कौशल युक्त विकसित भारत के लिए था। ''गांधी जी ने विकास का जो मार्ग दिखाया वह मनुष्य के स्वभाव और चरित्र को नए सांचे में डालने पर बल देता है।''[5] उनका अभिमत था कि ''आदर्श राज्य छोटे–छोटे आत्मनिर्भर ग्राम समुदायों का संघ होगा। वे यह भी कहते हैं कि लोग केवल अपने देश में बनी वस्तुओं का प्रयोग करके यहां की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करें।''[6]

भारत में सतत विकास की राजनीति

भारत में विकास राजनीति का मुख्य केंद्र सतत विकास की रणनीति है। सरकार की कार्य पद्धति ही विकसित भारत संकल्प मार्ग का आधार है। अमृत काल में सतत विकास के माध्यम से भारत का लक्ष्य छूटे एवं वंचित समाज के सभी वर्गों, क्षेत्रों, गांवों, शहरों तथा समाज के अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति तक लाभ योजनाओं को पहुंचना है ताकि भारत में विकास सर्वस्पर्शी, सर्वांगीण एवं समावेशी हो। हर व्यक्ति के कौशल, क्षमता, योग्यता का सम्मान होगा तो आगामी 25 वर्षों में भारत एक ऐसा राष्ट्र बन जाएगा जो विकसित भारत के संकल्प को साकार करेगा।

इस शोध पत्र के माध्यम से हम विकसित भारत के लक्ष्य सिद्ध के लिए भारत में सतत विकास हेतु जो योजनाएं बनाई गई है विकसित भारत का संकल्प पदयात्रा उन्हीं महा परियोजनाओं का सतत् प्रयास है। आगामी 25 वर्षों के अमृत काल में विकसित भारत का दिव्य एवं भव्य महल अस्तित्व में लाना है तो हमको उनके चार अमृत स्तंभों पर अपनी शक्ति लगानी है। विगत 10 वर्षों में जी ऊर्जा से सतत् विकास का कार्य हुआ है उसे अधिक शक्ति लगानी है। इसके लिए चार अमृत स्तंभ इस प्रकार हैं[7]–

प्रथम अमृत स्तंभ : भारत की महिलाएं हमारी नारी शक्ति।

द्वितीय अमृत स्तंभ : भारत के किसान हमारे पशुपालक, हमारे मछलीपालक, हमारे अन्नदाता।

तृतीय अमृत स्तंभ : भारत के नौजवान हमारे युवा शक्ति।

चतुर्थ अमृत स्तंभ : भारत का मध्यम वर्ग, भारत के गरीब।

भारत के प्रधानमंत्री के उपरोक्त दृष्टिकोण के संदर्भ में उनका अभिमत है कि इन चार स्तंभों को हम जितना मजबूत करेंगे विकसित भारत की इमारत उतनी ही ऊंची उठेगी।

विकसित भारत के लिए हमारा विजन सुस्पष्ट है हम आधुनिक बुनियादी ढांचे और सभी के लिए अवसर के साथ समृद्ध भारत के अध्याय को साकार करने के लिए भारत के सतत् विकास हेतु कार्य कर रहे हैं। देश में सिर्फ 55% बच्चों को टीके लग पाते थे आज शत प्रतिशत टीकाकरण हो रहा हैं। आजादी के सात दशक में देश के सिर्फ 17% ग्रामीण परिवारों को नल से जल की सुविधा थी आज जल जीवन मिशन की वजह से 70% पहुंच रहा है। इसी प्रकार आजादी के सात दशक बाद भी 18000 गांव ऐसे रह गए थे जहां बिजली नहीं पहुंची थी। प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजनान्तर्गत इन सभी गांव में लगभग आज बिजली पहुंच गई है। देश में 110 से ज्यादा जिले ऐसे थे जो विकास के हर मानदण्डों पर पीछे थे। इन जिलों में शिक्षा, स्वास्थ्य व सुविधा दशकों से दयनीय स्थिति में थी। आज इस अभियान के आकांक्षी ब्लाक कार्यक्रम के जरिए इसका विस्तार किया जा रहा है।[8] आज भारत के सभी क्षेत्रों में विकास नित नए आयाम स्थापित हो रहे हैं। नई शिक्षा नीति हो या गरीबों के हितार्थ संचालित रोजगार या फिर आत्मनिर्भर भारत को सार्थक बनाने का प्रयास तथा दीनदयाल अंत्योदय योजना की शुरुआत ने आज भारत के ग्रामीण विकास की राजनीति में क्रांति ला दी है। शहरी क्षेत्र में रहने वाले लोगों की सामाजिक सुरक्षा के लिए भी केंद्र सरकार प्रतिबद्ध है। 60 वर्ष आयु पूरी कर चुके सभी लोगों को सुरक्षा एवं सद्जीवन हेतु 'अटल पेंशन योजना' से अभी तक 6 करोड़ लोग जुड़ चुके हैं। इस कार्य योजना से (5000/–) प्रति माह नियमित पेंशन सुनिश्चित हो रही है।

इस प्रकार विकसित भारत के लक्ष्य को साकार करने के लिए भारत सरकार की कुछ प्रमुख विकासात्मक कार्य योजनाएं नवीन विकास क्रांति की सूचक बन गई है जो निम्न है[9]–

क्र.	प्रमुख योजनाएँ	विवरण
1	पी0एम0 स्वनिधि योजना जून 2020	केन्द्रीय योजना, जिसमें 50 हजार रूपये तक कार्यशील पूंजी ऋण सुविधा दी जाती है। 11198 करोड़ रूपये के 84.10 लाख लोन मन्जूर, 43 प्रतिशत ओ.बी.सी. एवं 19 प्रतिशत अनुसूचित जाति लाभार्थी।
2	पी0एम0 उज्जवला योजना 1 मई, 2016	उद्देश्य गरीब महिलाओं को मुफ्त एल0पी0जी0 कनेक्शन देना है। इस योजना में 10 करोड़ से अधिक कनेक्शन दिए जा चुके है एवं 300 रूपये के अतिरिक्त सब्सिडी के साथ योजना का विस्तार दिया गया है।
3	स्टार्टअप इण्डिया 16 जनवरी, 2016	उद्देश्य संस्कृति को बढ़ावा देने के साथ नवाचार और उद्यमिता के लिए एक मजबूत एवं समावेशी इको सिस्टम तैयार करना। 12.42 लाख प्रलक्ष रोजगार सृजन की सूचना स्टाटअप ने सरकार को दी है। 56000 हजार स्टार्टअप में कम से कम एक महिला निदेशक है।
4	स्टैंडअप इण्डिया	उद्देश्य ग्रीन फील्ड उद्यम स्थापित करने के लिए प्रति बैंक शाखा कम से कम एक अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के उधारकर्ता को 10 लाख से 1 करोड़ के बीच लोन की सुविधा प्रदान करती है।
5	आयुष्मान भारत	दुनिया की सबसे बड़ी स्वास्थ्य बीमा योजना है। इसका लक्ष्य 12 करोड़ से अधिक गरीब और कमजोर परिवारों को लाभ देना है। यह भारतीय जनसंख्या के निचले स्तर के 40 प्रतिशत लोग हैं।
6	पी0एम0 आवास योजना शहरी जून, 2015	शहरी क्षेत्र के सभी पात्र लोगों को हर मौसम में पक्के घर उपलब्ध कराया जा रहा है। 2 लाख करोड़ की केन्द्रीय सहायता तथा 1.18 करोड़ घरों की मंजूरी

इसके अतिरिक्त पीएम विश्वकर्मा, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, स्वच्छ भारत अभियान, पीएम भारतीय जन औषधि योजना, पीएम की बस सेवा, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजना, दीनदयाल अंत्योदय योजना, पीएम गरीब कल्याण अन्य योजना, पीएम आवास योजना ग्रामीण, पीएम किसान सम्मन निधि, किसान क्रेडिट कार्ड, उज्ज्वला योजना, सौभाग्य योजना, अटल पेंशन योजना, खेलो इंडिया, हर घर जल जल जीवन मिशन, एवं स्वामित्व योजना जैसे विकासात्मक पहल के द्वारा सतत् विकास ने भारत में विकास की राजनीति का आधार बना है। आर्थिक विकास के साथ–साथ प्रशन्नता एवं कल्याण को महत्व देने वाले समग्र दृष्टिकोण को अपनाकर भारत अधिक समृद्ध और पूर्ण विकास प्राप्त करने की आकांक्षा कर सकता हैं।[10] भारत की वैश्विक पटल के प्रभाव स्वरूप G-20 की अध्यक्षता ने दुनिया में हमारी कूटनीतिक व आर्थिक संगठनात्मक क्षमताओं का परचम लहराया। भारत की वैश्विक स्तर पर बढ़ती हुई प्रतिष्ठा का परिणाम है कि आज भारत में अन्तर्राष्ट्रीय निवेशक बड़ी संख्या में आ रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सौर गठबन्धन जैसे संस्थान अब भारत में स्थापित किये जा रहे हैं। रोजगार, शिक्षा के साथ नीजि क्षेत्र में कार्य सम्बन्धी पारिश्रमिक नीति के लिए सरकारी मानकों के साथ ही

प्रशासनिक कार्ययोजना को व्यावहारिक रूप से लागू किया जाए तो निश्चित रूप से नागरिकों का समग्र विकास होगा और केन्द्र सरकार के 'विकसित भारत 2047' के सपने को वास्तविक धरातल पर लाने में मदद मिलेगी।[11]

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह कहना सर्वथा उचित होगा कि आज भारत के राजनीति में विकास की ही बात हो रही है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पर्यावरणीय प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में हम निरंतर एक आदर्श मानक स्थापित कर रहे हैं या करने जा रहे हैं। सदी का नया भारत अपनी विकसित भारत के विराट संकल्प को सरकार तभी कर पाएगा जब हम गांधी, दीनदयाल सहित भारतीय चिंतकों वैज्ञानिकों अर्थशास्त्रियों हर क्षेत्र के बुद्धिजीवियों के सकारात्मक विचारों को आत्मसात करके ईमानदारी से अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर बढ़े। इसके लिए सबका साथ सबका विकास सबका विश्वास और सबका प्रयास सही दिशा में कार्य करें। आज हमें विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता यह है कि एक मजबूत अर्थव्यवस्था, नवाचार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सुशासन की सुरक्षा एवं एक सशक्त भारतीय दृढ़ नेतृत्व जिसमें समर्पण विश्वास को साकार करने की क्षमता विद्यमान हो। निश्चित रूप से संकल्प को कार्य सिद्धि तक पहुंचाना भारत सरकार की कार्यशैली में दृष्टिगोचर होती है क्योंकि 10 वर्षों में भारत सरकार की कार्ययोजना इसका प्रमाण है कि 25 करोड लोग गरीबी से बाहर आए हैं। आज भारत के शहरी एवं ग्रामीण के साथ हर क्षेत्र में सतत् विकास जो दिख रहा है यह जनमानस की इच्छा शक्ति का परिचायक ही नहीं विकास की गारंटी बन गया है। अतः निश्चित रूप से हम विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

संदर्भ

1. *बिस्वाल तपन, ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'' ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली 2016, पृ0 203*
2. *अमर्त्य सेन, ''भारत की विकास दशाएं'' राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2006, पं0 2*
3. *वही, पृ0 21*
4. *भारत का आर्थिक सुधार, वित मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली*
5. *गाबा, ओम प्रकाश, ''राजनीति–चिन्तन की रूपरेखा'' मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 208, पृ0 328*
6. *वही, पृ0 328*
7. *न्यू इण्डिया समाचार, 15–31 मार्च 2024, 'विकसित भारत संकल्प यात्रा', पृ0 05*
8. *वही, पृ0 06*
9. *क्र. 07, पृ0 19–31*
10. *PDF reference Url:https://www.drishtias.com/printpdf/redefining-viksit-bharat.*
11. *https//www.journalofpoliticalscience.com*

Paper Received : 18 Jan., 2025 **Paper Accepted : 25 Feb., 2025**

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 105-114

भारत में राजनय की परंपरा कौटिलीय अर्थशास्त्र के विशेष संदर्भ में

*डॉ. दिग्विजय नाथ चौबे **

सारांश

राष्ट्र राज्य तथा राष्ट्रहित को सुदृढ़ सशक्त बनाने के लिए कौटिल्य ने राजनीति तथा राजनयिक नियमों का सांगोपांग वर्णन किया है। कौटिल्य ने राज्य के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यों के माध्यम से प्रजा के भौतिक और नैतिक विकास को प्रमुखता प्रदान किया। कौटिल्य ने अपने सप्तांग सिद्धांत द्वारा यह स्थापित किया कि अलग–अलग राज्यों के बीच किस तरह की नीति का निर्माण तथा पालन किया जाना चाहिए। कौटिल्य ने एक सक्रिय विदेश नीति का वर्णन अपने मंण्डल सिद्धांतके अन्तर्गत किया जिसका उपयोग एक राजा अपने राजनयिक हितो की संबृद्धि के लिए करता है एक राजनीतिक विचारक के रूप में कौटिल्य का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि उन्होंने न केवल राज्य के आंतरिक प्रशासन का वर्णन किया अपितु उन सिद्धांतों का भी उल्लेख किया है जिनके आधार पर एक राज्य द्वारा दूसरे राज्यों के साथ अपने संबंध निर्धारित किए जाने चाहिए। कौटिल्य ने अपने राजनयके संबंध में दो प्रमुख सिद्धांतों का प्रतिपादन किया– पड़ोसी राज्यों के साथ संबंध स्थापित करने के लिए मंण्डल सिद्धांत तथा अन्य राज्यों के साथ संबंध निर्धारित करने के लिए षाडगुण्यनीति। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में चार विधाएं –आन्वीक्षकी, त्रयी ,वार्ता और दण्डनीति का उल्लेख किया है। उनके अर्थशास्त्र के अनुसार वार्ता और दण्डनीति ही राजनीति है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तीनों वेदों, सांख्य दर्शन, योग और लोकायत के साथ अर्थशास्त्र और राजनय को एक साथ मिलकर राष्ट्र के अभ्युदय का एक कर्तव्य पथ निर्मित किया गया है। वस्तुतः कौटिल्य वह प्रथम भारतीय विचारक हैं, जिन्होंने शासन के संचालन के लिए लोक प्रशासन के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

***मूल शब्द** :– राजधर्म, कूटनीति, दूत ,दण्डनीति, राजनीति*

प्रस्तावना

भारत में राजनय की सुदीर्घ परंपरा रही है। यह प्राचीन काल से राजनीति के समान रूप में समान अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है, लेकिन अर्वाचीन राजनीतिशास्त्री राजनय को प्राचीन युग के प्रचलित शब्द कूटनीति का संशोधित,

* *सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान एवं मानवाधिकार विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, म.प्र.*

परिवर्धित एवं आधुनिक नया नाम देते हैं। इसका अभिप्राय संधिवार्ता व कौशलपूर्ण प्रयोग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था और निर्वाह से है। 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ ब्रिटानिका' में 'राजनय' को अन्तर्राष्ट्रीय संधि वार्ताओं के संचालन की कला कहा गया है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में राजनय का अर्थ राजनीति से लगाया जाता हैं। प्राचीन भारतीय राज शास्त्रियों ने नीति व नय ने दोनों को समानार्थक माना है। यद्दपि की दोनों उत्पत्ति की दृष्टि से समान है, तथापि प्रत्यय भेद के कारण दोनों के अर्थों में साधारण भेद होता है, जिसके कारण व्यवहार में आंशिक भेद दृष्टिगत होता है। शब्द कल्पद्रुम एवं अन्य शास्त्रकारों ने नय और नीति को समानार्थक माना है। नय का जो सारभूत तत्व होता है, उसे नीति कहते हैं। स्पष्ट है कि नीति ही नय और नय ही नीति है। अतएव नय का आशय नीति होने के कारण एवं नीति का आशय नय होने के कारण राजनय का आशय भी राजनीति से है। प्राचीन भारत में राजनीति को विभिन्न नामो से संबोधित किया गया है यथा– राजधर्म, दण्डनीति, नीतिसार, राजनय, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, एवं नृपनीत। डॉ. परमात्माशरण ने अपने ग्रंथ 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाए' में कहा है कि दृ"राजनीति को प्राचीन भारत में कई नामो से पुकारा गया है और इसका आज भी पश्चात्त्य जगत में अलग से कोई नाम नहीं है।"[1] राजनय और राजनीति की अवधारणा बहुआयामी है। अतएव देश, काल एवं परिस्थिति कारण प्राचीन काल से लेकर आज तक इसके नामो में अन्तर देखने को मिलता है, यथा– प्राचीन काल में राजनय के लिए दण्डनीति, रामायण काल में राजनीति एवं महाभारत काल में राजधर्म शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही चंद्रगुप्त मौर्य के काल में महापंडित विष्णुगुप्त (चाणक्य) जिसका नाम कौटिल्य, चंचरिक, वात्सायन भी था, इसे अर्थशास्त्र नाम से सम्बोधित किया। यद्दपि की राजनय के नामो में अन्तर परिलक्षित होता है, परंतु सभी का अर्थ नीति से ही है। अर्थात राजा या राज्य की वह नीति जिसके माध्यम से राज्य संचालन का कार्य सुचारु रूप से चलता है।[2]

कौटिल्य के पूर्व राजनय की परम्परा

भारतीय चिंतन में राजनय की परम्परा अतिशय प्राचीन है। इसको विविध कालखण्डो में देखा जा सकता है –

प्रागैतिहासिक काल में राजनय

प्रागैतिहासिक काल उस कालखण्ड को माना जाता है, जिसका कोई लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। यदा–कदा ऐतिहासिक काल के पूर्व समस्त

काल को प्रागैतिहासिक काल के रूप में मान्यता है। इस कालखण्ड में कोई साक्ष्य ना मिलने के कारण सैन्धव नगरों की शासन व्यवस्था का स्पष्ट ज्ञान दुर्लभ है।

पूर्ववैदिक काल में राजनय

सैन्धव संस्कृति के पतन के बाद भारत में जिस नवीन सभ्यता का विकास हुआ, उसे वैदिक अथवा आर्य सभ्यता के नाम से जाना जाता है। आर्यों का इतिहास मुख्यतः वेदों से ज्ञात होता है, जिसमें ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण है। अतः ऋग्वेद का काल पूर्व वैदिक काल है, जिसका रचित समय 1500 से 1000 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है। ऋग्वेद में राजनय सम्बन्धी कुछ तथ्य स्पष्ट होते हैं। इसके अनुसार आर्य पांच जनों में विभक्त थे, जिसे पंचजन कहा गया हैं। जन के अधिपति को राजा कहा जाता था, और सबसे छोटी इकाई कुल अथवा परिवार होता था। परिवार का स्वामी पिता अथवा बड़ा भाई होता था, जिसे कुलप कहा जाता था कई कुलों को मिलाकर ग्राम बनता था, जो आत्मनिर्भर होते थे। ग्राम की सुरक्षा के लिए ऊंचे टीले पर एक पुर बना होता था। ग्राम के मुखिया को ग्रामणी कहा जाता था। ग्रामणी नागरिक व सैनिक दोनों प्रकार का कार्य करता था। ग्राम से बड़ी संख्या 'विश' होती थी, जिसका स्वामी विशपति कहलाता था, तथा अनेक विशो के समूह को जन, और जन के अधिपति को जनपति या राजा कहा जाता था।[3] ऋग्वेद में देश या राज्य के लिए राष्ट्र शब्द आया किंतु यह प्रभुता संपन्न राज्य का सूचक नहीं है। ऋग्वेद में ''विश्वस्य भुवनस्य राजा''[4] की अवधारणा से स्पष्ट है कि राजपद अत्यंत गौरवशाली एवं प्रतिष्ठित रहा है। प्रारम्भ में समस्त प्रजा मिलकर राजा का चयन करती थी, लेकिन कालांतर में यह पद अनुवांशिक हो गया।

उत्तर वैदिक काल में राजनय

ऋग्वैदिक संस्कृति की आधारशिला पर ही उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति का प्रासाद खड़ा हुआ। इस काल के संहिताग्रंथ– ब्राह्मण,आरण्यक तथा उपनिषदों से यह विदित होता है कि इसका समय लगभग ई.पू. 1000 से 600 ई.पू. तक रहा होगा। उत्तर वैदिक काल में विशाल राज्यों की स्थापना के साथ–साथ राजा के अधिकारों में वृद्धि हुई। राजा सामान्य

उपाधियों के स्थान पर राजाधिराज, सम्राट, एकराट जैसी विशिष्ट उपाधियों से विभूषित हुआ।

सूत्रकाल मे राजनय

उत्तर वैदिक काल के बाद सूत्र काल का उदय माना जाता है 7वी ई.पू. से तृतीय ई.पू. तक के समय को सूत्र काल कहा जाता है।[5] सूत्रों में धर्मसूत्र का महत्व राजनीति एवं धर्म की दृष्टि से है। धर्मसूत्रों में राजनय सम्बन्धी विवरण मेंन केवल राजतंत्र का ही उल्लेख पाया जाता है, अपितु धर्मसूत्र राज्य को एक धार्मिक संस्था के रूप में अवलोकित करता है, जिसमें राजा एवं प्रजा दोनों दैवी इच्छानुसार अपना–अपना कार्य करते हैं।

महाकाव्य काल में राजनय

महाकाव्य से आशय रामायण एवं महाभारत काल से है। भारतीय लोक परम्परा में इन दोनों ग्रंथों का अत्यंत आदरपूर्ण स्थान है। रामायण और महाभारत में अर्थात महाकाव्य के काल तक आर्यों का प्रसार पूर्व की ओर हो गया। देश में बड़े–बड़े राज्यों की स्थापना हुई राजा, महाराजाधिराज, सम्राट, चक्रवर्ती जैसी विशिष्ट उपाधियां धारण करते थे और चतुरंगिनी सेना रखते थे, जिसमें अश्व ,गज ,रथ तथा पैदल सैनिक होते थे। राजा दिग्विजयी होते थे और दिग्विजय के पाश्चात राजसूय, अश्वमेध, जैसे यज्ञों का अनुष्ठान करते थे। श्रीराम और युधिस्ठिर ने इस प्रकार का यज्ञ किया था।

स्मृति काल में राजनय

इस काल में कई स्मृतियों का उल्लेखहै, किंतु इनमें मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति राजनय की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति प्राचीन वैदिक परम्परा के सुविख्यात संतो और ऋषियों द्वारा रचित एक प्रकार की सम्पूर्ण धर्म– संहिताएं हैं। इन दोनों स्मृतियों में राजधर्म नामक अलग से अध्याय है, जिसमें राजा के कर्तव्य के साथ–साथ शासन संचालन एवं उसकी दिनचर्या का वर्णन किया गया है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में राजनय

परमतेजस्वी, महानीतिज्ञ, राजनैतिक एकीकरण के महान शिल्पी, मगध के भाग्यविधाता, कौटिल्य का जन्म 325 ई. पू. में भारत की ऐतिहासिक नगरी आर्यावर्त के शक्तिशाली एवं वैभव– संपन्न मगध साम्राज्य में एक ब्राह्मण आचार्य

चणक यहां हुआ था। उनका बचपन का नाम विष्णुगुप्त एवं चणक का पुत्र होने के से चाणक्य तथा काल क्रमानुसार कुटिल नीति एवं शासन कला के विशेष ज्ञान होने पर उन्हें कौटिल्य नाम से जाना गया । उन्होंने महान ग्रंथ अर्थशास्त्र की रचना की, जिसका मुख्य विषय राजनीति है। इसमें राजनीति के विविध पहलुओं का विस्तृत विवरण है। इस ग्रंथ में 15 अधिकरणों, 180 प्रकरणों प्रकरणों, 150 अध्यायों तथा 6000 श्लोक हैं।[6]

कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में अर्थ एवं अर्थशास्त्र की व्याख्या की है। इसके अनुसार मनुष्य की वृत्ति और भूमि अर्थ है।अतएव वह शास्त्र अर्थशास्त्र है, जिसमें मनुष्यों वाली भूमि के लाभ और उसके पालन करने के उपायो का वर्णन किया गया हो। वस्तुतः अर्थशास्त्र का विस्तार मनुष्य के जीवन के उन कार्यों तथा क्षेत्रों तक सीमित नहीं रहता , जिसमें वह धन उत्पादन, उसके वितरण और उसके उपभोग से संबंधित कार्यों के संपादन हेतु उद्योग करता है। शासन व्यवस्था और सुख– सुविधा की दृष्टि से कौटिल्य ने समग्र राष्ट्र को दो भागों में विभक्त किया है– पुर और जनपद। पुर से उसका अभिप्राय नगर, दुर्ग या राजधानी से और जनपद का आशय राष्ट्र के शेष भाग से है।[7] राज्य की सप्त प्रकृतियों में जनपद और दुर्ग (पुर) को इसीलिए अलग–अलग माना गया है। 'पुर' राजधानी के प्रमुख अधिकारी को नागरिक कहा जाता है और उसी प्रकार जनपद की शासन– व्यवस्था का दायित्व समाहर्ता पर निर्भर किया गया है। राजधानी में शांति एवं सुरक्षा बनाने के लिए कौटिल्य ने नगर में प्रवेश करने वाले नवागंतुक व्यक्तियों की देख –भाल के लिए नगर रक्षको की व्यवस्था की है। इसी प्रकार जनपद की स्थापना किस प्रकार की जानी चाहिए, इसका विशद वर्णन कौटिल्य ने किया है। जनपद की सबसे छोटी इकाई ग्राम कहलाती थी तथा दस ग्रामो को मिलकर संग्रहण नमक राजकीय कार्यालय की स्थापना की जाती थी। दो सौ ग्रामों को मिलाकर खर्वाटिक नामक इकाई बनती थी, तथा प्रत्येक चार सौ ग्रामों को मिलाकर द्रोणमुख नामक प्रशासनिक इकाई स्थापित करने की बात अर्थशास्त्र में कही गई है। इस प्रकार दो द्रोणमुख को मिलाकर स्थानीय का गठन किया जाता था और स्थानीय के ऊपर जिले जिन्हें "आहरी अथवा विषय कहा जाता था"। जिले के ऊपर मण्डल की स्थापना की गई थी और कई मण्डलोको मिलकर प्रान्त की स्थापना की जाती थी। अर्थशास्त्र में उल्लिखित 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी मण्डल का प्रधान होता था। वह अपने मण्डल के अधीन विभिन्न विभागों के

अध्यक्षों के कार्यों का निरीक्षण करता था तथा समाहर्ता के प्रतिउत्तरदायी होता था। इस प्रकार प्रान्त सहित इन सभी संस्थाओं के प्रधान, न्यायिक, कार्यकारी तथा राजस्व सम्बंधी अधिकारों का उपभोग करते थे तथा युक्त नामक पदाधिकारियो की सहायता से अपना कार्य संपादित करते थे। इस स्थापना से जनपद में शत्रुओं का आगमन नहीं होगा। इसके अतिरिक्त जनपद की सीमा पर ब्याघ, शबर, पुलिंद, चाण्डाल और अन्य वनचर जातियों को बसाकर वहां की सुरक्षा का भार उन्ही को सौंप देना चाहिए।[8]

धर्म और शासन के क्षेत्र में कार्य करने वाले 18 प्रमुख पदाधिकारियों को कौटिल्य ने तीन भागों में विभक्त कर वर्णन किया है–

प्रथम श्रेणी में मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज तथा द्वितीय श्रेणी में दौवारिक, अंतवाशिक, प्रशास्त, समाहर्ता, सन्निधाता और तृतीय श्रेणी में प्रदैष्ठा, नायक, व्यवहारिक, कर्मातिक, सभ्य दण्डपाल, दुर्गपाल एवं अंगपाल को रखा गया है।[9]

कौटिल्य ने राजनय तथा कूटनीति को विदेश नीति का आवश्यक अंग माना है। मैकियावली के समान कौटिल्य भी छल, कपट, धोखा, विश्वासघात को उचित मानते हैं। शत्रु को परास्त करके अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में कौटिल्य उचित– अनुचित सभी साधनों का प्रयोग करने का अधिकार विजयाभिलाषी राजा को देते हैं। राजनय तथा कूटनीति का संचालन दूतो के माध्यम से किया जाता था।

दूत के संम्बन्ध में कौटिल्य का विचार अग्रलिखित है –

पर– राष्ट्रनीत कौटिलीय अर्थशास्त्र का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। इसमें कौटिल्य द्वारा बताए गए उपायो, साधनों तथा गुणों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में राजनयिक, राजदूत अथवा दूत की भूमिका निर्विवादित रही है। वस्तुतः दूत वह व्यक्ति होता है जो शत्रु अथवा मित्र राजाओं के यहां जाकर अपने राजा व राज्य का हित साधता है और राजाओं के साथ परस्पर वार्तालाप करके उनके मध्य संपर्क स्थापित करने का कार्य करता है ।यही कारण है कि कौटिल्य ने दूत को राजा के मुख की संज्ञा दी है। उनका विचार हैकि दूत रूपी मुख के द्वारा ही राजा लोग परस्पर वार्ता करते हैं। "दूतमुखा वै राजानत्वं चान्ये च।"[10]

दूतों का वर्गीकरण

कौटिल्य ने दूतो की योग्यता एवं अधिकारों के आधार पर इन्हें तीन कोटियों में विभाजित किया है –निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहार।[11]

दूतो के लिए निषेध एवं व्यवहार्य

दूतों की योग्यता, गुण, आचार–विचार एवं कर्तव्य पर भी कौटिल्य ने अपने ग्रंथ में विशद वर्णन किया है। दूतो की योग्यता के सम्बन्ध में कौटिल्य का मत है कि उन्हें उच्च कुलीन परिवार का विद्वान, मधुरभाषी, अपनी बात कहने में निपुण, स्वामीभक्त, तीक्ष्णबुद्धि वाला, वैदेशिक कूटनीति का मर्मज्ञ, जासूसी में प्रवीण, निर्भीक , संकेतों एवं मनोभावों को समझने वाला, उत्साही और ईमानदार होना चाहिए। साथ ही दूत को शत्रुराजा के द्वारा किए गए सम्मान पर गर्व नहीं करना चाहिए और शत्रुओं के मध्य रहते हुए स्वयं को बलवान नहीं समझना चाहिए। स्त्री– प्रसंग, मद्यपान से सर्वथा दूर एवं कुवाक्य को पी लेने की क्षमता होनी चाहिए।[12]

कौटिल्य ने दूत के आचार– विचार के विषय में कहां है कि– दूत को पर–राष्ट्र मेंबड़े ही शान–शौकत साथ ही रहना चाहिए ।साथ ही उसे मान, वाहन,अनुचर –परिचर ,एवम् उत्तम सामग्रीके साथ रहना चाहिए। पर–राज्य में रहते हुए उस राज्य के अटविपाल, पुर और राष्ट्र के प्रधान व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करना चाहिए।[13] पर– राज्य के राजा का आज्ञा प्राप्त कर ही उस राज्य में प्रवेश करना चाहिए।[14] अपने राजा का संदेश पर– राज्यके राजा के समक्ष यथावत् रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। प्राण बाधा उत्पन्न होने पर भी अपने राजा के संदेश को तनिक भी घटा–बढ़ाकर प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। कौटिल्य का मत है कि जब तकराज्य का राजा दूतको जाने की आज्ञा ना दे दे,[15] उसे वही निवास करना चाहिए और पर –राज्य के जनता के मध्य अपने बल का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।[16] कौटिल्य का यह भी कथन है कि "पर– राज्य में कोई व्यक्ति अप्रिय शब्द बोलताहैं तो प्रतिकार नहीं करना चाहिए। दूत के लिए नारी–गमन और मद्यपान का नितांत निषेध किया गया है। उसे अकेला ही सोना चाहिए, क्योंकि सुरा के मद में अथवा सोता हुआ मनुष्य अनावश्यक बोलने लगता है, जिससे रहस्य का उद्घाटन होता है।"[17] यदि पर–राजा दूत से उसके राजा अथवा उसके राज्य की प्रकृतियों के संबंध में भेद लेना चाहे तो उसे कुछ भी भेद नहीं देना चाहिए।[18]

दूत को अपने राजा की कार्य सिद्धि करने वाला वचन बोलना चाहिए। अपने स्वामी का संदेश बताते हुए यदि पर– राज्य का राजा क्रुद्ध हो जाए और उस दूतको बंदी बनाना चाहे, या उसका वध करने का विचार करें, तो दूत को पर– राज्य से भाग जाना चाहिए।[19]

दूत के अधिकार तथा कर्तव्य

दूत के अधिकार तथा कर्तव्य के संबंध में कौटिल्य का मत है कि ' दूत पर– राष्ट्र में अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। अतएव राजा जब पर राष्ट्र में अपने दूतको संदेश प्रेषण हेतु भेजें ,तब उसके धन–जीवन आदि का संक्षिप्त प्रबंध करें। उनका मत है कि शासनहर दूत से नदी पार करने का शुल्क नहीं लेना चाहिए तथा उसके अनुयायियों को असमय में घाट के अतिरिक्त नदी पार करने परदण्डित नहीं किया जाना चाहिए।[20] दूत के कर्तव्य का वर्णन करते हुए कौटिल्य कहते हैं कि" दूत का कार्य पर– राज्यों के शासको के समक्ष अपने स्वामी का संदेश को प्रस्तुत करना तथा पूर्व में की गई संधि के प्रणों (शर्तों) का पालन करवाना, तथा अपने स्वामी के प्रताप का प्रदर्शन करवाना, मित्र संग्रह करना, दण्ड की व्यवस्था करवाना, गुप्तचरोका ज्ञान प्राप्त करना, शत्रु और उसके मित्र में भेद उत्पन्न करवाना, पराक्रम का प्रयोग, सन्धि के रूप में मुक्त किए गए राजकुमारों आदि को मुक्त करना, तथा अपने कार्य सिद्धि के निमित्त मारण आदि प्रयोगो का आश्रय लेना दूत का कर्तव्य है।[21]

दूत की सुरक्षा के उपाय

कौटिल्य ने दूतों की सुरक्षा के भी नियम बताएं हैं। उनके अनुसार 'किसी भी दशा में दूतका बध नहीं किया जाना चाहिए'। अर्थशास्त्र में वर्णित है कि" दूतको अपने राजा के संदेश के अनुपालन में कटु अथवा मधुर शब्द कहनेका अधिकार है। दूत चाहे चाण्डाल ही क्यों ना हो, वह भी अबध्य है। राजा द्वारा शस्त्र उठाने पर भी दूतको यथोक्त बात ही कहना चाहिए।"[22] अपने उद्देश्य की पूर्ति होने के बाद दूत को अपने स्वदेश जाने की अनुमति माँग सकता है और उसे अनुमति मिल भी जाती है, परन्तु यदि किसी कारण दूत को आभास हो जाए कि उसके जान का यहां खतरा है, या उसके यहाँ रहने से उसके राज्यहित का नुकसान हो सकता है, तो वह बिना आज्ञा प्राप्त किया स्वदेश लौट सकता है।

निष्कर्ष

भारत में राजनीति की परम्पराप्रागैतिहासिक काल से लेकर कौटिलीय अर्थशास्त्र तक का सम्यक् विवेचनोपरान्त यह स्पष्ट होता है कि भारत की राजनय या राजनीति की अवधारणा बहुआयमी है। अतएव देश, काल तथा परिस्थिति के कारण बदलते हुए राजनय को एक निश्चित परिभाषा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है। देश तथा परिस्थिति के अनुसार प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक राजनयकी परिभाषा ,सीमा और अंग ही नहीं बदले, वरन् उनके नामों में भी अन्तर देखने को मिलता है। यथा– प्राचीन काल में राजनय के लिए दण्डनीति, रामायण काल में राजनीति एवं महाभारत काल में राजधर्म शब्द का प्रयोग किया गया हैं। इतना ही नहीं चंद्रगुप्त मौर्य के काल में महापंण्डित विष्णुगुप्त ने इसे अर्थशास्त्र नाम दिया। यद्दपि की इनके नाम में भिन्नता अवश्य दृष्टिगत होती है, किन्तु सब का अर्थनीति से ही है, अर्थात राजा या राज्य की वह नीति जिसके माध्यम से राज्य संचालन का कार्य सुचारू रूप से चलता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक समय में राजनय का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में जिस प्रकार प्रयोग किया जा रहा है, वह कौटिल्य के वैज्ञानिक राजतंत्र के सिद्धांत से प्रेरित है। कौटिल्य का मत था की प्रभुता के उत्कृष्ट गुणों, राजनय की समझ तथा मण्डलीय राज्यों के साथ लाभदायक व शांतिपूर्ण सम्बन्धो के आधार पर कोई भी बुद्धिमान शासक विश्वविजय के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

संदर्भ

1. *शरण, परमात्मा, 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं' पृ० 1*
2. *त्रिपाठी, श्रीप्रकाश मणि, 'राजशास्त्र की भारतीय परम्परा एवं अग्निपुराण', राज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ० 34*
3. *वही, पृ० 35*
4. *वही, पृ० 37*
5. *काणे. पी .वी. 'धर्मशास्त्र का इतिहास,' भाग–1, हिंदी साहित्य संस्थान लखनऊ, पृ० 11*
6. *कुमारी, सरिता 'भारतीय राजनीतिक चिंतकों का चिंतन', सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण–प्रथम, 2021, पृ० 15*

   त्रिपाठी, डॉ० दिनकर त्रिपाठी, कामन्दक एवं शुक्र का तुलनात्मक राजदर्शन, मंगलम् प्रकाशन, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण 2010, पृ० 6–8

7. *त्रिपाठी श्रीप्रकाश मणि, राजशास्त्र की भारतीय परंपरा एवं अग्निपुराण, राजपब्लिकेशंस, नई दिल्ली संस्करण–प्रथम, 2012, पृ० 50*
8. *वही, पृ० 51*
9. *वही, पृ० 53*
10. *त्रिपाठी श्रीप्रकाश मणि, प्राचीन भारतीय चिंतन धारा तथा मनु और कौटिल्य, प्रत्युष पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, संस्करण–प्रथम, 2015, पृ० 230*
11. *वही, पृ० 230*
12. *वही, पृ० 230*
13. *अर्थशास्त्र– 1/16/7*
14. *अर्थशास्त्र –1/16/10*
15. *अर्थशास्त्र–1/16/11, 12*
16. *अर्थशास्त्र–1/16/20, 21*
17. *अर्थशास्त्र–1/16/22, 23, 24, 25*
18. *अर्थशास्त्र–1/16/31*
19. *अर्थशास्त्र–1/16/33, 47*
20. *अर्थशास्त्र–अधिकरण–प्रथम, अध्याय–15*
21. *अर्थशास्त्र– अधिकरण–प्रथम, अध्याय–16/49, 50*
22. *अर्थशास्त्र–1/16/17*

Paper Received : 07 Jan., 2025 ***Paper Accepted : 18 Jan., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 115-121

जातीय संरचना में समकालीन रूपान्तरण

डॉ. राम चिरंजीव *

सारांश

समकालीन समाज परिवर्तन की के दौर से गुजर रहा है जहां सभी क्षेत्रों में परिवर्तन परिलक्षित होते है वही पर जाति व्यवस्था भी इससे अछूती नहीं है। भारत व्यक्तियों का देश नहीं बल्कि जतियों का देश हैं जहाँ पर व्यक्ति को सदियों से अपना परिचय बताने के लिए जाति बताना जरूरी होता था जब तक व्यक्ति अपनी जाति नहीं बताता है लगता है उसका परिचय अभी पूर्ण हुआ ही नहीं। प्रत्येक समाज में जातीय संस्तरण पाया जाता है सामाजिक संरचना में जाति व्यवस्था एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती थी सामाजिक संरचना में जाति न केवल उच्चता एवं निम्नता का संतरण तथा सामाजिक दूरी का निर्धारण करती है अपितु सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती है। जाति के आधार पर ही उसकी स्थिति का मूल्यांकन किया जाता रहा है। किसी को जाति के आधार पर उच्च स्थान और विशेषाधिकार प्राप्त थे तो किसी को निम्न स्थान व अधिकारों से वंचित रख दिया गया था । सम्पूर्ण सामाजिक संरचना का ताना–बाना जाति व्यवस्था पर आधारित था, जाति सामाजिक व्यवस्था के मूल थी। कार्य, व्यवसाय, स्थान, संपत्ति, शिक्षा, संबंध, विवाह, सार्वजनिक वस्तुओं का उपायोग यहाँ तक कि दंड का प्राविधान भी जाति पर आधारित था जाति के आधार व्यक्ति को दंड दिया जाता था। सम्पूर्ण व्यवस्था जाति के आधार पर बंद व्यवस्था थी। समय बितता गया लोगों में जातिवाद की भावना विकसित होने लगी लोग अपनी ही जाति के लोगो के हितों को सर्वोपरि समझने लगे। जिससे लोगों में द्वेष घृणा और संघर्ष की भावना प्रबल होती गई जातीय हितों के प्रति लोगों का झुकाव बढ़ा और समाज के हित प्रति उदासीनता की भावना बलवती हो गई। धीरे धीरे सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था में परिवर्तन देखने को मिलता है। शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात के साधन, सामाजिक चेतना का विकास, संविधान आदि के परिणाम स्वरूप जातीय संरचना में रूपान्तरण हुआ। आज व्यक्ति की पहचान जन्म नहीं कर्म हो गए बंद व्यवस्था के स्थान पर खुली व्यवस्था अब देखने को मिलती है और अब धीरे–धीरे समाज में जातीय संरचना में रूपान्तरण की प्रक्रिया परिलक्षित होती हैं।

मूल शब्द *– जाति, कार्य, व्यवसाय, वर्ण व्यवस्था*

प्रस्तावना

जाति शब्द का प्रयोग करते ही एक एक वर्ग विशेष का मानचित्र मस्तिष्क में बनने लगता है वह चित्र चाहे सामाजिक संस्तरण का हो या

* *असिस्टेंट प्रोफेसर (समाजशास्त्र), सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज*

हैसियत का, समानता का हो या असमानता का, अधिकार का हो या वंचना का,विवाह हो या व्यवसाय, कर्मकांड हो या पाखंड का, दंड का हो मुक्ति का सब की चर्चा होते ही जातीय संरचना का ताना बना मन मस्तिष्क में बनने लगता है। सम्पूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन विधि ही जातीय बंधनों में जकड़ी रही है। सी.एच. कूले (1909) ने जाति पर कहा है कि "जब एक वर्ग पूर्णतः आनुवंशिकता पर आधारित होता है तब उसे जाति कहते है।"[1] इस बात से यह स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था में कोई परिवर्तन के अवसर नहीं दिखाई दे रहें थे ,जाति का पूर्णतः आनुवंशिकता पर आधारित होना एक तरह से बंद समाजिक व्यवस्था का सूचक है । जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित होती रही है जिसमें खान–पान, विवाह, व्यवसाय, सामाजिक रहन–सहन और तमाम सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से संबन्धित प्रतिबंध पाये जाते थे । जी. एस. घूर्ये के ही शब्दों में – "इन अध्येताओं के कठिन परिश्रम के बावजूद हमारे पास जाति की कोई वास्तविक सामान्य परिभाषा नहीं है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि परिभाषा गढ़ने के हर प्रयत्न का, विषय की जटिलता के कारण असफल होना निश्चित है।"[2] यहाँ घूर्ये द्वारा दी गई जाति की विशेषतायें जो इस प्रकार है – समाज का खंडात्मक विभाजन, पदानुक्रम, भोजन तथा सामाजिक सहवास पर प्रतिबंध, नागरिक एवं धार्मिक निर्योग्यतायें एवं विशेषाधिकार, पेशे की स्वतंत्र चुनाव की आजादी पर प्रतिबंध और विवाह संबंधी प्रतिबंध। आदि विशेषताओं के आधार पर हम जाति की परंपरागत और वर्तमान स्थिति को आसानी से समझ सकतें है।

जाति के उत्पत्ति कारण

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के आधार पर ही समाज चार वर्ण ब्राह्मण, क्षतीय, वैश्य और शूद्र में बट गया और उनके जन्म के आधार पर ही उनके कार्यो का बटवारा कर दिया और लोग इसका पालन बिना किसी तर्क के करते रहे है । वर्णों की उत्पत्ति के बारे में अनेक सिद्धान्त दिये दिये गये लेकिन किसी ने कर्म को मुख्य नहीं माना सब ने जन्म को ही प्रमुखता दी है चाहे वह ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की बात हो, उपनिषदों की, महाभारत के शांति पर्व की बात हो या मनुस्मृति की। हा यहाँ भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश हुये कहा है कि "चातुर्वर्ण्यम मया सृष्टम गुणकर्मविभागशः" वर्ण व्यवस्था धीरे धीरे जाति व्यवस्था का रूप ले ली और यहाँ भी गुण कर्म आधार पर नहीं जाति के आधार पर लोगों के कार्य एवं व्यवहार निश्चित हो गये। लेकिन वर्ण व्यवस्था से पूर्णतः आच्छादित जाति व्यवस्था यह मनाने के लिए तैयार नहीं हुई की गुण कर्म जाति के आधार है चूँकि गुण कर्म के आधार पर विभाजन मान लेने से उच्च वर्ण के

लोगों का हित प्रभावित होता था और बहुपठित होने के कारण और जातीय सोपान में उच्च स्थान के कारण वे जाति व्यवस्था में परिवर्तन को मुनासिब नहीं मानते है। एस.सी. दूबे ने लिखा है कि "युवा पीढ़ी को अपने ऊपर थोपे गए आनुष्ठानिक प्रथाओं के मापदंडो का पालन करने में कठिनाई होती है लेकिन उनका एक वर्ग अपनी उच्च अनुष्ठानिक प्रस्थिति की प्रिय स्मृतियो अब भी संजोये हुये है।"[3] तमाम ऐसी स्थितियां बनती रही जिससे जातीय भावना बलवती हुई। जाति उत्पत्ति के संदर्भ में बहुत सारे विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए है। लेकिन कहीं भी किसी ने जाति को स्वतंत्र नहीं पाया।

जाति व्यवस्था के परिणाम

जाति व्यवस्था के परिणामस्वरूप प्रतिभा का क्षरण एवं अपमान होता रहा है जैसा कि मजूमदार व मदान ने जाति को परिभाषित करते हुये कहा कि "जाति एक बंद वर्ग है'' (Caste is a closed class-)[4]। एक ऐसी व्यवस्था जो जन्म के आधार पर व्यक्तियों की स्थिति एवं व्यवसाय का निर्धारण होता रहा है जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं था परिणामस्वरूप व्यक्ति प्रतिभावान होते हुये भी उसे पूर्व निर्धारित जातिगत व्यवसाय करना पड़ता रहा जिससे प्रतिभा का अपमान होता रहा है। राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर ने जाति के आधार पर किस प्रकार से एक व्यक्ति को अपमानित होना पड़ा है, इसका सटीक वर्णन स'रश्मिरथी' में लिखते है –

अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन,
नाम–धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति के हो कौन ?
जाति !हाय री जाति ! कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की और देख वह वीर क्रोध से बोला ।
'जाति दृजाति रटते जिनकी पूँजी केवल पाखंड,
मै क्या जानूँ जाति ? जाति है ये मेरे भुजदंड ।
ऊपर सिर पर कनक दृछत्र, भीतर काले के काले,
शरमाते हैं नहीं जगत में जाति पूछने वाले ।
मस्तक ऊँचा किए, जाति का नाम लिए चलते हो,
पर, अधर्ममय शोषण के बल से सुख में पलते हो ।
अधम जातियों से थर दृथर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से माँग लिया करते हो अंगूठे का दान ।[5]

ऐसे तमाम उदाहरण इतिहास में देखने को मिलेंगे जहां उच्चता एवं निम्नता का मापदंड जाति थी जिससे व्यक्ति सम्मानित और अपमानित होता रहा हैं। शिक्षा का अभाव जाति व्यवस्था का ही दुष्परिणाम है जातिव्यवस्था के कारण

कुछ वर्ग को शिक्षा के अधिकार जन्म से ही प्राप्त होते थे तो कुछ को जाति के आधार पर उसको वंचित रखा जाता रहा है परिणामस्वरूप शिक्षा में कमी आयी जो आज के समाज के पिछड़ेपन के साथ ही साथ तमाम बुराइयों की जड़ भी है। जाति व्यवस्था सामाजिक असमानता की जननी है । जाति व्यवस्था में रूपान्तरण – समय के साथ साथ जातीय व्यवसाय, आर्थिक स्थिति, धार्मिक क्रिया, संस्कृति, शिक्षा, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति में धीरे धीरे रूपान्तरण हो रहा है। जातीय निर्धारकों में परिवर्तन होने से जातीय स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा है, आज व्यवसाय, विवाह,सामाजिक संबंधों में परिवर्तन हो रहे है। इन सब पर सामाजिक प्रतिबंध हुआ करता था लेकिन अब ऐसा नहीं है। जाति हो या जातिवाद आज एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष लोकतन्त्र के लिए खतरा है।

जाति व्यवस्था में रूपान्तरण के कारण

जाति व्यवस्था में रूपान्तरण हेतु समय समय पर अनेक प्रयत्न होते रहें हैं। जाति को ऊंचा उठाने की महत्वाकांक्षा जाति रूपान्तरण का प्रमुख कारण रही है है ,आज निम्नजातीय समूह के लोगों के अंदर अपनी स्थिति से ऊपर उठाने की इच्छा और महत्वाकांक्षा बलवती होती गई और जाति में रूपान्तरण की प्रक्रिया भी होती गई। जाति के आधार पर लोगों का अपमान करना और निम्न समझना आम धारणा बन गई थी जिससे निम्न जतियों के प्रति हिंसा, का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण भी होता रहा। जतियों का एक दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करने का प्रयास आश्चर्य नहीं वरन एक ऐसी परिवर्तनशील व्यवस्था की उपज है जिससे निम्न जातीय समूह के लोगों में चेतना के परिणाम स्वरूप जाति स्थिति में रूपान्तरण हुआ। भारत का संबिधान दृभारतीय संविधान ने सामाजिक परिवर्तन लाने महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिससे जातीय रूपान्तरण को गति मिली है सदियों यह हमारा समाज जातीय बंधनों में बंधा रहा इसके लाभ चाहे हो या न हो परंपरागत तरीके से चली आ रही व्यवस्था को मानना लोगों की मजबूरी बन गई थी। जब भारत का सविधान बना तब उसमें सभी जातीयों के मौलिक अधिकार निहित कर दिये गये कि अब कोई किसी को जन्म के आधार पर उसे निर्योग्य घोषित नहीं कर सकता न ही उसे उनके मौलिक अधिकारों से ही वंचित कर सकता है। डॉ0 डी0डी0 वसु ने लिखा है कि ”संविधान निर्माताओं ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए और समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक न्याय की प्राप्ति के लिए मूल अधिकार अंगीकार किए।”[6] भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकारों ने एक समानता का सृजन किया और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करने मदद की। भारतीय संविधान के भाग

तीन में, अनुच्छेद 12 से 35 में मूल अधियाकरों की विस्तार से चर्चा की गई है। संविधान के अनुच्छेद 17 में "अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। 'अस्पृश्यता 'से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा और जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा। भारतीय संविधान ने कमजोर वर्गों के लिए एक संजीवनी का कार्य किया । सुधारवादी आंदोलन – जाति व्यवस्था के आधार पर एक गैर बराबरी के समाज का उदय हुआ और संपत्ति, शक्ति और प्रतिष्ठा का निर्धारण भी जाति ही रही है । देश के विभिन्न भागों में गैर बराबरी की बिरोध में आवाज मुखर हुई और सामाजिक बराबरी की बराबरी की माँग की आवाज बुलंद हुई परिणामस्वरूप जातीय संरचना में रूपान्तरण हुआ । सुधारवादी नेतृत्व और क्रांतिकारी कवियों का जाति व्यवस्था के प्रति आक्रोश का जन सामान्य पर गहरा प्रभाव पड़ा और रूपान्तरण की गति तीव्र हुई और लोगों को आत्मसम्मान के लिए प्रेरित भी किया। जातियाँ प्रकार्यात्मक रूप से संबन्धित रही है जो आर्थिक जीवन की केंद्र में थी ।प्रकार्यात्मक रूप संबन्धित होने के साथ ही साथ सामाजिक दूरी और उच्चता एवं निम्नता की भावना भी प्रबल होती थी। समय के साथ परिवर्तन हुआ वस्तु विनिमय का स्थान मुद्रा ने तथा उत्पादन का स्थान उद्योगों ने ले लिया जिससे जातीय संरचना में तीव्र परिवर्तन हुआ। सामाजिक विधान भी जातीय संरचना को परिवर्तित करने में मददगार साबित हुये है। ए.आर. देसाई ने लिखा है कि "वर्तमान सामाजिक दृआर्थिक संरचना भी जातिगत अधिकारों की अपेक्षा स्वतंत्र तथा समान व्यक्तियों के मध्य अनुबंध पर आधारित है। जातिगत स्थिति के स्थान पर व्यक्तिगत अनुबंध ही आज समस्त अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का आधार है।"[7]

पाश्चात्य शिक्षा – पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली ने जातीय रूपान्तरण को तीव्र गति प्रदान की जो बिना किसी भेद भाव के सबको समान शिक्षा व्यवस्था लागू की। जब लोगों में शिक्षा का विकास हुआ तो सभी जाति के लोग तर्कपूर्ण जीवन और मानवतावादी जीवन का महत्व दिया और जातीय बंधन टूट गये और लोगों को एक नए जीवन की अनुभूति होने लगी। यातायात व संचार के साधन–यातायात व संचार के साधनों ने जातीय रूपान्तरण में क्रांति ला दी लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने लगे संचार के साधन ने व्यक्ति को परिवर्तित होने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान किया। तीर्थ स्थान एवं मठ– एम.एन. श्रीनिवास (2002)ने लिखा है कि "तीर्थ–स्थान और मठ भी संस्कृतीकरण के स्त्रोत थे। प्रतयेक तीर्थ–स्थान का अपना भीतरी प्रदेश होता था; विख्यात तीर्थ–केंद्र भारत भर के यात्रियों को आकर्षित करते थे, और छोटे–छोटे तीर्थ–स्थान आस–पास के गांवों पर निर्भर रहते थे। भारत–व्यापी प्रभाव के

तीर्थ–स्थानों में भी किसी एक या कुछ एक क्षेत्रों के ही तीर्थ–यात्री अधिक आते थे, देश के हर भाग से समान रूप में नहीं। किन्तु छोटे क्षेत्र के तीर्थ–स्थानों में संभवतः कुछ विशेष जातियो अथवा गावों के तीर्थ–यात्री अधिक आते थे, सबके नहीं ऐसे सीमित करने वाले तत्वों के बावजूद, तीर्थ स्थान अथवा मठ का प्रभाव उसके भीतरी क्षेत्र में रहने वाले हर व्यक्ति कि जीवन पद्धति पर पड़ता था।"[8] भारतीय विधताओं की खूबसूरती यह है कि इनमें असमानताओं के साथ ही साथ समानता एवं मानवता की धर्मस्थली भी है जहां पर सभी को समभाव देखने की संस्कृति भी पायी जाती है। विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक आयोजन भारत की पवित्र भूमि तीर्थराज प्रयाग में लगता है जहां सब सारे भेद को भूलकर लोग माँ गंगा दृयमुना और अदृश्य सरस्वती के पावन संगम में डुबकी लगाकर अपने जीवन को धन्य करते है और समवेत संस्कृति का पालन करके विश्व को मानवता एवं समानता का संदेश देते है। यह आयोजन भारत की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना का महाकुंभ है । 2025 महाकुम्भ का आयोजन इस बात का साक्षी है कि भारत ही नहीं विश्वभर के लोग तीर्थ राज प्रयागराज में आए और बिना किसी विभेद के सब पवित्र संगम में स्नान कर समानता का संदेश विश्व को दिये । इस प्रकार से तीर्थ स्थान व मठ से जातीय विभेद को दूर किए । जिसमें कहा गया "महाकुंभ का अटल संदेश एक हो पूरा देश"। 'महाकुंभ' भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता का प्रतिनिधित्व भी करता है जिसमें सभी लोग एक स्थान पर एकत्रित होकर एकत्व की भावना विकसित होती है । लोकतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था ने भी जातीय उत्थान हेतु कार्य कर रहे है । कुछ जातीय संगठन जातिवाद को बढ़ावा दे कर लोकत्रन्त के खतरा भी पैदा कर रहें तो कुछ जातीय हितों के लिए भी कर रहे है। अब जाति के अंदर ही अंदर उपजाति जन्म ले है जो एक नई समस्या पैदा कर रही है। एस .सी. दूबे ने लिखा है कि "समाकालीन भारतीय समाज इस समय एक अजीब स्थिति में है वह आधुनिकता और परंपरा दो विरोधी सिरों की और खीचा जा रहा है परंपरा और आधुनिकता दोनों उसे अपनी अपनी और विपरीत दिशाओं में खींच रही है उनकी मुठभेड़ से कुछ अजीबोगरीब नतीजे सामने आए है। देश ने एक तरफ लोकत्रन्त, समानतावाद,धर्म निरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय की विचारधारा स्वीकार की है और उसे प्रोन्नत कर रहा है, दूसरी और आदिकालीन निष्ठाएं अब भी कायम है।"[9]

निष्कर्ष – हम विश्व की संस्कृतियों का अध्ययन करें तो पाएगें कि एक मात्र भारतीय संस्कृति ही एक ऐसी संस्कृति है जिसमें निरंतरता एवं

परिवर्तन की प्रक्रिया साथ–साथ चलती है विश्व की न जाने कितनी संस्कृतियाँ विलुप्त हो गई जिसका अवशेष अब हम खंडहरों में खोजते है । भारतीय संस्कृति की जो सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है वह है परिवर्तन को अपने समाहित करने की क्षमता जो हमेशा नए विचारों का सम्मान करके पुराने विचारों एवं अवधारणाओं को रूपनांतरित करके उसे नए कलेवर में प्रस्तुत करती है। समकालीन आवश्यकता अपने अनुरूप संकृतियों में लचीलापन लाती तो है लेकिन अपने मूल को नहीं छोड़ती है बल्कि उसका रूपनांतरण करती है। जाति व्यवस्था भी भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण भाग है जिसमें रूपान्तरण की प्रक्रिया सतत प्रवाहमान है जो रूढ़ियाँ और बुराइयाँ थी वह अब धीरे धीरे समाप्त हो रही है ,जाति के प्रति हीनता की भावना कमजोर हुई है, जातीय हिंसा, घ्रीणा और उपेक्षा की भावना समाप्त हो रही है । और धीरे धीरे समाज में जातीय संरचना में रूपनांतरण की स्थिति परिलक्षित हो रही है ।

संदर्भ

1. *सिंह,जे.पी., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन ,21वीं सदी में भारत,द्वितीय संस्करण 2019, पेज 125, पी एच आइ लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली 110092; कूले, सी. एच. सोशल ओर्गेनाइजेसन ,चार्ल्स चार्ल्स स्क्रिबनरस संस न्यूयार्क 1909 पेज 11*
2. *सिंह ,जे.पी., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन ,21वीं सदी में भारत,द्वितीय संस्करण 2019, पेज 126, पी एच आइ लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली 110092; घुर्ये ,जी .एस.,कास्ट एंड रेस इन इंडिया , पापुलर प्रकाशन बॉम्बे 1969*
3. *दूबे, एस.सी., भारतीय समाज, तृतीय संस्करण (वन्दना मिश्र, अनुवादक) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए 5 ग्रीन पार्क नई दिल्ली, 2005*
4. *गुप्ता, एम एल एंड शर्मा, डी .डी., साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा पेज 83, मजूमदार एंड मदन, ऐन इंट्रोंडाक्सन टू सोशल एंथ्रोपोलोजी, 2009*
5. *दिनकर, रामधारी सिंह, 'रश्मीराथी' लोक भारती प्रकाशन, 15–ए महात्मागांधी मार्ग इलाहाबाद, 2019*
6. *वसु, दुर्गादास, भारत का संविधान एक परिचय,पेज 115, 2013*
7. *देसाई ए.आर., भारतीय ग्रामीण – समाजशास्त्र (हरिकृष्ण रावत, अनुवादक) रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1977*
8. *श्रीनिवास, एम. एन., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पेज 33, छठा संस्करण, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि .नई दिल्ली, 2002*
9. *दूबे, एस. सी., भारतीय समाज, तृतीय संस्करण (वन्दना मिश्र, अनुवादक), पेज 56 नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए 5 ग्रीन पार्क नई दिल्ली, 2005*

Paper Received : 15 Dec., 2024 ***Paper Accepted : 05 Jan., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 122-126

भारतीय शिक्षा आयोगों तथा नीतियों के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत भाषा शिक्षण की अवस्थिति

डॉ. प्रमा द्विवेदी *

सारांश

संस्कृत भारत की सांस्कृतिक भाषा है। भारत के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक भौगोलिक, वैज्ञानिक और नैतिक वृत्तान्त को सम्मुख लाने में संस्कृत भाषा ही समर्थ है। अतः संस्कृत भाषा में संरक्षित भारतीय मनीषा को जानने, उसे जीवन्त रखने और व्यवहार में लाने के लिए संस्कृत भाषा को जन–जन तक सुगम बनाने की आवश्यकता है। 19वीं सदी के आरम्भ से ही संस्कृत भाषा को संरक्षित करने का प्रयास किया जाने लगा और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस कार्य को गतिशीलता मिली। तत्कालीन सरकारों ने संस्कृत भाषा को लोकोन्मुखी बनाने के अनेक उपायों पर विचार–विमर्श करने हेतु संस्कृत आयोग एवं अन्यान्य आयोगों का गठन किया। नवीनतम राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 तक संस्कृत भाषा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए पाठ्यक्रम में समुचित स्थान दिया गया है।

मूल शब्द *– भारतीय मनीषा, जीवन्त, सुगम, संरक्षित, लोकोन्मुखी, शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति।*

प्रस्तावना

तपस्वी ऋषियों के गहन चिन्तन को समाहित करने वाली संस्कृत भाषा से ही भारत राष्ट्र विश्व में अप्रतिम स्थान रखता है। अपने इस वैशिष्ट्य को सहेजने का कार्य और अधिक सुदृढ़ तब हुआ जब हमारे देश को राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त हुई। जनता में ज्ञान–विज्ञान के अक्षय भण्डार से परिपूर्ण, परिष्कृत वाग् संस्कृत भाषा और उस साहित्य के उत्थान के प्रति जागृत हुई। फलतः संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार से सम्बन्धित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संस्थानों व संगठनों का गठन होने लगा अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन, संस्कृत साहित्य सम्मेलन, अन्ताराष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय दर्शन सम्मेलन, भारतीय भाषा समिति आदि अनेक सार्वजनिक संस्थाएं तत्कालीन समय में संस्कृत भाषा को पुनर्स्थापित करने हेतु संज्ञान में आईं।[1] जो कालान्तर में विभिन्न आयोगों की नीतियों के माध्यम से सम्प्रति अपने गौरवमयी स्थिति को बनाए रखने में समर्थ है।

---

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कालेज, प्रयागराज*

संस्कृत आयोग के गठन की पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता आंदोलन के समय में आम जनमानस में यह दृढ़ विश्वास था कि अपने राष्ट्र को क्षेत्रवाद, भाषावाद व नस्लवाद से मुक्त कर संपूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में जोड़ने की क्षमता संस्कृत भाषा में ही है।

11 सितम्बर, 1949 को बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर ने संस्कृत को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने हेतु संसद ने अपने विचार व्यक्त किये, जिसे आगे बढ़ाने का कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 19 वीं सदी के अन्तिम दशक में आरम्भ की। वस्तुतः सम्पूर्ण भारतेन्दु मण्डल एकमात्र संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का पक्षपाती था और देवनागरी को एकमात्र अपनी लिपि समझता था[2] इस सन्दर्भ में संस्कृत आयोग के प्रतिवेदन (1956–57) का उल्लेख करना आवश्यक है, जिसमें लिखा है "हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव पारित करने में संविधान परिषद् को विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ा और राजभाषा का यह महत्वपूर्ण प्रस्ताव थोड़े ही बहुमत से पारित हो सका। अत्यन्त उत्तेजना और तनावपूर्ण वातावरण में यह विवाद कई दिनों तक चलता रहा और निर्णयों की क्रिया स्तब्ध सी बनी रही। इस कार्यावरोध को दूर करने के लिये कुछ सदस्यों यर सुझाव रखा कि संस्कृत को राष्ट्रभाषा बना दिया जाय। इस अवसर पर डॉ. अम्बेडकर, जो इसके प्रस्तावक थे, उन्होंने भी इस सुझाव का समर्थन किया था।[3]

संस्कृत भाषा में निहित वैज्ञानिक और भाषिक वैशिष्ट्य योरोपीय विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र रही। जैसा कि ए. फ्रेजर ने कहा है कि– The acquisition of Sanskrit is indispensable not only for the study of the classical books composed in the language but principally as the mother language of the great number of Indian dialects it is true and obvious that a true and radical reform of a nation in learning and morality 1/4 which is the object of the good government 1/2 will begin and proceed with the improvement of their own national language in this respect the study of national language in this respect the study of Sanskrit cannot be sufficiently encouraged.[4]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उच्च शिक्षा में सुधार हेतु डॉ. राधाकृष्णन् के नेतृत्व में 1948–49 ने विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1952–53 में माध्यमिक कक्षाओं में सुधार हेतु मुदालियर आयोग तथा 1955 में श्री बी. जी. खेर के नेतृत्व में गठित राजभाषा आयोग इन तीनों ने ही अपनी रिपोर्ट में संस्कृत भाषा के प्रति सकारात्मक विचार व्यक्त किये। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने इस भाषा की व्यापकता और वैज्ञानिकता को रेखांकित करते हुए इस भाषा में अनुसंधान की व्यापक संभावना पर प्रकाश डालते हुए इसे छात्रों के अनुकूल बनाने का आग्रह किया। ललित कला तथा उससे सम्बद्ध शोध के विषय में

इस आयोग ने एक रुचिकर बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि गायन के क्षेत्र में हमें सामगान का अध्ययन करना चाहिए। साहित्यिक और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध संस्कृत भाषा हम भारतीयों का सांस्कृतिक उत्तराधिकार है तथा इसमें शोध की प्रबल सम्भावना है। इसी प्रकार मुदालियर आयोग ने भी इस बात पर बल दिया कि यदि कोई छात्र देवभाषा संस्कृत को पढ़ने का इच्छुक है तो उसे सरकार को यथासम्भव सहायता देनी चाहिए। साथ ही इस भाषा के शिक्षण विधि को सरलतम बनाकर छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए। राजभाषा आयोग ने भी संस्कृत भाषा के वैशिष्ट्य को स्वीकार किया और माना कि इस पर कार्य करने की अपार संभावनाएँ हैं। वर्तमान में प्रचलित प्रादेशिक भाषाएं संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित हैं।

संस्कृत आयोग के प्रतिवेदन

1956–57 में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में संस्कृत आयोग का गठन किया गया जिसने अपना प्रतिवेदन नवम्बर, 1957 को प्रस्तुत किया। आयोग के सुझाव के फलस्वरूप 1959 में भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड की नियुक्ति की गई, जो सरकार को संस्कृत के प्रचार–प्रसार संबंधी विषयों पर परामर्श दे सके। सुझाव निम्नवत हैं–

1. कक्षा 1 से 6 तक के छात्रों को संस्कृत भाषा के नीतिवाक्यों, सुभाषितों से अवगत कराने का प्रस्ताव।
2. संस्कृत सम्मेलनों, संस्थाओं तथा पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देने की योजना।
3. बारह संस्कृत पत्रिकाओं के स्तर में सुधार हेतु अनुदान।
4. पारम्परिक संस्कृत पाठशालाओं के स्नातकों को शोध छात्रवृत्ति देने की योजना।
5. लोकप्रिय, दुर्लभ एवं दुष्प्राप्य संस्कृत ग्रन्थों के मुद्रण एवं प्रकाशन की योजना।
6. संस्कृत अध्यापकों के प्रशिक्षण एवं उनकी अध्यापन शैली में सुधार हेतु प्रयास।
7. शोध हेतु तिरुपति में केन्द्रीय संस्कृत संस्थान की स्थापना।

संस्कृत बोर्ड के सुझाव पर शिक्षा मंत्रालय ने संस्कृत विद्वानों के राष्ट्रीय रजिस्टर तैयार करने का निश्चय किया और संस्कृत के लिए तृतीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित 75 लाख की राशि अगले वित्तवर्ष में 5 करोड़ हो गई।[6]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जितने भी शिक्षा आयोगों का वर्णन किया गया सभी ने संस्कृत भाषा के महत्त्व को स्वीकार किया। और साथ

ही इसकी मौलिकता को बनाए रखने हेतु शिक्षण विधियों में सामान्य परिवर्तन के साथ विषय के रूप में शिक्षण करने का भी विचार व्यक्त किया। यहाँ तक कि संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने तक का प्रस्ताव भी दिया गया—

गिरं संस्कृतं राजकीयां च वाणीं समभ्यस्य लोकद्वयस्यापि सौख्यम्
वशे स्थापयध्वं स्वधर्मं स्वदेशं तथा प्रापयध्वं पुनर्गौरवं तत्।[7]

शिक्षा आयोग (1964—1966)

प्रो. डी. एस. कोठारी जी शिक्षा आयोग के अध्यक्ष थे। इसमें प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा माध्यमिक स्तर पर त्रिस्तरीय भाषा का प्रावधान प्रत्यावेदित किया गया। साथ ही संस्कृत को एक शास्त्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया गया।[8]

प्रथम शिक्षा नीति (1958) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)

इसमें कोठारी आयोग के त्रिभाषा सूत्र की नीति को यथावत् अनुमोदित किया गया। बच्चों के संज्ञानात्मक अधिगम में वृद्धि के लिए सभी भाषाओं को समान महत्त्व दिया गया।[9]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020)

के. कस्तूरीरङ्गन जी की अध्यक्षता में निर्मित राष्ट्रीय शिक्षा नीति विविध शैक्षिक परामर्शों के साथ प्रस्तुत की गई। इसमें संस्कृत भाषा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण तथा विकास के अवसर परिलक्षित होते हैं। इसमें यह सुझाव दिया गया कि भारत की सांस्कृतिक एकता, इतिहास की समीक्षा और छात्रों के नैतिक विकास के लिए संस्कृत भाषा की आवश्यकता है। संस्कृत को मुख्य धारा में लाने के लिए 'त्रिभाषा सूत्र' को अपनाने का सुझाव दिया गया। गतिविधिपरक, रोचक पाठ्यचर्या तथा अद्यतन अवधारणाओं से युक्त संस्कृत भाषा शिक्षण भारतीय ज्ञान परंपरा को संरक्षित एवं सम्वर्द्धित करने में सहायक होगी।[10]

निष्कर्ष

विविध शिक्षा आयोगों एवं नीतियों में संस्कृत विषयक परामर्शों के ऐतिहासिक समालोचन से यह ज्ञात होता है कि प्रायः सभी ने संस्कृत के महत्त्व को स्वीकार किया है। और पाठ्यचर्चा में कहीं न कहीं संस्कृत की उपस्थिति सर्वत्र स्वीकार की गई है। यद्यपि भाषा उदरपूर्ति का उत्तम साधन तो नहीं परन्तु आत्मपरिचय हेतु उत्कृष्ट माध्यम है। संस्कृत भाषा में निहित 'भारतीय ज्ञान परंपरा' लोक के सर्वांगीण विकास में पाठ्यक्रम में अपनी अनिवार्य उपस्थिति के द्वारा ही सहायक हो सकेगी।

सन्दर्भ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रो. हंसराज अग्रवाल, चतुर्थ संस्करण की भूमिका, पृ. 16
2. राष्ट्रभाषा का इतिहास, आचार्य पं. किशोरीदास जी वाजपेयी, पृ. 14
3. संस्कृत आयोग का प्रतिवेदन, दशम अध्याय, पृ. 249–250
4. *Report of the Sanskrit Commission Chapt-II Historical Retrospect, p.18*
5. *Report of the Sanskrit Commission Chapt-I Introduction, p. 3*
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रो. हंसराज अग्रवाल, चतुर्थ संस्करण, पृ. 17
7. प्रकीर्ण प्रबन्ध खण्ड–1, आचार्य रामावतार शर्मा, भारतगीतिका श्लोक सं.–05
8. भारतीय शिक्षा के आयोग, पी–डी– पाठक, एस. डी– त्यागी (2009) श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आ गया
9. *https://www.pw.live/exams/teaching/nationalpolicy-on education-1986/*
10. *https://www.adda247.com/teaching–jobs-exam/national-education-policy-nep-2020–focus–on-sanskrit-language/*

Paper Received : 07 Jan., 2025 **_Paper Accepted : 18 Jan., 2025_**

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 127-133

रीति काव्य एवं चित्रकला का समन्वय

*डॉ० शशि कुमार मिश्र **

सारांश

मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में 15वीं शदी ई० का समय अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। राजनीतिक उथल–पुथल के बावजूद साहित्य और कला के विभिन्न अंगों के निर्माण तथा विकास के लिए इस युग में जो कार्य हुए, उनका ऐतिहासिक महत्व है। हिन्दी साहित्य के प्रायः समस्त रीति–ग्रन्थ इसी युग में लिखे गये। इस युग के साहित्यप्रेमी और कलानुरागी विशेष रूप से कवियों और कलाकारों ने रीति काव्य और चित्रकला के रूप में नये युग के सूत्र पात्र किये अध्ययन अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विवेच्य काल में रीति–काव्य एवं चित्रकला का समन्च्य युग कहा जाय तो अतिश्योकित नहीं होगा। राजपूत शैली का निर्माण यद्यपि राजस्थान की धरती में हुआ, किन्तु धीरे–धीरे उसका विस्तार मध्य प्रदेश, पंजाब और हिमांचल प्रदेश जैसे दूरांचलों में हो गया। भारत के विभिन्न अवलों में बिखरे हुए राजपूत राजाओं ने राजपूत शैली की प्रश्रय देने में अपना गौरव समझा। इस प्रकार राजपूत शैली ने स्थानीय संस्कारों और रीति–रिवाजों के अनुकूल विभिन्न शाखाओं में अपना विकास किया। राजपूत शैली की जिन प्रमुख शाखाओं का नाम अधिक लिया जाता है उनमें ग्वालियर अम्बर, गेवाड़, बीकानेर, जयपुर, किशनगढ़ और कोटा–बूँदी उल्लेखनीय है। इस स्थानीय शाखाओं का अपना अलग–अलग महत्व और इतिहास है।

रीतिकाल का रचनाकाल इतिहास का वह कालखण्ड है जिसमें संगीत, चित्र, मूर्ति एवं भवन–निर्माण–कला उन्नति की अपनी पराकाष्ठा पर थी। संगीत सम्राट तानसेन, गुगलकालीन चित्रकारों तथा मूर्तिकारों को तो इस कालखण्ड ने जन्म दिया ही, समन्वयवादी धार्मिक भावना तथा उदारवादी दृष्टिकोण ने भारतीय साहित्य, कला एवं संस्कृति में एक अद्भुत मोड उपस्थित किया। ब्रज के समीप आगरे में राजधानी के आ जाने से साहित्य और कला के विकास में और भी अधिक सहायता मिली। रीतिकालीन काव्य के माध्यम से संस्कृत साहित्य में प्राप्त भारतीय संस्कृति एवं पौराणिक परम्परा के बीज को सुरक्षित रखा गया, अन्यथा वे आसन्न कुसमस में ही नष्ठ हो जाते। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने अवश्य ही रीतिकाल की सीमा 1643 से 1800 स्वीकार की है। क्योंकि संवत् 1600 के आसपास कृपाराम की हिततरंगिणी आदि रचनाएँ श्रृंगार एवं नायिका भेद के ग्रंथ हैं। इसके पश्चात् अकबर के दरबारी कवि करनेस ने कर्णाभरण, श्रुतिभूषण एवं भूपभूषण आदि ग्रन्थों के माध्यम से इस परम्परा को विकसित किया। इसी प्रकार सं० 1700 से पूर्व कवि गंग, मोहनलाल, बलभद्र मिश्र, रहीम, केशव और मुबारक आदि अनेक कवि रीति परम्परा के ठहरते हैं। महादेवी वर्मा 'यामा' में उन्होंने चित्रकला को निरीक्षण और कल्पना पर तथा कविता को

---

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, श्री गाँधी पी०जी० कालेज मालटारी, आजमगढ़ (उ०प्र०)*

भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर बतलाता है। चित्रकार एक बार बने मानसिक चित्र को बहुत काल बाद भी अंकित कर सकता है, पर कवि नहीं। अच्छा होगा कि महादेवी के वाक्य से ही उनकी चित्रकला के इस विवेचन की परिसमाप्ति करूँ।

मूल शब्द *– रीतिकाव्य और चित्रकला, राजपूत शैली, बुँदेला, राजपूत कला, ओरछा, मेवाड़ शैली, नृत्य, गायन, चित्रण, राजभवन, दुर्ग, प्राचीर, प्रसाद, संगीत, साहित्य, पारखी, नागरिक*

मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में 15वीं शदी ई० का समय अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। राजनीतिक उथल–पुथल के बावजूद साहित्य और कला के विभिन्न अंगों के निर्माण तथा विकास के लिए इस युग में जो कार्य हुए, उनका ऐतिहासिक महत्व है। हिन्दी साहित्य के प्रायः समस्त रीति–ग्रन्थ इसी युग में लिखे गये। इस युग के साहित्यप्रेमी और कलानुरागी विशेष रूप से कवियों और कलाकारों ने रीति काव्य और चित्रकला के रूप में नये युग के सूत्र पात्र किये, अध्ययन अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विवेच्य काल में रीति–काव्य एवं चित्रकला का समन्व्य युग कहा जाय तो अतिश्योकित नहीं होगा। हिन्दी साहित्य के प्रायः समस्त रीति–ग्रन्ध इसी युग में लिखे गये हैं। इस युग के साहित्यप्रेमी और कलानुरागी राज्य सत्ता के आश्रय में रहकर कवियों और कलाकारों ने नव युग का निर्माण किया। कला की दृष्टि से राजपूत शैली का निर्माण मध्य युग की सब से बड़ी देन है।

राजपूत चित्रशैली के उदय से लेकर आज तक का इतिहास जानने से पहले यह बात जाननी जरूरी है कि उसके सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने एक जैसे निष्कर्ष नहीं निकाले हैं। आज से कुछ वर्ष पहले राजपूत शैली का मूल्यांकन जिस सामग्री को लेकर किया गया था. वह इतनी कम थी कि उससे राजपूत शैली की परम्परा का सही रूप नहीं जाना जा सकता। इसका कारण यह है कि धीरे–धीरे विभिन्न संग्रहों से जो चित्र सामग्री प्रकाश में आयी उसने स्थापनाओं को निरर्थक कर दिया। यद्यपि इस दिशा में आज बहुत कुछ कार्य हो चुका है, किन्तु देश के विभिन्न अंचलों में चित्रों के जो संग्रह सुरक्षित हैं उन सब का सर्वेक्षण और अध्ययन–अनुशीलन करना सहज कार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त आज भी ऐसे चित्र–संग्रहों की कमी नहीं, जो विभिन्न व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति के रूप में अज्ञात अवस्था में पड़े हुए हैं।[1]

राजपूत शैली का निर्माण यद्यपि राजस्थान की धरती में हुआ, किन्तु धीरे–धीरे उसका विस्तार मध्य प्रदेश, पंजाब और हिमांचल प्रदेश जैसे दूरांचलों

में हो गया। भारत के विभिन्न अंचलों में बिखरे हुए राजपूत राजाओं ने राजपूत शैली की प्रश्रय देने में अपना गौरव समझा। इस प्रकार राजपूत शैली ने स्थानीय संस्कारों और रीति–रिवाजों के अनुकूल विभिन्न शाखाओं में अपना विकास किया। राजपूत शैली की जिन प्रमुख शाखाओं का नाम अधिक लिया जाता है उनमें ग्वालियर अम्बर, गेवाड़, बीकानेर, जयपुर, किशनगढ़ और कोटा–बूँदी उल्लेखनीय है। इस स्थानीय शाखाओं का अपना अलग–अलग महत्व और इतिहास है।[2] मध्य भारत में कछवाहा तोमर और बुँदेला राजपूत कला के बड़े प्रेमी राजवंश हुए। सभी ललितकलाओं के प्रोत्साहन में ग्वालियर के मानसिंह तोमर (1486–1516 ई०) कर दरबार, मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसके समय वास्तुकला, मूर्तिकला, संगीत और चित्रकला की नयी दिशाएँ प्रकाश में आयीं। मानसिंह तोमर के समय ग्वालियर चित्रकारों का गढ़ बन चुका था। उसका इतना नाम हो चुका था कि अकबरी दरबार के कई चित्रकार स्वयं को श्ग्वालियरी कहने लगे थे। लोदियों के आक्रमण (1518 ई०) के कारण ग्वालियर केन्द्र के कलाकार छिन्न–भिन्न हो गये। ये कलाकार सारे बुन्देलखण्ड में विखर गये। दतिया के राजा वीरसिंह और ओरछा के राजा शत्रुन्जयसिंह के समय सुन्दर भित्तिचित्र बने। ग्वालियर के बाद राजपूत कला का यह केन्द्र अम्बर में स्थापित हुआ। 16वीं शती ई० से लेकर 18वीं शती ई० तक निरन्तर वहाँ चित्र बनते रहे। अम्बर के मन्दिरों में की गयी चित्रकारी मैं राजपूत शैली का आरम्भिक रूप देखने को मिलता है।[3]

इसी समय मेवाड़ में राजपूत शैली की नयी शाखा प्रकाश में आयी। नाथद्वारा और उदयपुर उसके मुख्य केन्द्र थे। नाथद्वारा में मेवाड़ शैली के जिन चित्रों का निर्माण हुआ है वे काफी बाद के थे और उनको एक प्रकार से उस परम्परा का अर्वाचीन रूप कहा जा सकता है। नेशनल म्यूजियम, दिल्ली, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई। भारत कला भवन, वाराणसी और राजस्थान के विभिन्न चित्र–संग्रहों में इस प्रकार की अनेक सचित्र पाण्डुलिपियों और स्फुट चित्र प्राप्त हो चुके हैं, जिनके आधार पर मेवाड़ शैली की वास्तविकताएँ अधिक प्रामाणिक रूप से प्रकाश में आ चुकी हैं। इन चित्र–कृतियों के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि मेवाड़ शैली की प्रतिष्ठा 17वीं शदी ई० में हो चुकी थी। नृत्य गायन का चित्रण और राजभवनों, राजमहलों एवं युद्ध आदि विषयों का चित्रण भी बहुत प्रभावशाली ढंग चित्रित से किया गया है।[4]

बीकानेर शैली के अधिकतर चित्रकार मुसलमान थे, उन्होंने प्रायः शुद्ध हिन्दू विषयों पर चित्र–रचना करके अपनी उदारता तथा निपुणता का प्रमाण उपस्थित किया। राजपूत शैली की एक उन्नत शाखा किशनगढ़ से प्रकाश में आयी। किशनगढ़ एक समय बल्लभ संप्रदाय के आचार्यों का प्रमुख केन्द्र था। अतः किशनगढ़ के प्राचीन चित्रों पर उसका प्रभाव है। बाद की शताब्दियों तक किशनगढ़ शैली में राधा–कृष्ण और कृष्ण सम्बन्धी विभिन्न लीलाओं के चित्रों का निर्माण इसी भावना से होता रहा।[5] किशनगढ़ शैली में राधा जी के सुन्दर चित्र बने। उसमें संतो, दरवेशों, गायकों, राजाओं, नवाबों और नायक–नायिकाओं की सुन्दर शबीहें भी देखने को मिलती हैं। राजपूत शैली की समृद्धि की अनेक महत्त्वपूर्ण शाखाओं में कोटा–बूँदी शैली का विशेष महत्व एवं नाम है। कोटा–बंदी के महलों में उस भव्य शैली के नमूने आज भी देखने को मिलते हैं। इस शैली के अधिकतर चित्र विदेशों में जा चुके हैं। इस शैली का सबसे बड़ा संग्रह विक्टोरिया अलबर्ट म्यूजियम, लंदन में सुरक्षित है।[6] राजस्थान में चित्रकला की उन्नति और लोकप्रियता का कारण वहाँ के कलाप्रेमी रजवाड़े और जनरूचि रही है। राजस्थान में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ के निवासियों ने कला के प्रति प्रेम प्रदर्शित न किया हो। कला के साथ–साथ साहित्य का जितना निर्माण और संरक्षण राजस्थान में हुआ उतना भारत के किसी भी छोर में नहीं, मध्ययुगीन सम्पूर्ण साहित्य और कला के असंख्य केन्द्र आज भी राजस्थान के घर–घर में देखने को मिलते हैं।

राजपूत चित्रकला की प्रवृत्तियाँ धार्मिक और विधियों आदर्शवादी हैं। इनमें यद्यपि व्यक्तिचित्रों की कमी है, किन्तु काव्य की कोमलता और पुराणों की धर्मिक प्रवृत्तियों ने उनकी श्रेष्ठता को बनाये रखा। राजपूत चित्रों का विषय–वैशिष्ट्य, उनका सुन्दर आलेखन, उनके रंगों एवं रेखाओं का सहज प्रवाह यह बताता है कि वर्षों के अध्ययन, अभ्यास और अध्यवसाय के बाद ही उनमें पक्षियों से भरे निकुजों, मृग, मयूर तथा वलाकाओं की पंक्यिों, दीपमालाओं, दास–दासियों, अलंकृत प्राचीरों से युक्त राजभवनों की शोभा, स्त्रियों के विशाल नेत्र, उन्नत भात–पुरुषों के आजानुबाहु स्त्रियों के नितम्ब प्रदेश को स्पर्श करने वाले केश और पुरुषों की कर्ण प्रदेश तक फैली हुई गुच्छेदार मूंछों की ऐंठन आदि अनेक विशेषताएँ राजपूत चित्रों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।[7]

इसके अतिरिक्त 'रामायण' तथा 'महाभारत' के धार्मिक तथा पौराणिक विषय, सूर की कविताओं का भक्तिभाव, बाल्यभाव एवं युवाभव, मतिराम, केशव,

देव, बिहारी और पद्माकर आदि हिन्दी रीतिकालीन कवियों की श्रृंगार कल्पनाएँ और मीरा के आत्म समर्पण का भाव सभी का अविकल रूप राजपूत चित्रों में दर्शित है।[8] नारी–सौन्दर्य को चित्रित करने में राजपूत शैली के चित्रकारों ने विशेष दक्षता दिखायी। उनके सुगठित सुन्दर अंग प्रत्यंगों का आकर्षण चित्रण और जौहर की बलिदेवी पर आत्मविसर्जन का कठोर संकल्प–नारी के इन दोनों रूपों को राजपूत शैली के चित्रकारों ने बहुत ही सजगता से प्रदर्शित किया है।[9] राजस्थान के दुर्ग, प्राचीर प्रसाद, वहाँ की पार्वत्य भूमि वहाँ के मन्दिर, हवेलियों और सामान्य घरों के चौकों, दीवालों का सुन्दर चित्रण भी इन चित्रों में प्रदर्शित है। राजपूत शैली के संवर्धन में यद्यपि मुगल शैली का बहुत योग रहा है, फिर भी उनकी अधिक चित्रण विधियों सर्वथा अपनी हैं। विशेष रूप से वृक्ष–लता, पशु–पक्षी आदि का आलेखन सर्वधा निजी है। इसके विपरीत मुगल शैली के आलेखनों में भारतीय भावनाओं का समावेश मुगल शैली के प्रभाव से उसमें आया।[10]

प्राचीन सभ्यताओं के क्लासिकी समाजों के सन्दर्भ में ऐतिहासिक दृष्टि से मध्यकाल का आरम्भ सातवी–आठवीं शताब्दी में स्वीकार किया जाता है। भारतीय इतिहास के अनुसार भी मध्यकालीन प्रवृत्तियां वर्धन साम्राज्य की सामाप्ति के साथ लगभग इसी काल में उभरती प्रतीत होती है। इसी वातावरण में कला, संगीत और साहित्य के पारखी श्नागरिक का आविर्भाव होता है।[11] 'इसी परिवेश के एक अन्य संदर्भ में नर–नारी सम्बन्धों में, विशेषतः पति–पत्नी सम्बन्धों में एक सम्भ्रान्त आदर्श, उत्तरदायित्व तथा पारिवारिक एवं सामाजिक नियंत्रण के भाव का विकास होता है।[12] 'रामचरित मानस' में विदेह की पुष्पवाटिका में सीता के प्रथम दर्शन पर राम के ह्रदय में उद्भूत कोमल भाव के प्रति स्वयं राम की द्विविधा इसी परिशुद्धतावादी अभिजात्यवादी आदर्श नर–नारी सम्बन्ध का सुन्दर उदाहरण है।

मध्यकालीन लोक के जागरण के परिणामस्वरूप विभिन्न मत–सम्प्रदायों का प्रकट सैद्धान्तिक आश्रय प्राप्त करके ह्रासशील समन्ती विवाह की घुटन भरी स्थितियों तथा यौन–उच्छृंखलता के दूसरे ध्रुवान्त के विरूद्ध रोमांस भाव की उदात्त साहित्यिक दार्शनिक अभिव्यक्ति में प्रवृत्त होता है।

मुग्धा नायिका के अज्ञात यौवना, ज्ञात–यौवना, नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढा भेद स्वीकार्य है। विभिन्न आचार्यों ने इस भेदोपभेद योजना में कुछ

घटा–बढ़ी भी की है। आचार्य केशव मुग्धा के चार भेद मानते हैं– नवल वधू, नवयौवना, नवल अनंगा और लज्जा आई।[13]

लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने अवश्य ही रीतिकाल की सीमा 1643 से 1800 स्वीकार की है। क्योंकि संवत् 1600 के आसपास कृपाराम की हिततरंगिणी आदि रचनाएँ श्रृंगार एवं नायिका भेद के ग्रंथ हैं। इसके पश्चात् अकबर के दरबारी कवि करनेस ने कर्णाभरण, श्रुतिभूषण एवं भूपभूषण आदि ग्रन्थों के माध्यम से इस परम्परा को विकसित किया। इसी प्रकार सं० 1700 से पूर्व कवि गंग, मोहनलाल, बलभद्र मिश्र, रहीम, केशव और मुबारक आदि अनेक कवि रीति परम्परा के ठहरते हैं। परन्तु विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में 1600 से 1700 तक वस्तुत इस काल की प्रस्तावना दी है। श्रृंगार के अभिनय का आरम्भ इसके अनन्तर हुआ।[14] महादेवी वर्मा 'यामा' में उन्होंने चित्रकला को निरीक्षण और कल्पना पर तथा कविता को भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर बतलाता है। चित्रकार एक बार बने मानसिक चित्र को बहुत काल बाद भी अंकित कर सकता है, पर कवि नहीं। अच्छा होगा कि महादेवी के वाक्य से ही उनकी चित्रकला के इस विवेचन की परिसमाप्ति करूँ।[15]

उपरोक्त आलोचित विषय के सन्दर्भ में यह तथ्य विष्लेषित व विवेचित होता है कि एक श्रेष्ठ साहित्यकार सदैव अतीत के प्रति सचेत, वर्तमान के प्रति जागरूक और भविष्य के प्रति चिन्तित रहता है। इसी वातावरण में कला, संगीत और साहित्य के पारखी श्नागरिक का आविर्भाव होता है। 'इसी परिवेश के एक अन्य संदर्भ में नर–नारी सम्बन्धों में, विशेषत पति–पत्नी सम्बन्धों में एक सम्भ्रान्त आदर्श, उत्तरदायित्व तथा पारिवारिक एवं सामाजिक नियंत्रण के भाव का विकास होता है। 'रामचरित मानस' में विदेह की पुष्पवाटिका में सीता के प्रथम दर्शन पर राम के हृदय में उद्‌भूत कोमल भाव के प्रति स्वयं राम की द्विविधा इसी परिशुद्धतावादी अभिजात्यवादी आदर्श नर–नारी सम्बन्ध का सुन्दर उदाहरण है। रीति काव्य के अनुषीलन में राजपूत चित्रों का विषय–वैशिष्ट्य, उनका सुन्दर आलेखन, उनके रंगों एवं रेखाओं का सहज प्रवाह यह बताता है कि वर्षों के अध्ययन, अभ्यास और अध्यवसाय के बाद ही उनमें पक्षियों से भरे निकुजों, मृग, मयूर तथा वलाकाओं की पंक्तियों, दीपमालाओं, दास–दासियों, अलंकृत प्राचीरों से युक्त राजभवनों की शोभा, स्त्रियों के विशाल नेत्र, उन्नत भात–पुरुषों के आजानुबाहु स्त्रियों के नितम्ब प्रदेश को स्पर्श करने वाले केश

और पुरुषों की कर्ण प्रदेश तक फैली हुई गुच्छेदार मूंछों की ऐंठन आदि अनेक विशेषताएँ राजपूत चित्रों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

संदर्भ

1. *गैरोला वाचस्पति, भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985 पृ० 60*
2. *वही, पृ० 61*
3. *वही, पृ० 62*
4. *वहीं, पृ० 63*
5. *वही, पृ० 63*
6. *गोस्वामी प्रेमचन्द राजस्थान की लघु चित्रशैलिया प्रथम खण्ड जयपुर 1972 पृ० 65*
7. *वही, पृ० 66*
8. *हाल्दार असित कुमार, भारतीय चित्र कला इतिहास इलाहाबाद, 1959 पृ० 107*
9. *वही, पृ० 108*
10. *वाजपेयी कृष्ण दत्त भारतीय वास्तु कला का इतिहास, लखनऊ 1972 पृ० 95*
11 *कामसूत्र (वात्स्यायन हिन्दी रूपान्तर) पृ० 17*
12. *Thomas Indian woman & Through The Ages, 1964, p- 48*
13. *मैथिली प्रसाद भारद्वाज, सत्तगुरु रविदास की वाणी के समाजशास्त्रीय आयाम, पृ० 12–20*
14. *केशवदास, रसिक प्रिया, तृतीय, प्रकाश, दोहा–17*
15. *डॉ० जगदीश गुप्ता भारतीय कला के पचिन्ह, पृ० 52*

Paper Received : 04 Jan., 2025 ***Paper Accepted : 16 Jan., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 134-142

कानपुर नगर में व्यावसायिक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन

*डॉ० हनी मिश्रा **

सारांश

व्यावसायिक संरचना का जनसंख्या के आर्थिक दृष्टि से विषेष महत्व हैं क्योंकि इससें जीवनयापन की दशाओं का ज्ञान होता है। जनसंख्या के व्यावसायिक संरचना का तात्पर्य सम्पूर्ण क्षेत्र में कार्यरत जनसंख्या के विभिन्न कार्यों के अन्तर्गत वर्गीकरण होता हैं। सामाजिक–आर्थिक एंव सांस्कृतिक विकास के विविध पक्षों से जनसंख्या के व्यावसायिक संरचना का घनिष्ट कार्यात्मक सम्बन्ध होता हैं। इससे किसी क्षेत्र मे रहने वाले नागरिकों के रहन–सहन और जीवन–स्तर का अनुमान ठीक–ठीक लगाया जा सकता है। मनुष्य अपने जीवनयापन से सम्बन्धित जो भी कार्य करता हैं, वह उसका व्यवसाय कहलाता हैं। दूसरे शब्दों में जीवकोंपार्जन के लिए की जाने वाली विभिन्न आर्थिक क्रियाओं को व्यावसाय कहते हैं।

***मूल शब्द** :– कार्यशील जनसंख्या. व्यावसायिक संरचना. अकार्यशील जनसंख्या. मजदूर. पारिवारिक उद्योग ।*

किसी भी देश में विभिन्न आर्थिक कार्य में सम्मिलित जनसंख्या के स्वरूप को व्यवसायिक जनसंख्या संरचना कहा जाता है जनसंख्या की इन आर्थिक क्रियाओं की संरचना व्यावसायिक कहलाती है प्राथमिक अवस्था में खदान खोदना, लकड़ी काटने, चीरने, मछली पकड़ने या कंदमूल फल एकत्रित करने और विभिन्न प्रकार की फसलों को उगाने, गृहकार्य, कल कारखाने स्थापित करके या सेवा, व्यापार आदि सभी कार्य लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं भरण पोषण के लिए करते रहे हैं ये सभी आर्थिक कार्य से संबंधित है तथा एक कार्य को करने वालों को व्यावसायिक संरचना के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है व्यावसायिक संरचना से ही उस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का ज्ञान होता है कोई देश कृषि प्रधान पशुपालन अथवा उद्योग प्रदान है। व्यावसायिक संरचना व्यक्ति की व्यवसायिक स्थिति के साथ साथ विचार सामाजिक दृष्टिकोण एवं राजनैतिक संबंधता को भी प्रकट करती है। जनसंख्या में व्यवसायिक संरचना का बहुत अधिक महत्त्व होता है जिससे उसके जीवन स्तर का भी पता चलता है इस प्रकार व्यावसायिक संरचना के अंतर्गत कुल जनसंख्या में कार्यरत जनसंख्या में विभिन्न व्यवसाय या कार्यों की संगतता का अध्ययन किया जाता

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, डी०ए०वी० पी०जी० कालेज, कानपुर, उ०प्र०*

है क्योंकि किसी क्षेत्र या देश में आर्थिक आधुनिकीकरण की दिशा में प्रगति की तीव्रता की जानकारी हुई तो विभिन्न व्यवसायों में लगी जनसंख्या का अवलोकन करना आवश्यक हो जाता है । व्यावसायिक संरचना के अतिरिक्त जनसंख्या का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जो देश या काल के विकास की सीमा निर्धारित कर सके। जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना द्वारा जनसंख्या के दबाव का आकलन भी किया जाता है जिससे क्षेत्र विशेषकर आर्थिक विकास की संभावित विकास का आकलन संभव हो सकेगा। कार्यशील जनसंख्या अर्थात 15 से लेकर 59 आयुवर्ग में स्त्री और पुरुष कृषि विनिर्माण व्यावसायिक परिवहन सेवाओं संचार तथा अन्य वर्गीकृत सेवाओं जैसे व्यवसाय में भाग लेते हैं कृषि और मत्स्यन तथा खनन को प्राथमिक क्रिया, विनिर्माण द्वितीयक क्रिया और परिवहन सेवाओं को तृतीयक क्रियाओं तथा अनुसंधान और वैचारिक विकास से जुड़े कार्यों को चतुर्थक क्रियाओं के रूप में वर्गीकृत किया जाता है इन चार खंडों में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास के स्तरों का एक अच्छा सूचक है इसका कारण यह है कि केवल उद्योग और अवसंरचना संयुक्त एक विकसित अर्थव्यवस्था ही द्वितीय तृतीय एक और चतुर्थक सेक्टर में अधिक कर्मियो को समायोजित कर सकती है यदि अर्थव्यवस्था अभी प्राथमिक अवस्था में है तब प्राथमिक क्रिया से संलग्न लोगों का अनुपात अधिक होगा क्योंकि इससे अधिक मात्रा प्राकृतिक संसाधनों से विद्यमान हैं जनसंख्या के व्यावसायिक संरचना का सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक लाभ के विविध पक्षों से घनिष्ठ कार्यात्मक संबंध होता है इससे क्षेत्र के रहने वाले निवासियों के रहन सहन और जीवन स्तर का ठीक ठाक अनुमान लगाया जा सकता है । मनुष्य अपने जीवन से संबंधित जो भी कार्य करता है वह उनका व्यवसाय कहलाता है दूसरे शब्दों में जीवन यापन के लिए की जाने वाली आर्थिक क्रिया को व्यवसाय कहते है जनसंख्या का वह भाग जो अतिक्रिया एवं सेवाओं के उत्पादन में संलग्न है कार्यशील जनसंख्या कहलाती है इसे श्रम शक्ति जनसंख्या भी कहते हैं जिसमें सामान्यतया 15 से 59 तक आयु वर्ग के लोग शामिल होते हैं इसके विपरीत अकार्यशील आयु में कम आयु के बच्चे सेवामुक्त व्यक्ति गृहणी विद्यार्थी या जो अपने जीवन यापन के लिए किसी अन्यक्रिया में संलग्न नहीं है तथा जनसंख्या का वह भाग जो आर्थिक दृश्य से अकार्यशील हो निर्भर जनसंख्या कहलाती है इसमें 0 से 14 आयु वर्ग के बच्चे व 60 से अधिक आयु वर्ग के लोग समाहित होते हैं।

अध्ययन का उद्देश्यः

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उपदेश कानपुर नगर के व्यावसायिक संरचना का अध्ययन करते हुए उसकी प्रमुख विशेषता को प्रकाश में लाना है जिससे अध्ययन क्षेत्र के संसाधन संबंधी तथ्यों का पता लगाया जा सके । अध्ययन के लिए प्राथमिक जनगणना सार 2011 के आंकड़ों के आधार पर विकासखंड,

जिला, प्रदेश तथा भारत के व्यावसायिक संरचना में कार्यशील और अकार्यशील जनसंख्या के परिवर्तन को दिखाया गया है।

अध्ययन का विधितंत्र

प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषणात्मक विधितंत्र का प्रयोग करते हुए द्वितीय स्रोतों से प्राप्त आंकड़े जो प्राथमिक जनगणना सार 2011 से लिए गए हैं। कानपुर नगर को अध्ययन की इकाई के रूप में चुना गया है तथा विकासखंड क्षेत्र विवाद में समाधान की एक प्रणाली है इसका काम व्यापक सिद्धांत पर आधारित होते हुए कार्य को सरल बनाना है। आर्थिक दृष्टि से जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना का विशेष महत्त्व है।

अध्ययन क्षेत्र

कानपुर नगर उत्तर प्रदेश राज्य के महत्वपूर्ण शहरों एक है। यह शहर गंगा नदी के दक्षिण– पश्चिम तट पर स्थित है। यह शहर उत्तर प्रदेश के आर्थिक एवं औद्योगिक व्यवसाय का मुख्य केन्द्र है। कानपुर भारत के प्रमुख शहरो में से एक है। कानपुर नगर का स्थलीय स्वरूप पूर्णतः मैदानी है, जो गंगा एवं यमुना नदियों के दोआब के निचले भाग में स्थित है । इस जनपद की उत्तर–पूर्व सीमा गंगा नदी एवं दक्षिण– पश्चिम सीमा यमुना नदी के द्वारा निर्धारित होता हैं।कानपुर नगर की सीमाये कई जिलो से लगती है, जिसमें कानपुर देहात, उन्नाव, हरदोई, फतेहपुर, कन्नौज और हमीरपुर शामिल है। इस प्रकार उत्तरी भाग में उन्नाव जनपद पूर्वी भाग में फतेहपुर एवं दक्षिण–पश्चिम भाग में कानपुर देहात जनपद की सीमाये है ।

इसका भौगोलिक विस्तार निम्नलिखित सीमाओं तक होता है। कानपुर नगर लगभग 25 55′ 17″ उत्तरी अक्षांश से 26 57′ 39″ उत्तरी अक्षांश तक और 79 53′ 37″ पूर्वी देशान्तरसे 80° 33′ 59″ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। कानपुर नगर की औसत ऊचांई समुद्र तल से 126 मी० (413 फीट) हैं। कानपुर नगर जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल जनगणना एवं राजस्व विभाग के अभिलेखानुसार 3005 वर्ग किमी० हैं। जो कुल उत्तर प्रदेश के क्षेत्रफल का 1. 01 है । इस जनपद के अंतरगर्त तीन तहसीले आती है । घाटमपुर, कानपुर नगर एवं बिल्हौर है तथा इसके अंतरगर्त दस विकासखण्ड है। कल्याणपुर, बिधनू, सरसौल, बिल्हौर, शिवराजपुर, चौबेपुर, ककवन, घाटमपुर, पतारा एवं भीतरगॉव है। इस जनपद के दस विकासखंडों में से सबसे बड़ा विकासखण्ड घाटमपुर है। जिसका क्षेत्रफल 502 वर्ग किमी० है। तथा सबसे छोटा विकासखण्ड ककवन है जिसका क्षेत्रफल 129 वर्ग किमी० है। इस जनपद में ग्रामीण क्षेत्रफल 2651 वर्ग किमी० एवं नगरीय क्षेत्र 320 वर्ग किमी० हैं।

साक्षरता ही राष्ट्र के विकास के मापक के रूप में भी लिया जाता है इसके साथ ही साक्षरता मनुष्य के सोच–विचार और कार्य करने की योग्यता में वृद्धि करती है। इससे व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति

का मार्ग प्रशस्त होता है, क्योंकि निरक्षर या अनपढ़ व्यक्ति समाज और देश की वर्तमान वास्तविक स्थिति को समझने में असमर्थ होता है और देश के विकास में अपनी उचित भूमिका भी नहीं दे पाता है। पं0 जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में 'निरक्षरों से बदलते राष्ट्र में औद्योगिक क्रान्ति सम्भव नहीं'। वर्तमान काल में वे प्रदेश आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न है, जहाँ साक्षरता दर उच्च है और वे प्रदेश पिछड़े हुए है जहाँ साक्षरता दर निम्न है। गाँधी जी ने हरिजन पत्रिका में लिखा है 'जनसमूह की निरक्षरता हिन्दुस्तान का कलंक तथा श्राप है, शर्म है और वह दूर होगी। किसी राष्ट्र का पतन या उथान शिक्षा की आधारभूमि पर ही खड़ा है (शर्मा, 2010)।

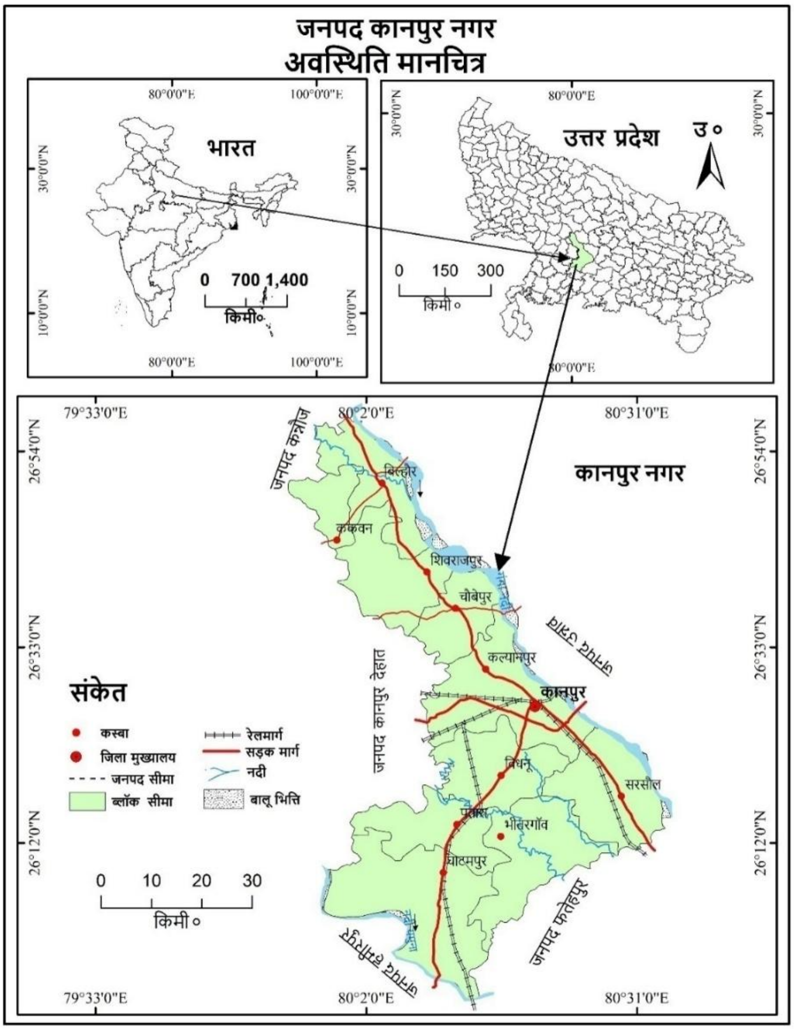

चित्र : 1

कार्यशील और अकार्यशील जनसंख्या की तुलना (प्रतिशत में)

कानपुर नगर में 2011 में कार्यशील जनसंख्या 35.95 प्रतिशत थी जबकि अकार्यशील जनसंख्या 64.05 प्रतिशत थी। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में कार्यशील जनसंख्या 32.93 प्रतिशत थी जबकि अकार्यशील जनसंख्या 67.06 प्रतिशत थी। 2011 तक भारत में कार्यशील जनसंख्या 39.79 प्रतिशत है जबकि अकार्यशील जनसंख्या 60.20 प्रतिशत है। इस प्रकार कानपुर नगर में जहाँ वृद्धि की स्थिति पायी जाती है। कानपुर नगर की कार्यशील जनसंख्या उत्तर प्रदेश से अधिक जबकि भारत से कम हैं। वहीं अकार्यशील जनसंख्या में लगातार वृद्धि हुई हैं। जिसका प्रमुख कारण बेरोजगारी, कृषि क्षेत्र का सीमित होना तथा कानपुर नगर में स्थित उधोग का बन्द होना है जिसके कारण अनेकों लोगों के रोजगार के अवसर सीमित हो गये।

सारणी 1. कानपुर नगर में व्यावसायिक संरचना की तुलना 2011

नाम	जनसंख्या	कार्यशील	अकार्यशील
		जनसंख्या (प्रतिशत में)	
भारत	1210854977	39.79	60.20
उत्तर प्रदेश	199812341	32.93	67.06
कानपुर नगर	1565623	35.95	64.05

स्रोत : प्राथमिक जनगणना सार, 2011

सारणी 2: का अध्ययन करने पर पता चलता हैं कि जहाँ 2011 में कार्यशील जनसंख्या का औसत 35.95 प्रतिशत है। जिसमें 6 विकासखण्ड की कार्यशील जनसंख्या विकासखण्ड सरसावां बडगांव से अधिक षाहजहॉपुर इब्राहिमपुर कुतुबपुर रायपुर बुढेडा अलीपुरा प्रतिशत अधिक है जनगणना 2011 में जनपद कानपुर नगर कार्यशील जनसंख्या 29.92 प्रतिशत है। जनपद से तुलना करने पर पॉच विकासखण्ड की कार्यशील जनसंख्या अधिक जबकि सात विकासखण्ड की जनसंख्या जनपद कानपुर नगर से कम हैं।

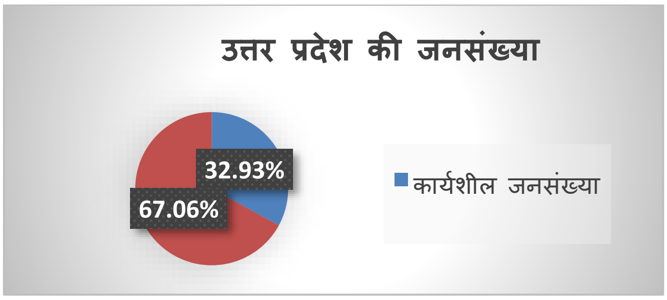

कृषक

इस श्रेणी के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो अपनी स्वयं की भूमि या किराये अथवा बटायी द्वारा प्राप्त भूमि पर या तो स्वयं कृषि करते हैं या अपने देखरेख में उस भूमि पर कृषि कार्य करवाते हैं। अध्ययन क्षेत्र में लघु एवं सीमान्त कृषकों की अधिकता हैं। सारणी 2 की तुलना करने पर जहाँ कानपुर नगर में 2011 की जनगणना के अनुसार औसत कृषक जनसंख्या 32.33 प्रतिशत थी इसमे भी विकासखण्ड ककवन में सबसे अधिक 51.74 प्रतिशत, शिवराजपुर में 46.01 प्रतिशत, बिल्हौर में 37.76 प्रतिशत, भीतरगॉव में 33.26 प्रतिशत हैं। जो जनपद के औसत कृषक जनसंख्या से अधिक हैं। जबकि सबसे कम कृषक विकासखण्ड कल्यानपुर में 24.43 प्रतिशत हैं। इसके बाद क्रमशः बिधनू में 27.02 प्रतिशत, सरसौल में 27.68 प्रतिशत, चौबेपुर में 28.25 प्रतिशत, पतारा में 31.30 प्रतिशत, घाटमपुर में 32.13 प्रतिशत हैं। कानपुर नगर एक कृषि प्रधान क्षेत्र हैं, जिसके फलस्वरुप कृषक जनसंख्या कृषक मजदूर के बाद सबसे अधिक है।

कृषक मजदूर

कृषक मजदूर राष्ट्र के आर्थिक तंत्र की रीढ है। स्वतंत्रता के पश्चात से ग्रामों के विकास हेतु सरकार द्वारा विविध योजनाएँ क्रियान्वित की गयी हैं लेकिन गाँवों का विकास अति धीमी गति से हुआ हैं। अतः ग्रामीण श्रम पूर्णतः अविकसित है। ग्रामीण श्रम में कृषक मजदूर का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके पास अपनी कोई कृषि योग्य भूमि नहीं होती है परन्तु कृषि कार्य में अपना श्रम किराये पर देते हैं। विशेषतः कृषक मजदूरों की स्वयं की समस्याएँ हैं क्योंकि वे समाज में एक निम्न वर्ग से सम्बद्व हैं। सारणी 2 की तुलना करने पर जहाँ कानपुर नगर में 2011 की जनगणना के अनुसार औसत कृषक मजदूर जनसंख्या 40.88 प्रतिशत हैं। इसमें भी विकासखण्ड पतारा में सबसे अधिक 47.81 प्रतिशत एवं घाटमपुर में 44.98 प्रतिशत, बिल्हौर में 44.32 प्रतिशत, भीतरगॉव में 43.75 प्रतिशत, सरसौल में 43.39 प्रतिशत हैं। जबकि सबसे कम विकासखण्ड चौबेपुर में 31.12 प्रतिशत हैं। इसके बाद क्रमशः कल्यानपुर में 31.25 प्रतिशत, ककवन में 35.50 प्रतिशत, शिवराजपुर में 37.20 प्रतिशत, बिधनू में 39.75 प्रतिशत हैं। कृषि मजदूरों की संख्या में दशकों में विद्यमान असमान प्रवृत्ति, कृषि कार्य में आधुनिक प्राविधिकी का अधिकाधिक उपयोग, भूमि विहीन

ग्रामीण जनसंख्या का नगरीकरण, प्रवजन एवं रोजगार के अवसरों में अभिवृद्वि से सम्बन्धित हैं।

सारणी 2. कानपुर नगर में व्यावसायिक संरचना, 2011

विकास खण्ड़	कुल जनसंख्या	कार्यशील जनसंख्या (प्रतिशत में)	कार्यशील जनसंख्या (प्रतिशत में)				अकार्यशील जनसंख्या (प्रतिशत में)
			कृषक	मजदूर	पारिवारिक उद्योग	अन्य	
ककवन	64250	32.41	51.74	35.50	2.26	10.50	67.59
बिल्हौर	172167	34.31	37.76	44.32	2.19	15.73	65.69
शिवराजपुर	121549	33.55	46.01	37.20	2.80	13.99	66.45
चौबेपुर	128833	35.08	28.25	31.12	4.27	36.35	64.92
कल्यानपुर	171240	32.67	24.43	31.25	3.30	41.02	67.33
बिधनू	179997	34.65	27.02	39.75	4.13	29.10	65.35
सरसौल	187301	36.43	27.68	43.39	4.75	24.18	63.57
पतारा	149958	38.38	31.30	47.81	2.14	18.75	61.62
भीतरगॉव	178550	38.97	33.26	43.75	3.20	19.79	61.03
घाटमपुर	211778	39.34	32.13	44.98	3.80	19.08	60.66
योग	1565623	35.95	32.33	40.88	3.40	23.39	64.05

स्रोत : प्राथमिक जनगणना सार, 2011

पारिवारिक उद्योग

पारिवारिक उद्योग के अर्न्तगत घरेलू उद्योग, वाणिज्य मरम्मत का कार्य करने वाली जनसंख्या एवं लघु एवं कुटीर उद्योग में लगी जनसंख्या आती है। सारणी 2 की तुलना करने पर जहाँ कानपुर नगर में 2011 की जनगणना के अनुसार औसत पारिवारिक उद्योग के अर्न्तगत जनसंख्या का 3.40 प्रतिशत था। इसमें भी विकासखण्ड सरसौल में यह सबसे अधिक 4.75 प्रतिशत था। इसके पश्चात यह चौबेपुर में 4.27 प्रतिशत, बिधनू में 4.13 प्रतिशत, घाटमपुर में 3.80 प्रतिशत, जो औसत जनसंख्या से अधिक था जबकि सबसे कम विकासखण्ड पतारा में 2.14 प्रतिशत है। इसके बाद क्रमषः बिल्हौर में 2.19 प्रतिशत, ककवन में 2.26 प्रतिशत, शिवराजपुर में 2.80 प्रतिशत, भीतरगॉव में 3.20 प्रतिशत,

कल्यानपुर में 3.30 प्रतिशत था। इस प्रकार पारिवारिक उद्योग के अर्न्तगत जनसंख्या में कमी दर्ज की गयी है। जिसका प्रमुख कारण रोजगार के लिए ग्रामीण जनसंख्या का नगर की तरफ पलायन है।

अन्य कार्य

कृषि एवं विनिर्माण उद्योग में संलग्न व्यक्तियों के अतिरिक्त कार्यशील जनसंख्या को इस श्रेणी में रखा जाता हैं। जिनका मुख्य कार्य परिवहन, व्यापार एवं संचार होता हैं। सारणी 2 की तुलना करने पर जहाँ कानपुर नगर में 2011 की जनगणना के अनुसार अन्य कार्य के अर्न्तगत औसत जनसंख्या का 23.39 प्रतिशत था। इसमे भी विकासखण्ड कल्यानपुर में सबसे अधिक 41.02 प्रतिशत हैं। इसके पश्चात विकासखण्ड चौबेपुर में 36.35 प्रतिशत, बिधनू में 29.10 प्रतिशत सरसौल में 24.18 प्रतिशत था जो औसत जनसंख्या से अधिक था। जबकि सबसे कम विकासखण्ड ककवन में 10.50 प्रतिशत था। इसके बाद क्रमशः शिवराजपुर में 13.99 प्रतिशत, बिल्हौर में 15.73 प्रतिशत, पतारा में 18.75 प्रतिशत, घाटमपुर में 19.08 प्रतिशत, भीतरगॉव में 19.79 प्रतिशत, था। इस प्रकार अन्य कार्य के अर्न्तगत जनसंख्या का अधिक भाग है।

निष्कर्ष

कानपुर नगर में व्यावसायिक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह पता चलता है कि कार्यशील जनसंख्या (2011) 562869 है जो कानपुर नगर जनपद के कुल कार्यशील जनसंख्या 35.95 प्रतिशत है। 2011 की कृषक जनसंख्या एवं पारिवारिक उद्योग की जनसंख्या मे कमी दर्ज की गई है। कृषक मजदूर एवं अन्य कार्य के अन्तर्गत जनसंख्या में वृद्धि दर्ज की गई है। कार्यशील जनसंख्या में भी कमी आयी हैं जिसका प्रमुख कारण जीवन प्रत्याशा एवं बेरोजगारी में वृद्धि से है। अध्ययन क्षेत्र एक कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ पर खनिज संसाधनों का अभाव है जिसके कारण खनिज आधारित उधोगों का भी अभाव हैं। अध्ययन क्षेत्र में मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखकर क्षेत्र के सभी लोगो को आगे लाकर ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिससे सम्पूर्ण जनसंख्या को रोजगार का अवसर प्राप्त हो सके और क्षेत्र का सर्वांगीण विकास हो।

अध्ययन से पता चलता है कि कानपुर नगर में कुल कर्मकार व्यक्तियों की संख्या 562869 है जिसमें कुल मुख्य कामगार 412665, सीमान्त कामगार

150204 व्यक्ति हैं। इसके अतिरिक्त, कृषक 181950 तथा कृषि श्रमिक 230126 पारिवारिक कार्यों में लगे व्यक्तियों की संख्या 19125 एवं अन्य कार्य में 131668 व्यक्ति हैं।

संदर्भ

- *ओझा, आर0एन0, जनसंख्या भूगोल, प्रतिभा प्रकाशन, कानपुर, 1983, पृ0 133–134*
- *ओझा, आर0एन0, जनसंख्या भूगोल, प्रतिभा प्रकाशन, कानपुर, 1984, पृ0 196*
- *किम, एस0यू0 सिन्हा, आर0 एण्ड गौर, के0डी0, पापुलेशन एण्ड डेवलपमेण्ट, सनराईज पब्लिकेशन, 2002, न्यू देलही*
- *कृष्णा, जी0 एण्ड श्याम, एम0, लिटरेसी इन इण्डिया, जियोग्राफिकल रिव्यू आफ इण्डिया, वाल्यूम 39, 1977, पृ0 117–125*
- *गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, क्लाइमेट आफ उ0प्र0, इण्डिया मैट्रोलाजिकल डिपार्टमेन्ट, 1999, पृ0 30*
- *गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, स्टेटमेण्ट ऑफ इण्डस्ट्रियल पॉलिसी, मिनिस्ट्री ऑफ इण्डस्ट्रियल डेवलपमेन्ट, नई दिल्ली, 1978, पृ0 25*
- *पाण्डेय प्रेम शंकर, बनकटी विकासखण्ड (जनपद–बस्ती) का ग्रामीण विकास एवं नियोजनः एक भौगोलिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, 2015*
- *प्राथमिक जनगणना सार, 2011*

Paper Received : 05 Feb., 2025 **Paper Accepted : 15 Feb., 2025**

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 143-153

राजी सेठ के कथा साहित्य में नारी जीवन का यथार्थ

*डॉ० बिपिन यादव **

सारांश

जीवन और समाज की वर्तमान परिस्थितियों पर अपनी नज़र रखने वाली राजी सेठ जी ने उसी यथार्थ तथा संवेदनाओं को अपनी रचनाओं में पिरोया है। समय के साथ–साथ हमारे समाज और जीवन शैली तथा मानवीय मूल्यों में जो परिवर्तन आता जा रहा है, राजी सेठ जी ने शायद उसे पहले ही भाप लिया था इसीलिए उनके साहित्य में हमें आधुनिकता का पुट मिलता है। लगातार होता परिवर्तन जीवन में कैसे बदलावों को लाता है यह हमें उनकी रचनाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है। स्त्री होने के नाते स्त्री मन को बखूबी बयान करना राजी सेठ जी से सीखा जा सकता है। उन्होंने स्त्री के जीवन को कल्पना से नहीं अपितु यथार्थ की दृष्टि से पाठकों तक लाने का कार्य किया है इसी कारण वे समकालीन अन्य लेखिकाओं से भिन्न प्रतीत होती हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू को यथावत बयाँ करना आसान नहीं होता बल्कि यह चुनौतियों से भरा होता है। इस पर खरा उतरना किसी भी रचनाकार के चातुर्य का परिचायक होता है जिनमें राजी सेठ जी भी एक हैं क्योंकि उनका लेखन सामान्य स्त्री के बहुत निकट–संबंध रखता है।

मूल शब्द – *कथा, साहित्य, स्त्री, योग, परिवार*

परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है जो व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान करने की बुनियाद है। परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी संवेदनाओं को विकसितकरता है और धीरे–धीरे जैसे वह समाज में अपना स्थान बनाता है, वहाँ परिवार केमूल्य उसे विकसित होने में सहायता करते हैं। व्यक्ति के विकास के लिए समाज जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है उस व्यक्ति का परिवार जहाँ वह खुद को महफ़ूज़ महसूस करता है। उसे लगता है कि उसके साथ हमेशा उसका परिवार है।

परिवार का विघटित हो जाना किसी भी मनुष्य के लिए किसी डरावने सपने से कम नहीं होता। लेकिन जीवन में कई बार ऐसे मोड आ ही जाते हैं जो बताते हैं कि अब सही बस यही होगा कि वे केवल अपना सोचें। असल में मनुष्य का स्वार्थ हीउसे ऐसे फैसलों की ओर ले जाता है। स्वार्थ से बड़ा एक

* *सहायक आचार्य, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, जवाहर लाल नेहरु स्मारक पी०जी० कालेज, महाराजगंज, उ०प्र०*

और कारण है, ऊब, असुरक्षा और सम्मान व अपनेपन की कमी। जो किसी और के प्रेम और सम्मान पाने पर उसकी ओर आकृष्ट हो ही जाती है। 'तीसरी हथेली' कहानी में ऐसा ही एक संदर्भ देखने को मिलता है जब कथानायक अपनी प्रेमिका नंदी का इंतज़ार करता हुआ उसके बारे में सोचता है– "कभी उसके घर की बात चलाओ तो कहेगी, उस नरक में तो रहना ही है। इन घडियों को उस याददाश्त से काला क्यों कर रहे हो?"[1]

वह उसके साथ सिर्फ संबंध रखना चाहता है लेकिन उसके साथ घरबसाना नहीं चाहता जबकि नंदी चाहती है कि वह अपना परिवार बनाए। वह अपने पहले पति को त्याग कर उसके साथ आ बसना चाहती है लेकिन ऐसा होना नामुमकिन है वह अकसर सोचता है– "स्त्री के लिए प्यार एक घर होता है, एक समाज, एकसंरक्षण, बच्चों से चहकता–महकता एक आँगन।"[2] अतः वह पलायन तभी करती है जब वह इन सब से वंचित होती है।

राजी सेठ जी ने 'पुतले' कहानी में पुरुष की स्वार्थपरता का जो चित्रण किया है वह भी लगभग इसी प्रकार का है। असल में कहानी की नायिका युद्ध के समय में सरकार की मदद करना चाह रही थी। जो कि वह आर्थिक रूप से बहुत सबल हैं तो उसको लगता है कि उसके घर से सरकार के सैनिक रक्षाकोष के लिए कम से कम दस हज़ार रुपए दिए जाएं। जब वह पति के पास पैसे की मांग रखती है तो वह अलग–अलग बहाने बना कर, कभी झिडक कर पैसे देने से मना कर देता है। उसी दिन उसके किसी दोस्त के घर पार्टी के लिए शोपिंग करता है जिससे नायिका आघत हो जाती है। अगले दिन वह उससे बचता हुआ ऑफिस निकल जाता है और उसके अगले दिन घर से चेक–बुक और बैंक का पासबुक जो बीवी के नाम का ही था लेकिन उस पर अपना अधिकार था, अपने साथ ऑफिस ले जाता है। उस समय नायिका के मन में प्रश्न उठते हैं– "वह क्या समझे इसे?... हैसियत का सवाल?... अधिकारहीनता?... पराधीनता की फाँस?... इच्छा का अनादर ?... कुछ नहीं का बोध ?... परावलम्बन?... पौरुषीय वर्चस्व का दम्भ?... स्वेच्छाचारिता?... सम्वेदन हीनता?"[3] यहाँ पाठकों के मन में जो एक सटीक जवाब बनता है, वह स्वार्थ का है। यहाँ इस बात पर भी ध्यान केंद्रित होता है कि एक स्त्री होने के नाते उसके अधिकारों का हनन करना अमानवीय तो है ही लेकिन क्या देश के प्रति ऐसा बर्ताव माफी के लायक है? ज़ाहिर है नहीं, जिस देश में जन्म लिया है, उसी के हित के लिए उदासीन होना स्वार्थ की सीमा को लांघना है।

जैसे–जैसे मनुष्य आधुनिक होता जा रहा है उसमें व्यवहार कुशलता अपनी निपुणता को प्राप्त कर रही है। आज कल कोई किसी के लिए त्याग

या बलिदान नहीं करता। अगर करता भी है तो उसके पीछे अवश्य ही कोई स्वार्थ छिपा हुआ होता है। यही स्वार्थ रिश्तों को तोडने, बिखरने का कारण भी बनता है। कई बार स्वार्थ नहीं बल्कि अपनेपन और प्रेम का अभाव भी इंसान में दरार और दूरियाँ पैदा करता है। यहदूरियाँ रिश्ते को तब तोड देती हैं जब कोई और इन भावनाओं की भरपाई कर देता है।

कई बार जीवनसाथी की महत्वाकांक्षा भी इस बिखराव का कारण बन सकती है। 'एक यात्रांत' दाम्पत्य कलह की कहानी है जिस में पति की महत्वाकांक्षा के कारण पत्नी अकारण ही त्रास में जीवन बिताने को बाध्य है। असल में वैवाहिक जीवन के आरंभ में दोनों एक दूसरे के अच्छे गुणों से आकर्षित होते हैं लेकिन समय के साथ यही गुण अवगुणों का रूप ले लेते हैं और दोनों में दूरियाँ बढने लगती हैं। पत्नी उसे समझाती भी है, तो वह उत्तर देता है कि "ऊँचे पद की हवस ने तुमसे एक असावधान क्षण में कहला लिया था, इसे स्वीकारने का अर्थ जानता हूँ... सब पीछे छूट जाएगा...मेरे सारे आत्मीय तथा जीवन में जो भी, जितना भी सुंदर और मूल्यवान है..."[4] लेकिन ऊंचे पद के मोह वश वह पत्नी को त्यागना स्वीकारता है मगर पद नहीं । पत्नी भी अपना आक्रोश जताती हुई कहती है– "तुम तब ही बड़े बन सके हो जब तुमने सामने वाले को बहुत छोटा, बहुत घृणित और बहुत दयनीय करार कर लिया है। इस तरह से बड़ा बन पाने को क्या कहेंगे?"[5]

'अंधे मोड से आगे' की कहानी इस से भिन्न है क्योंकि मिश्रा जो नायिका के पति का बॉस है और उससे शादी करने का प्रस्ताव भेजता है पहले तो वह दोनों पुरुषों को समान मानसिकता वाले समझ कर शादी से इनकार कर देती है लेकिन वह सोचती है कि कम से कम मिश्रा यदि कभी कभार उस पर हाथ उठा भी दे तो बाकी सुख तो उसे मिलेंगे ही और वह वह के लिए जब वह सुरजीत को तलाक का नोटिस देती है तो वह उस नोटिस को फ़ाडता हुआ कहता है– "तुम भाड में जाओ और साथ में तुम्हारा बॉस।"[6] यहाँ एक बात साफ हो जाती है कि स्त्री भी स्वार्थी हो सकती है। अपने सुख के लिए वह किसी को त्याग भी सकती है यह त्याग और आसान हो जाता है जब नया साथी आर्थिक रूप से सबल हो।

अकेला रहना और अकेला महसूस करना दो अलग–अलग बातें हैं। इनसान अकेला तब होता है जब कोई उसका साथ न दे और अकेला तब महसूस करता है जबकोई उसे अनदेखा कर दे। और उससे भी कठिन होता है उस अकेलेपन को दूसरों के आगे व्यक्त करना। जिसका अनुभूतिपूर्ण विवरण राजी सेठ जी ने 'योग दीक्षा' कहानी की लिज़ा के माध्यम से किया है। जो

अकेलेपन से राहत पाने के लिए योग का सहारा लेती है। और इसी बहाने जो उसे योग सिखाने आती है उससे देर तक बातें कर, उसे जितनी देर हो सके रोक कर रखना चाहती है। एक दिन जब वह रुक जाती है और बात करने के लिए जब कोई विषय नहीं मिलता तो वह पूछ लेती है कि आपके परिवार में कितने लोग हैं। तब लिज़ा बाटलीवाला से कहती है– "माय हस्बैंड... हस्बैंड यूनो...ड्यूटी पर बोत–बोत दिन बाहर रहता... हम कूलोनली लगता.. ऐकलाक्लब जाने कूनई गमता।... डाइयनिंगटेबल पर ऐकला...? ओह नौ !... बोतडिपरेस होता... हमबेडरूम में मार्निंगब्रेकफास्ट लेता... जॉयआएँगा तो डायनिंग रूप में ब्रेकफास्टले..एकरेंगा... रियल गुड सेरेमनी..."[7]

पति या किसी साथी का न रहना ही अकेलापन नहीं होता। अकसर मनुष्य मानवीयता के अभाव के कारण भी खुद को बहुत अकेला पाता है इसी कारण वह उस ओर आकर्षित हो जाता है जहाँ उसे प्रेम और आदर मिले। 'उसी जंगल में' कहानी की नायिका शादीशुदा होने के बावजूद अपने पति से जब पीडित होती है, उसके जीवन में अकेलेपन का अनुभव कुछ अधिक ही हावी होता दिखाई देता है। अतः वह गगन की ओर आकर्षित हो ही जाती है। उसे लगता है – "जीवन के प्रश्नानुकूल खालीपन कासतत सामने दिखता जवाब।"[8] उसका अकेलापन उससे जो प्रश्न करता है उन सारे प्रश्नों का उत्तर उसे अपने प्रेमी द्वारा मिलता है।

संसार में वैसे ऐसा कम ही देखने को मिलता है जब किसी को अकेलापन दूर करने के लिए कोई साथी मिल जाए। यह तो मनुष्य की प्रवृत्ति होती है कि वहजीवन के हर मोड पर कोई न कोई साथी तलाशता ही है। और स्त्री को अकेलापन अक्सर इसलिए भी काटने लगता है कि उसे समाज किस नज़रिए से देखता है। यही बताने का प्रयास राजी सेठ जी ने अपने उपन्यास तथा कहानियों के माध्यम से बताया है।

'दूसरी ओर से' कहानी की सुशी अपने कॉलेज के दिनों को याद करते हुए सोचती है कि जहाँ वह रहती थी वह उनका घर नहीं था "वह हमारा घर नहीं था। मामा का घर था, इसे माँ भी समझती थीं, मैं भी... जाने किसने मुझे बता दिया था, यहाँ प्यार ज़रूर मिल सकता है, अधिकार नहीं लिया जा सकता।"[9] क्योंकि अधिकार के लिए आत्मीयता की आवश्यकता होती है। जो इस घर में उसे नहीं मिली थी अतः वेनौकरी मिलते ही अलग शहर जा बसे थे। राजी जी ने इस कहानी के माध्यम से परिवार में होने वाले आत्मीयता के अभाव को बिना किसी की भावनाओं को आहत किए बताया है।

'उसी जंगल में' कहानी की नायिका शादीशुदा होने के बावजूद अपने पतिसे जब पीडित होती है, उसके जीवन में अकेलापन कुछ अधिक ही हावी होता दिखाईदेता है। अतः वह गगन की ओर आकर्षित हो ही जाती है। "सोची थी कई बार गगन केसाथ जोडकर अपनी ज़िंदगी।"[10]

ऐसा ही एक और उदाहरण 'तीसरी हथेली' की नंदी के माध्यम से देखने कोमिलता है जब वह अपने प्रेमी से कहती है– "तुम्हारे पास आकर जी जाती हूँ, मेरे मनकी क्लासमेट ही बदल जाती है... क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि मैं सदा... तुम्हारेपास ही रहूँ?"[11] लेकिन उसका प्रेमी उसे अपनाना नहीं चाहता बल्कि उससे केवल एकसंबंध मात्र रखना चाहता है।

'दूसरे देशकाल में' में तलाक का कारण ही विवाहेतर संबंध बताया जाता हैजो साबित नहीं होता लेकिन आरोप लगाया जाता है जिसमें रोहित का आरोप था– "उसके परिवार की चौतरफा नर्माई को देखते असंतुलित दिमाग़ की एक पागल जैसी लड़की को उससे बाँध दिया गया है। और पत्नी पक्ष का यह आरोप– कि रोहित के विवाहेतर संबंधों ने ही उसे इस मनोदशा तक पहुँचाया है।"[12] यूँ राजी सेठ जी ने समकालीन परिस्थितियों के माध्यम से उत्तराधुनिक विचारधारा और नारी की खुद के बारे में सोचने कर ज़िंदगी में भावनात्मक सहारा पाने के लिए किए जानेवाले फैसलों के बारे में बताया है। इन कहानियों के जैसे पात्र अलग–अलग हैं वैसे ही उनके विवाहेतर संबंध रखने के माध्यम भी अलग–अलग हैं किंतु कारण केवल एक ही है जो है प्रेम और आदर की कमी।

कई बार पुरुष इतना नीच हो जाता है कि वह पैसे के आगे पति–पत्नी जैसे पवित्र रिश्ते की बारीकी को भी नहीं समझता और अपनी पत्नी को गैर मर्द से बांटने में भी शर्म महसूस नहीं होती। 'उसी जंगल में' कहानी की नायिका को जब दहेज में धनदौलत नहीं दी जाती तो उसका पति एक दिन अचानक अपने किसी दोस्त को ले आताहै। नायिका समझ जाती है और उसी रात को वह घर से भाग निकलती है। समय बीतते–बीतते उसका पति तलाक के कागज़ात भिजवाता है और उसका भाई पर हस्ताक्षर करने के लिए कहता है तब वह उत्तर देती है – "वह बात छोडिए मैं हस्ताक्षर नहीं करूँगी। कम–से–कम किसी और की ज़िंदगी उजाडने के लिए वह हाथ झाडकर स्वतंत्र तो नहीं हो सकता। वह क्या नहीं कर सकता! मालूम है, किसी विधवा की बेटी को फुसलाकर घर बिठा लिया है। उसकी धन–दौलत पर आँख हैं।"[13] राजी जीने यह बताया है कि एक निकम्मा, गिरा हुआ आदमी ही ऐसा कुकृत्य कर सकता है।

'अपने दायरे' कहानी में पुरुष की अकर्मण्यता का विचित्र सा अनुभव हमें देखने को मिलता है जब माँ की मृत्यु के बाद बेटा उसकी डायरी उठा कर पढता है। उसमें अन्य अनुभवों के साथ यह भी लिखा होता है– "मैंने तुमसे कहा था, मुझे पूरा लोया पूरा जाने दो। स्वस्थ अधिकार दो या स्वस्थ मुक्ति, परंतु तुमने सम्बंध को एक सामाजिक समझौते की तरह जीते रहने की रुग्ण चॉयस दी है...। पूरा मरना भी नहीं, पूराजीना भी नहीं ... ।"[14] जिसे पढ कर उसे अपने पिता पर तनिक क्रोध भी आता है औशंका भी कि आखिर पिता जी ने उनके साथ ऐसा क्या किया होगा जो माँ ने अपनी डायरी में ऐसा लिखा।

उसे याद आता है– "माँ को सितार बजाने, लिखने–पढ़ने और फूलों का बेहद शौक था। पापा इन सब बातों को 'शियरसेंटी मेंटेलिटी' कहते थे। ट्रांसफर के समय माँकी पुस्तकों को देख कर हर बार 'गेटरिड ऑफ दिस इन अन–नेसस्रीलोड यही कहा करते थे।"[15] यह पुरुष की अकर्मण्यता, स्त्री के प्रति उसकी ऊब हाँ उदाहरण है।

'यात्रा–मुक्त' कहानी में नायक का पिता अपने मालिक के प्रति इतना ईमानदार है कि वह अपने परिवार, बीवी यहाँ तक कि अपने बेटे के बारे में भी नहीं सोचता। वह हफ्ते–महीने में एक बार ही गांव जाता है लेकिन वहाँ भी उसे अपने मालिक की ही चिंता लगी रहती है। वह इतना असंवेदनशील है कि उसकी पत्नी तडपती रहती है लेकिन वह उसे देखता तक नहीं और राम–नाम जपने में मग्न है। उसकी अकर्मण्यता का वर्णन कहानी के नायक के माध्यम से लेखिका कहती हैं कि "माँ के मरने पर बापू को कई दिन तक घर में रहते देखा था – सांझ का धुंधल का...आसमान में ठहरी हुई आंधी की पीली घुटन ... कोठे के बाहर दालान में माँ ज़मीन पर लेटी हुई... सिर ढका हुआ... साडी का पल्लू आंख के पपोटों से नीचा। वह खून ज़ोर–ज़ोर से सांस ले रही थी। बाप कुछ दूरी पर दीवार के सहारे बैठे 'सिरी राम–सिरी राम'का सीत्कार कर रहे थे। 'तनिक हाथ तो दे लाला!' ताई की वह पैनी सी खीझ उसे अभी तक याद है। बापू उठकर आए तो थे पर ऐसा कुछ करने का शऊर शायद उनके हाथों को नहीं था। टुकुर–टुकुर देखते भर रहे। माँ के आखरी सांस भरने के बाद ही उनका हाथमाँ के माथे पर गया। एक बार उन्होंने माँ की कलाई पर अपनी उंगलियाँ फिराईं औरफिर चुपके से बांह को नीचे रख दिया।"[16]

विकीपीडिया के अनुसार "विवाह, जिसे शादी भी कहा जाता है, दो लोगों के बीच एक सामाजिक या धार्मिक मान्यता प्राप्त मिलन है जो उन लोगों के बीच, साथ ही उनके और किसी भी परिणामी जैविक या दत्तक बच्चों तथा

समधियों के बीच अधिकारों और दायित्वों को स्थापित करता है।"[17] आम तौर पर हमारे यहाँ 'दो लोग'एक पुरुष और एक महिला के अर्थ में ही लिया जाता है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि वे एक ही धर्म, जाति, गोत्र आदि से जुडे हुए हों। विवाह के लिए भारतीय समाजमें भले ही भावी पति–पत्नी में सम्मति न हो लेकिन परिवार में होनी चाहिए तभी उसेपरिवार मान्यता देता है वरना नहीं।

शादी–ब्याह से जुडी समस्याओं में सबसे बडी समस्या है अनमेल विवाह। कारण अलग–अलग हो सकते हैं जैसे– आयु में अंतर, एक दूसरे का कम या ज़्यादा पढा लिखा होना, एक दूसरे के प्रति प्रेम और सद्भाव की कमी, किसी अन्य के प्रति आकर्षण आदि। इसी सबके कारण कई बार आपस में दूरियाँ आ जाती हैं और मामला आकर ठहरता है तलाक पर। अनमेल विवाह पर राजी सेठ से पहले भी कमल कुमार जी 'पासवर्ड' और 'मैं घूमर नाचूँ' उपन्यास में ज़िक्र कर चुकी हैं। मैत्रेयी पुष्पा जी ने भी 'विज़न' में अनमेल विवाह का एक किस्सा बयाँ किया हुआ है । राजी सेठ जी का अनमेल विवाहको देखने का दृष्टिकोण इनसे भिन्न है। वे अपनी अधिकतर कहानियों में अनमेल विवाहको न संभाल पाने का दोष पुरुष की अकर्मण्यता पर डालती हैं।

वे बताती हैं– अनमेल विवाह का कारण कई बार अपने साथी के प्रति जागृत हुई कई प्रकार की इच्छाएं भी होती हैं जिनके पूरे न होने से विवाह अनमेल साहो जाता है और बात आकर खत्म होती है तलाक पर ऐसा ही एक उदाहरण 'किसके पक्ष में' कहानी में देखने को मिलता है जहाँ जयंत अपने दोस्त की शादी बचाने की कोशिश करता है अपने दोस्त विक्की और उसकी पत्नी बेला के झगडे सुलझाया करता है लेकिन एक सीमा के बाद उसको लगने लगता है कि कब तक वह यही करता रहेगा यदि कभी वह इन दोनों के बीच से हट जाये तो यही झगडा दोबारा होगा। और झगडे की वजह थी पुरुष पर अपना अधिपत्य स्थापित करना जिसके लिए विक्की तैयार नहीं था। इस बारे में वह विक्की से कहता है – "सच कहूँ ! वह अधिक स्त्री होना चाहती है, इसलिए पुरुष को अधिक पुरुष देखना चाहती है। यह बात नहीं है विक्की! तुम दोनों हीअलग–अलग मिट्टी के बने हुए हो। समझौते की कोशिश बेकार है।"[18]

अनमेल विवाह का एक उदाहरण 'सदियों से' कहानी में देखने को मिलता है। जिसकी नायिका प्रेम तो हेमंत से करती है किंतु किसी कारणवश उसका विवाह नरेन से हो जाता है। वह बार–बार नरेन से इस बात से डरती है कि कहीं हेमंत द्वारा लिखे पत्र नरेन को प्राप्त न हो जाएं अतः वह उसकी

अनुपस्थिति से उन खतों को जला देना चाहती है। वह बार–बार सोचती है– ”न उन्हें पा जाता तो कौन जाने उसके भीतर से भी एक अदद खूंखार पति निकल आता जो निर्मोह होकर पत्रों को आग के हवालेकर देता।“[19] नायिका अक्सर नरेन की तुलना अपने प्रेमी से करती हुई सोचती है– ”नरेन की साधना, एक सरल सी दिखती ऊंचाई की साध, हेमंत का सानिध्य एक अविरल प्यास. .. इन दोनों के आधारों में कोई रिश्ता नहीं...“[20]

प्रेम विवाह को आज की पीढी न सिर्फ आज़ादी बल्कि अपना अधिकार समझती है जो कि है भी। राजी सेठ जी की कहानी में जो स्त्री प्रेम विवाह करती है, वह कोई आधुनिक, पढे–लिखे समुदाय के अंतर्गत आती है, जो अपने अधिकारों से अवगत है। उदाहरण के लिए 'अस्तित्व से बडा' कहानी जिसमें पढे–लिखे तथा आधुनिक सोच–विचार रखने वाली स्त्री देखने को मिलती है जो इस कहानी की नायिका रीनू है जो अपने विवाह का निर्णय खुद लेते हुए अपनी माँ से कहती है– ”मैं ने एक दिन माँ सेसुमंत से विवाह का अपना निर्णय कह डाला। माँ ने पिताजी से, पिताजी ने भैया से और भैया ने भाभी से।“[21] हालाँकि वह यह नहीं जानती कि सुमित उससे ही नहीं बल्कि किसी से शादी करना नहीं चाहता। इस कहनी के अलावा राजी सेठ जी ने किसी भी कहानी में स्त्री को अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित होते अवश्य दिखाया है किंतु उससे प्रेम विवाह करते नहीं। यहाँतक कि 'तत्सम' उपन्यास की वसुधा, जिसके पति के देहांत के बाद परिवार के सभी लोग दूसरी शादी करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं लेकिन वह अंततः एक पुरुष के प्रेम में पड़ कर ही शादी करती है।

अंतर्जातीय विवाह को लेकर सभी का दृष्टिकोण अलग–अलग हो सकता है। इसके पक्ष और विपक्ष में लोग हो सकते हैं लेकिन एक साहित्यकार अंतर्जातीय विवाह को समाज के लिए अच्छा समझता है। वह इसे भेद–भाव मिटाने का माध्यम समझता है। सुशीला टाकभौरे जी अपने उपन्यास 'तुम्हें बदलना ही होगा' में नायिका महिमा भारती और चमनलाल के माध्यम से समाज में समता लाने का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। महिमा भारती के माध्यम से सुशीला जी कहती हैं– ”अगर हमारी दलित जातियों की लडकियाँ सवर्ण परिवार के समझदार लडकों से विवाह करने लगें, तो समाज में सामाजिक समानता जल्दी आ सकती है।“[22] राजी सेठ जी ने भी ऐसा ही बदलाव लाने का प्रयास किया है।

'किसका इतिहास' कहानी देश विभाजन के समय की कुछ घटनाओं का परिचय करवाती है, जिस में सांप्रदायिकता का पता चलता है। इस कहानी

का मुख्य पात्र अतुल अपने पिता की सांप्रदायिक विचारधारा के विरुद्ध जाकर शमीम से शादी करना चाहता है जिसके कारण पिता और पुत्र में द्वंद्व पैदा होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पिता के अतुल के शमीम के साथ विवाह ना करने का कारण विभाजन के समय अपने परिवार पर हुए अत्याचार है। वे यह समझने के लिए तैयार नहीं हैं कि अत्याचार दोनों मुल्कों के लोगों पर हुआ है न सिर्फ उनके और उनके परिवार के साथ। पिता से अतुल यह बात स्पष्ट करता है कि – "मेरा फैसला यदि घर का फैसला नहीं हो सकता तो यह मेरा घर नहीं है। मुझे ऐसा करने का अफसोस है पर...."[23]

'सहकर्मी' कहानी की मिससमित्रा उर्फ करुणा की कहानी सच में पाठक के मन में करुणा पैदा करती है। इस कहानी में उनका संबंध एक मुसलमान से होता है जो उनके साथ विश्वासघात करता है और उनको एक संतान देकर रिश्ता आगे बढाने से मुकर जाता है। उनके बारे में ऑफिस में अपने सहकर्मी को वे बताती है कि वह शादीशुदा नहीं है। जब वह पति के विषय में पूछने पर बताती है– "मैं सच कहती हूँ, वह मुस्लिम होकर यदि इतनी श्रद्धा से मेरे साथ बिरला मंदिर की सीढियाँ न चढता तो शायद कुछ भी न होता ... मुझे उस पर इतना विश्वास न आता... ।"[24]

अंतर्जातीय विवाह असल में दो पीढियों के बीच सांप्रदायिकता को लेकर एक द्वंद्व पैदा करता है जिसे अगली पीढी पिछली पीढी की सांप्रदायिक सोच को प्रगतिवादी सोच में बदलना चाहती है लेकिन ऐसा होना कठिन अवश्य है लेकिन यह असंभव नहीं। राजी सेठ जी ने जो उदाहरण अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किए हैं वे समाज के यथार्थ को ही दर्शाते हैं।

कोई पत्थर दिल इंसान ही होगा जिसे बच्चे पसंद नहीं। खासकर अपने बच्चे। हमारा भारतीय समाज जिस में संतानोत्पत्ति और अपनी पीढी को आगे बढाने के लिए ही शादी ब्याह किए जाते हैं। ऐसे में किन्हीं कारणोंवश अवैध संतान हो जाना आज–कल कोई नई बात नहीं है। कई बार दम्पति माँ–बाप नहीं बनना चाहते और बच्चा जन्मले ही लेता है।

राजी सेठ युवा पीढी के बच्चों की मानसिकता को भलि–भांति से समझ गई हैं। इसी कारण उन्होने अपनी कई कहानियों में अवैध या अनचाही संतान का ज़िक्र किया है। उदाहरण के लिए 'गलत होता पंचतंत्र' की नायिका जो नहीं चाहती कि वह संतान को जन्म दे क्योंकि वह इसके लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थी लेकिन उसका पति इस बात को नहीं मानता और पुरुषत्व को दर्शाने के कारण उसे जन्म देने पर विवश करता है। नायिका अपने पति अजीत से कहती है– "यह तुमने क्या किया अजीत? मैंने कहा था तुमसे, 'आई

डोंटवांटइट ।' मुझे अभी कितना कुछ करना है!"[25] यानी वह नहीं चाहती थी कि वह इतनी जल्दी माँ बने लेकिन लेकिन पुरुष की कामेच्छाओं के आगे उसके सपने दम तोड देते हैं और वह एक अनचाही संतान को जन्म दे देती है।

अकसर अपने होने वाले बच्चे से मन ही मन कहने लगती है– "धीरे–धीरे फिर अपनी याद आ जाती है। फिर याद आ जाते हैं मेरा स्वत्व माँगते स्वप्न। फिर याद आता है– मेरा अपना होना, कुछ होना, कुछ करना, मेरा अपना अस्तित्व। फिर भीतर–बाहर में आँख मिचौली होने लगती है। फिर भीतर कुछ कठोर होने लगता है, फिर उसकी आवाज़ें प्रभावहीन होने लगती हैं। फिर मुग्ध सम्मोहन में तस्वीरों पर फैले उनके नन्हे–नन्हे हाथ एक नामुराद चुनौती पैदा करने लगते हैं। फिर, फिर वही याद आने लगता है कि तू अनचाहे आगमन की मजबूरी है, जिसे मेरा कोई हिस्सा नहीं दिया जा सकता।"[26]

राजी सेठ जी ने अपने साहित्य में स्त्री से जुडे प्रत्येक पहलू पर अपने विचारों को स्पष्ट किया है। स्त्री को लेकर उनका जो दृष्टिकोण है वह उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलग करता है क्योंकि उन्होंने स्त्री को पीडित, दमित बताने के स्थान पर उसे अधिक अधिक संवेदनशील और विचारशील दिखाने का प्रयत्न किया है। उनके साहित्य की नायिकाएं बोलती कम हैं और सोचती अधिक है। उन्होंने सभी कहानियों या उपन्यास में स्त्री को जो भी संवाद दिए हैं वे किसी दूसरे से नहीं बल्कि खुद से विचार–विमर्श करते हैं। रूढियों से ग्रसित समाज में स्त्री अपने अस्तित्व को कैसे बनाए रख सकती है, इसका उदाहरण हमें उनकी नायिकाएं बताती हैं। योग दीक्षा कहानी की नायिका जो न सिर्फ अपने बल्कि अपने परिवार की आजीविका के लिए कमाती है, भूखी होते हुए भी वह सामने रखे खाने को ठुकरा कर स्त्री के आत्मसम्मान को दर्शाती है। 'तत्सम' की वसुधा अपने एकाकीपन को हराकर दोबारा विवाह कर जीवन को आगे बढाती है। साथ ही 'निष्कवच' की नीरा के माध्यम से स्त्री की स्वार्तयपरता का भी बखूबी चित्रण राजी जी से प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. *तीसरी हथेली, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, आवृति 2013, पृ. 63*
2. *तीसरी हथेली, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, आवृति 2013, पृ. 66*
3. *पुतले, राजी सेठ की चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2013, पृ. 100*
4. *एक यात्रांत,, (अंधे मोड से आगे), राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ. 56*
5. *एक यात्रांत,, (अंधे मोड से आगे), राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ. 58*
6. *अंधे मोड से आगे (स्त्री हूँ इसलिए), साहित्य भंडार, 2015, पृ. 21*
7. *योग दीक्षा, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, आवृति 2013, पृ. 72*

8. *उसी जंगल में, खाली लिफाफा, पेंगुइनबुक्स, 2007, पृ. 192,*
9. *दूसरी ओर से, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, आवृति 2013, पृ. 88*
10. *उसी जंगल में, (खाली लिफाफा), पेंगुइन, बुक्स, 2007, पृ. 200*
11. *तीसरी हथेली, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, आवृति 2013, पृ. 64*
12. *दूसरे देशकाल में, स्त्री हूँ इसलिए, साहित्य भंडार, चाहचंद, इलाहाबाद, 2015, पृ. 47*
13. *'उसी जंगल में' (स्त्री हूँ इसलिए), साहित्य भंडार, 2015, पृ. 60*
14. *अपने दायरे, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, आवृति 2013, पृ. 54*
15. *अपने दायरे, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, आवृति 2013, पृ. 57*
16. *'यात्रा–मुक्त, खाली लिफाफा, पेंगुइनबुक्स, 2007, पृ. 84*
17. *https://hi-wikipedia-org*wiki/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B9*
18. *किसके पक्ष में, (स्त्री हूँ इसलिए), साहित्य भंडार, 2015, पृ. 98 99*
19. *सदियों से, खाली लिफाफा, पेंगुइनबुक्स, 2007, पृ. 69*
20. *सदियों से, खाली लिफाफा, पेंगुइनबुक्स, 2007, पृ. 68*
21. *अस्तित्व से बडा, (अंधे मोड से आगे), राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ. 50*
22. *तुम्हें बदलना ही होगा, सुशीलाटाकभौरे, पृ. 115*
23. *किसका इतिहास, (तीसरी हथेली), राजकमल प्रकाशन, 2013, पृ. 17*
24. *सहकर्मी, राजी सेठ की चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2013, पृ. 76*
25. *गलत होता पंचतंत्र, स्त्री हूँ इसलिए, साहित्य भंडार, चाहचंद, इलाहाबाद, 2015, पृ. 41*
26. *गलत होता पंचतंत्र, स्त्री हूँ इसलिए, साहित्य भंडार, चाहचंद, इलाहाबाद, 2015, पृ. 40*

Paper Received : 05 Jan., 2025 **Paper Accepted : 15 Jan., 2025**

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 154-159

एक राष्ट्र एक चुनाव : संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

*डॉ. नरेन्द्र भारती **

सारांश

वर्तमान समय में एक राष्ट्र एक चुनाव भारत के लिए एक ज्वलंत मुद्दे के रूप में बनकर उभरी हुई है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव लोकतंत्र की आत्मा होती है। यह विचार भारतीय चुनाव चक्र को इस प्रकार से संरचित करती है कि लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ समकालिक हो, ताकि दोनों स्तर पर चुनाव एक निश्चित समय सीमा के भीतर एक साथ सम्पन्न हो सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब भारत में पहली बार 1952 ई. में चुनाव का आयोजन किया गया तो देश में केंद्रीय स्तर (लोकसभा) व राज्य स्तर (विधानसभा) पर एक ही साथ चुनाव सम्पन्न कराया गया। यह परंपरा 1952 से 1967 तक लगातार चलती रही। परंतु 1968–69 में कुछ राज्य विधानसभाओं में समय पूर्व सरकार भंग हो जाने के कारण यह परंपरा अग्रसर न हो सकी और जैसे–जैसे विभिन्न राज्यों की सरकारें अल्पमत में आती गई वैस–वैसे चुनाव कराए जाने लगे, जिसके कारण एक राष्ट्र एक चुनाव के परंपरा पूर्णतया भंग हो गई। वर्तमान समय में भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में एक राष्ट्र एक चुनाव कितना सफल हो सकता है? एवं इसके क्रियान्वयन में क्या–क्या समस्या उत्पन्न हो सकती है? इसका अध्ययन करना अपरिहार्य है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य एक राष्ट्र एक चुनाव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन कर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक राष्ट्र एक चुनाव आयोजित करने में आने वाली समस्याओं, चुनौतियों एवं संभावनाओं पर प्रकाश डालना है।

मूल शब्द : *एक राष्ट्र एक चुनाव, लोकतंत्र, संघीय व्यवस्था, अल्पमत सरकार, चुनाव प्रक्रिया, संवैधानिक, विकास, चुनौतियाँ।*

प्रस्तावना

96 करोड़ मतदाताओं के साथ भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। देश में लोकसभा (संसद का निम्न सदन), राज्यसभा (उच्च सदन), राज्य विधानसभाओं और स्थानीय शासी निकायों के लिए चुनाव होते हैं। भारत की चुनावी प्रणाली की नींव इसके संविधान में निहित है जो केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों के स्पष्ट परिसीमन के साथ एक संघीय ढांचे का प्रावधान करती हैं

* *श्री कृष्ण कॉम्प्लेक्स, अहियापुर चौक, मुजफ्फरपुर, बिहार*

पिछले कुछ दशकों से भारत में ऐसी परंपरा चल पड़ी है कि लगभग हर 6 महीने में किसी न किसी चुनाव का सामना देश को करना पड़ता है। अभी एक चुनाव से उबर कर विकास योजनाओं पर चर्चा शुरू होती है कि किसी ना किसी चुनाव या उपचुनाव की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। देश में होने वाले चुनावों का अगर हम गहराई से आकलन करते हैं तो हम पाते हैं कि देश में हर साल किसी न किसी राज्य के विधानसभा का चुनाव होता है। इसके कारण प्रशासनिक नीतियों के साथ–साथ देश के खजाने पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। 1951–52 में पहले आम चुनाव के बाद से, हर पांच साल में लोकसभा चुनाव होते रहे हैं, जब तक कि सदन समय से पहले भंग न हो जाए। 2019 के पिछले चुनाव में 67 प्रतिशत से अधिक मतदान हुआ, जो भारतीय लोकतंत्र की जीवंतता को दर्शाता है। हालाँकि, पांच साल का चक्र अक्सर राज्य विधानसभा चुनावों के साथ तालमेल से बाहर हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप बार–बार चुनाव होता है। वास्तव में, भारत का कुछ हिस्सा लगातार चुनाव चक्र में है, राज्य चुनाव का समय अलग–अलग है। इन चुनावों की बहुचरणीय प्रकृति महत्वपूर्ण लागत और शासन संबंधी व्यवधान भी डालती है। लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव साथ–साथ कराये जाने के मुद्दे पर लंबे समय से बहस जारी है। देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी इस विचार का समर्थन किया है और कहा है कि ''एक बार जब यह तय कर लिया जाये कि हमें कुछ करना है, तभी हम आगे बढ़ सकते हैं।'' इस मुद्दे पर निर्वाचन आयोग, विधि आयोग, संविधान समीक्षा आयोग और नीति आयोग ने भी विचार प्रस्तुत कर इसे अपनाएँ जाने पर अपनी हामी दी है।

समर्थकों का तर्क है कि इससे चुनाव की लागत कम होगी, शासन में सुधार होगा, आलोचकों का तर्क है कि इससे क्षेत्रीय मुद्दे कमजोर हो सकते है, राज्य सरकारों की जवाबदेही और संघवाद कमजोर हो सकता है। इसके लिए महत्वपूर्ण राजनीतिक सहमति की आवश्यकता होगी। संक्षेप में, यह कह सकते है कि भारत का आकार, सामाजिक आर्थिक विविधता, संघीय संरचना भारतीय लोकतंत्र को जीवंत बनाते हैं। चुनावी सुधारों को भारत की बदलती राजनीतिक अर्थव्यवस्था के साथ तालमेल बिठाने की जरूरत है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य ''एक देश एक चुनाव'' के विचार की व्यवहारिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण करना है। इस शोध पत्र में बताया गया है कि ''एक देश एक चुनाव' का विचार कुछ मायनों में फायदेमंद होते हुए भी भारतीय लोकतांत्रिक और संघ व्यवस्था के लिए कितना चुनौतीपूर्ण

है। चुनाव सुधारों की दृष्टि से देखा जाए तो अन्य कई उपाय हैं जिनके माध्यम से चुनावी खर्च को कम किया जा सकता है।

साहित्यावलोकन

अरूण कुमार कौशिक और युगांक गोयल ने The Journal of Social, Political and Economic studies ; Washington 2019 में प्रकाशित अपने आलेख The Desirability of one Nation one Election in India: Simultaneous Elections में एक देश एक चुनाव के विचार के विभिन्न आयामों की चर्चा की है। ए.शाजी जॉर्ज ने अपने शोध पत्र–एक राष्ट्र, एक चुनाव : भारत में एक साथ चुनाव लागू करने के पक्ष और विपक्ष का विश्लेषण ने एक देश एक चुनाव की अवधारणा की आवश्यकता, इसके फायदे और नुकसान एवं इसकी चुनौतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके अलावा–दृष्टि आईएएस, ध्येय आईएएस, प्रतियोगिता दर्पण, क्रोनिकल और समाचार पत्रों द्वारा हमें साहित्यावलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

एक साथ चुनाव के लाभ

लागत दक्षता : भारत में चुनाव कराने का वित्तीय बोझ बहुत अधिक है, प्रति लोकसभा चुनाव में केन्द्र सरकार की अनुमानित लागत लगभग 6000 करोड़ है। एक साथ चुनाव होने से यह प्रक्रिया सुव्यवस्थित हो जाएगी, जिससे केन्द्र सरकार और अलग–अलग राज्यों दोनों के लिए लागत कम हो जाएगी।

शासन और प्रशासनिक सुविधा : राज्य स्तर पर बार–बार होने वाले चुनाव राजनीतिक दलों को सतत् अभियान मोड में रखते हैं, साथ ही चुनावों के दौरान आदर्श आचार संहिता नई योजनाओं या परियोजनाओं की घोषणा को प्रतिबंधित करती है, जिससे प्रभावी नीति–निर्माण और शासन में बाधा आती है।

प्रशासनिक दक्षता : चुनाव अवधि के दौरान प्रशासनिक मशीनरी अक्सर धीमी हो जाती है क्योंकि प्राथमिक ध्यान चुनाव अभियान तथा प्रबन्ध पर केंद्रित हो जाता है। एक साथ चुनाव से ऐसे व्यवधानों की आवृति कम हो जाएगी, जिससे बेहतर प्रशासनिक दक्षता प्राप्त होगी।

सामाजिक एकजुटता : उच्च जोखिम वाले चुनावों की विभाजनकारी प्रकृति, सोशल मीडिया के कारण और बढ़ गई है, जिससे देश में ध्रुवीकरण बढ़ गया है। एक साथ चुनाव ध्रुवीकरण अभियानों की आवृति को कम करके इस प्रवृति को कम कर सकते हैं।

काले धन और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण : परंजॉय गुहा ठाकुरता कहते हैं, चुनावों में इस्तेमाल होने वाला काला धन देश में व्याप्त भ्रष्टाचार का मूल

कारण है। चुनावों के दौरान राजनीतिक दलों और प्रत्याशियों द्वारा काले धन का खुलकर इस्तेमाल किया जाता है। राजनीतिक दल काला धन लेकर चुनाव लड़ते हैं और जब वे चुनकर संसद या विधानसभा में पहुँचते हैं, उनके द्वारा चुनावों में आर्थिक सहायता देने वाले उद्योग घरानों को अनुचित फायदा पहुँचाया जाता है। यही वह भ्रष्ट गठबंधन (राजनेताओं और उद्यमियों) है जो भारत के भ्रष्टाचार के मूल में है। एक देश एक चुनाव के माध्यम से न केवल काले धन पर रोक लगेगी अपितु भ्रष्टाचार पर रोक लगाने में मदद मिलेगी।

एक साथ चुनाव की चुनौतियाँ

संधीय चरित्र संबंधी चिंताएँ : भारत की संधीय संरचना में विशिष्ट मुद्दों वाले अलग–अलग राज्य शामिल है। एक साथ चुनाव कराने से राष्ट्रीय मुद्दों के साथ राज्य–विशिष्ट चिंताओं पर हावी होने का जोखिम हो सकता है जिससे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की तुलना में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को अधिक लाभ मिलेगा। यह संभावित असंतुलन संविधान की संधीय भावना के विपरीत है जो कुछ मामलों में राज्यों की स्वायत्तता को मान्यता देता है।

डेमोक्रेटिक फीडबैक तंत्र पर प्रभाव : चुनाव सत्ता में सरकार के लिए एक महत्वपूर्ण फीडबैक तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। बार–बार होने वाले चुनाव चुनावी फीडबैक के आधार पर नीतियों में समय पर समायोजन की सुविधा मिलती है। पांच साल में केवल एक बार होने वाले एक साथ चुनाव इस निरंतर फीडबैक मार्ग को बाधित कर सकते हैं जिससे संभावित रूप से सार्वजनिक चिंताओं के प्रति सरकारों की प्रतिक्रिया प्रभावित हो सकती है।

संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता : एक साथ चुनाव लागू करने के लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता होगी। भारत का संसदीय लोकतंत्र कुछ परिस्थितियों में लोकसभा या राज्य विधानसभाओं को भंग करने की अनुमति देता है। इन निकायों के लिए निश्चित पांच–वर्षीय कार्यकाल के लिए संवैधानिक प्रावधानों में बदलाव की आवश्यकता होगी, जिसमें विधायी निकायों की अवधि और विघटन से संबंधित अनुच्छेद 83,85, 172 और 174 शामिल है।

एक साथ चुनाव के लाभ और हानियाँ

लाभ	**हानि**
लागत–कुशलता	संधीय चरित्र संबंधी चिंताएँ
शासन और प्रशासनिक सुविधा	डेमोक्रेटिक फीडबैक तंत्र पर प्रभाव
प्रशासनिक दक्षता	संवैधानिक और व्यावहारिक चुनौतियाँ

सिफारिशें : एक साथ चुनाव के लिए सुझाव

चरणबद्ध कार्यान्वयन : एक संतुलित दृष्टिकोण के रूप में, लोकसभा और लगभग आधे राज्यों की विधानसभाओं के लिए समकालीन चुनावों के साथ चरणबद्ध कार्यान्वयन पर विचार किया जा सकता है। शेष राजय ढाई साल बाद दूसरे चक्र में चुनाव करा सकते हैं। यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हुए राज्य–विशिष्ट चिंताओं का समाधान करने में सहायता करेगा।

विश्वास और अविश्वास प्रस्ताव का युग्मन : समय से पहले विघटन को कम करने के लिए, 'अविश्वास प्रस्ताव' के साथ वैकल्पिक सरकार के गठन के लिए 'विश्वास प्रस्ताव' को अनिवार्य बनाया जा सकता है। यह स्थिरता को बढ़ावा देगा और राजनीतिक दलों को संभावित गठबंधन पर गंभीरता से विचार करने के लिए प्रेरित करेगा।

उपचुनावों का एकीकरण : वार्षिक आधार पर मृत्यु, त्याग या अयोग्यता के कारण होने वाले उपचुनावों का एकीकरण प्रशासनिक दक्षता को बढ़ाएगा और चुनाव आयोग पर बोझ कम करेगा।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभव

दक्षिण अफ्रीका : राष्ट्रीय सभा और प्रांतीय विधानसभाएँ पांच साल के निश्चित कार्यकाल के साथ समकालीन रूप से चुनी जाती हैं। यह तंत्र राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करता है और राष्ट्रीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है।

स्वीडन और जर्मनी : ये देश क्रमशः चार वर्षीय कार्यकाल के साथ प्रधानमंत्री और चांसलर का चुनाव करते हैं। अविश्वास प्रस्ताव के बाद उत्तराधिकारी के तत्काल चुनाव की आवश्यकता जवाबदेही बनाए रखती है। ये अंतर्राष्ट्रीय उदाहरण भारत के लिए एक साथ चुनाव पर विचार करते समय मूल्यवान अनुभव प्रदान करते हैं।

आदर्श समाधान और आगे का रास्ता

भारत में एक साथ चुनाव कराने के विचार का लंबे समय से समर्थन और विरोध दोनों किया जा रहा है। समर्थकों का तर्क है कि इससे राजनीतिक स्थिरता, प्रशासनिक दक्षता और चुनावी खर्च में कमी आएगी। विरोधियों का तर्क है कि इससे राज्य–विशिष्ट मुद्दों की अनदेखी होगी और संघीय सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। इन तर्कों को ध्यान में रखते हुए, एक आदर्श समाधान एक चरणबद्ध दृष्टिकोण होगा। इस दृष्टिकोण के तहत, लोकसभा और लगभग आधे राज्य विधानसभाओं के चुनाव साथ बाद होंगे, जबकि शेष राज्य विधानसभा चुनाव दो ढाई साल बाद होंगे। यह दृष्टिकोण दोनों पक्षों की चिंताओं को संबोधित करेगा।

यह राष्ट्रीय मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए राज्य–विशिष्ट चिंताओं का समाधान करने में सहायता करेगा। यह व्यवस्था लोकतांत्रिक और संधीय सिद्धांतों से समझौता किए बिना एक साथ चुनाव के प्रमुख लाभों को संबोधित कर सकता है।

निष्कर्ष

एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले चुनाव (आम चुनाव, मध्यावधि चुनाव या उपचुनाव) लोकतांत्रिक व्यवस्था को व्यवहारिक और साकार रूप प्रदान करते हैं। एक देश एक चुनाव के विचार की चर्चा की जड़ में मुख्य मुद्दा चुनाव प्रक्रिया के दौरान होने वाला चुनावी खर्च और विकास कार्यों में पैदा होने वाली बाधा को माना जा रहा है। सरकार को ONOE को लागू करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। उसे अतिरिक्त अध्ययन, डेटा के मूल्यांकन और इस अवधारणा को लागू करने के तरीके पर मतदाताओं, विपक्षी दल के नेताओं एवं स्थानीय दलों से प्रतिक्रिया आमंत्रित करनी चाहिए। इस प्रकार, पूरे देश को यह तय करने का अवसर दिया जाना चाहिए कि 'एक देश, एक चुनाव' लागू करने की आवश्यकता है या नहीं। हालांकि, इस मध्य मार्ग को प्राप्त करने के लिए राजनीतिक सहमति की आवश्यकता है। अगले दशक में, सावधानीपूर्वक विचार और सहयोग के साथ, भारत एक साथ चुनावों की एक प्रणाली लागू कर सकता है जो लोकतांत्रिक और संघीय मूल्यों के संरक्षण के साथ दक्षता के लाभों को संतुलित करती है।

संदर्भ

1. *दृष्टि आईएएस, One Nation One Election- 05.06.2021 URL-https://www.drishtiias.com/daily-updates/daily-news-editorials/ one-nation-one-election.*
2. *एस वाई कुरैशी; A time for Electoral reform, Indian Express.com*
3. *A. Shaji George; One Nation, One Election : An Analysis of the pros and cons of Implementing Simultaneous Election in India- September 2023*
4. *दीपक रस्तोगी; जानें–समझे, एक देश, एक चुनाव पर चर्चा : कैसे मुमकिन है और क्या बदल जाएगा, आलेख, जनसत्ता, 01.12.2020*
5. *The Hindu Explains : One Nation, One Election आलेख, द हिन्दू 19.06.2019.*
6. *भारत का संविधान : सिद्धांत और व्यवहार कक्षा 11 से लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, मई 2006, पृ. 65*
7. *एस वाई कुरैशी; An Undocumented Wonder : The Making of the Great Indian Election.*
8. *क्रोनिकल, जून 2015.*

Paper Received : 12 Feb., 2025 ***Paper Accepted : 26 Feb., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 160-164

बाल गंगाधर तिलक के भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा

*डॉ. मधू मिश्र **

सारांश

बाल गंगाधर तिलक के भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा में तिलक का राष्ट्रीय योगदान महत्वपूर्ण रहा है। तिलक जी का नारा था अनुनय विनय नही अपितु युयुत्सा जिसे क्रांतिकारियों ने अपना आदर्श बनाया था। लोकमान्य तिलक जी का जन्म २३ जुलाई १८५६ को रत्नागिरी , महाराष्ट्र के एक साधारण परिवार में हुआ था। ये भारत में अंग्रेजी शासन को अभिशाप समझते थे तिलक जी एक अच्छे पत्रकार थे उन्होंने अंग्रेजी में मराठा तथा मराठी में केसरी साप्ताहिक अखबार निकाला। इनके विचारों को पढ़कर जनता में स्वतंत्रता तथा स्वदेशी की भावना ने प्रबलता धारण की इन्होनें बंग भंग के खिलाफ खूब लेख लिखे ।भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा में उनका नारा था – स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर ही रहेंगे राष्ट्र हित के प्रयासों के चलते तिलक जी को कैद करके ६ वर्षो के लिए बर्मा के मांडले जेल में भेज दिया गया जहाँ इन्होनें गीता रहस्य नामक ग्रन्थ लिखा और देश को कर्मयोग की प्रेरणा दी अपने देश के लिए भाग दौड़ तथा मधुमेह नामक बीमारी के कारण 1 अगस्त 1920 को इनकी मृत्यु हो गयी। वायसराय लार्ड कर्ज़न ने 1905 में बंगाल विभाजन किया तो तिलक ने इस विभाजन को रद्द करने की मांग का समर्थन किया था तथा विदेशी माल के बहिष्कार की वकालत की जो जल्दी ही एक देशव्यापी आन्दोलन बन गया साल १६०७ में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में भी उनका नरम दल के नेताओ के साथ वाद – विवाद हुआ पुणे में फैले प्लेग एवं अकाल की भी इन्होने कटु आलोचना की थी। देश वासियों को स्वराज्य दिलाने के लिए गांव–गांव, मोहल्ले –मोहल्ले जाकर होम रूल लीग के उद्देश्य को समझाया था पूर्ण स्वराज्य तिलक जी का सपना था अफसोस की वे स्वतंत्र भारत को अपने आखो से नहीं देख पाए और इस दुनिया से विदा हो गये राष्ट्रवादी नेताओ को राष्ट्रवाद की प्रेरणा भारत की प्राचीन संस्कृति की गौरवमयी नव चेतना के जागरण से प्राप्त हुई थी। तिलक हमारे भारत के एक ऐसे महान राष्ट्रवादी व्यक्ति थे जो देशप्रेम के धनी थे तथा दूसरों के अंदर भी देश प्रेम की भावना बड़ी आसानी से उत्पन्न कर देते थे उनके इस कार्य के लिए भारत देश सदैव उनका ऋणी रहेगा।

***मुख्य शब्द** – तिलक का धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक योगदान*

---

* *कचनावाँ धम्मौर, जनपद सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश*

तिलक का धार्मिक योगदान

भारतीय राष्ट्रवाद की धार्मिक अवधारणा का सिद्धांत बनाने का श्रेय तिलक जी का है। तिलक धर्म को राष्ट्रवाद की भावना ,परिस्थितियों और मान्य परम्पराओं के अनुरूप विकसित करना चाहते थे, तिलक ' स्वदेशी राष्ट्रवाद ' के समर्थक थे तिलक का मत था "हमें अपने संस्थाओं का अंग्रेजीकरण नही करना चाहिए''। तिलक महान कर्मयोगी थे, जो अंतिम साँस तक स्वराज्य के लिए संघर्षरत रहे , अंग्रेजी सरकार ने उन्हें मांडले की वर्मा जेल में बंद कर मिटाने का प्रयास किया लेकिन तिलक जी अपना कार्य करते हुए पूरे जोश से आगे बढ़ते रहे।

तिलक 'हिन्दू राष्ट्र' के विचार को मानते थे और हिंदुओं को एकजुट करने के लिए 'गणेश उत्सव एवं शिवाजी उत्सव 'को शुरू किया परन्तु शीघ्र ही उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता को आधार बना लिया तथा समस्त देशवासियों के लिए स्वराज्य की मांग की, तिलक ने राष्ट्रवाद को राष्ट्रधर्म कहा इनका राष्ट्रवाद बहुआयामी था इसके द्वारा ही वे भारत के पूर्ण जीवन में क्रन्तिकारी बदलाव लाना चाहते थे ये पहले नेता थे जिन्होंने राष्ट्रवाद को उसकी संपूर्णता में प्रकट किया यही राष्ट्रवाद समग्र धार्मिक राष्ट्रवाद कहलाता है।

तिलक का सामाजिक योगदान

वे तत्कालीन सामाजिक दशा से असंतुष्ट थे परन्तु अंग्रेजी सरकार द्वारा किए गये सामाजिक सुधार के कार्य को सही नही मानते थे इनके अनुसार सामाजिक सुधार " हिंदू समाज का आंतरिक मामला था" इसके लिए कानूनी बाध्यता नही बल्कि लोगो की सहमति लेना आवश्यक था। अतः सामाजिक सुधार से पहले सामाजिक जागृति उत्पन्न होना चाहिए सुधारो का आधार स्वदेशी मूल्य ही होना चाहिए पश्चिमी मूल्य नहीं। तिलक बाल विवाह के घोर विरोधी थे और स्त्री शिक्षा तथा विधवा उद्धार के पूर्ण समर्थक थे तिलक जी सभी जाति के व्यक्तियों के साथ खान पान रखते थे शिवाजी उत्सवों में दलित व्यक्तियों को सम्मान पूर्वक शामिल किया उन्होंने अपनी पुत्रियों को शिक्षा देने के बाद उनका विवाह किया।

"नागरी प्रचारिणी सभा" के वार्षिक सम्मलेन में भाषण करते हुए पूरे भारत के लिए समान लिपि के रूप में "देवनागरी"की वकालत की और कहा कि समान लिपि की समस्या ऐतिहासिक आधार पर नही सुलझायी जा सकती उन्होंने तर्कपूर्ण ढंग से दलील दी की रोमन लिपि भारतीय भाषाओ के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है १६०५ में नागरी प्रचारिणी सभा में उन्होंने कहा था 'देवनागरी को समस्त भारतीय भाषओं के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए'।

तिलक का राजनीतिक योगदान

बाल गंगाधर तिलक अपनी राष्ट्रभक्ति देश के प्रति अपने अथक त्याग व बलिदान के लिए जाने जाते हैं राजनीति के सन्दर्भ में तिलक ने आदर्शवादी मार्ग नही अपनाया ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह उनके अंग–अंग में निहित था ये जीवन भर नौकरशाही के लिए खतरा बने थे राष्ट्रीय आन्दोलन को नया जीवन देने के लिए दो उत्सव तथा दो समाचार पत्रों का संपादन किया तिलक ने कहा था , "भाट की तरह से गुणगान करने से स्वतंत्रता नहीं मिल जाएगी , स्वतंत्रता के लिए शिवाजी और बाजीराव की तरह साहसी कार्य करने पड़ेगे"

1897 में दक्षिण के दुर्भिक्ष के समय जनता की बहुत सेवा की तथा किसानों से कर न चुकाने के लिए इन शब्दों में कहा," क्या आप इस समय भी साहसी नहीं बन सकते जबकि मौत आपके सर पर नाच रही हो"। लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र केसरी में "देश का दुर्भाग्य" नामक शीर्षक से लेख लिखा जिसमे ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध किया उनको भारतीय दंड संहिता की धारा 124–ए के अंतर्गत राजद्रोह के अभियोग में 27 जुलाई 1897 को गिरफ्तार कर लिया गया तथा 6 वर्ष के कठोर कारावास के अंतर्गत मांडले (बर्मा) जेल में बंद कर दिया गया। तिलक ने कारावास में एक किताब भी लिखी कारावास समय पूर्व ही इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, इसकी जानकारी उन्हें जेल में एक खत से प्राप्त हुई तिलक को इस बात का अफसोस था कि वे अपनी मृतक पत्नी के अंतिम दर्शन भी न कर सके। श्री राम गोपाल के अनुसार "गाँधी जी ने तिलक के मृत्यु के बाद जो आन्दोलन किए तिलक ने पहले ही कर लिए थे उनका जीवन दिव्य था देशवासियों ने उन्हें लोकमान्य कहा और तिलक भगवान भी कहकर पुकारा वे चारो ओर से अँधेरे में प्रकाश की ज्योति की तरह सामने आए"। मुंबई के गवर्नर ने भारत के मंत्री को लिखा था , तिलक मुख्य षड्यंत्रकारी हैं तथा इनका एक ही उद्देश्य है अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेका जाए। सन 1908 में मार्टिन लीडर समाचार पत्र नें लिखा था, "तिलक का निजी प्रभाव देश पर अन्य सभी से बढ़कर है वे दक्षिण के सबसे प्रमुख व्यक्ति हैं मुंबई से लेकर बंगाल की खाड़ी तक गरम विचार वाले लोग उनकी धार्मिक भावना से पूजा करते हैं सूरत में राष्ट्रीय कांग्रेस की फूट उनका ही काम था उन्होंने इसकी योजना बनाई , इसका प्रचार किया तथा साधारण आन्दोलन को दिशा दी जिसके विरुद्ध नौकरशाही अब अपने सभी साधनों को एकत्रित कर रही है वे एक साथ विचारक भी हैं और योद्धा भी"।

निष्कर्ष

एक राजनीतिक नेता के रूप में तिलक विवाद और गलतफहमियों का शिकार रहे। उन्हें आमतौर पर एक अदम्य उपद्रवी, सामाजिक प्रतिक्रियाबाद का समर्थक, पुरातनपंथ का दूत और एक सांप्रदायिक माना जाता है जिसका काम हिंदू–मुस्लिम तनाव भड़काना था। लेकिन सच्चाई कुछ और ही थी।

वह सामाजिक सुधारों के विरोधी नहीं थे। इसके विपरीत, वह मानव चेतना की प्रगति और ज्ञानादेय के साथ सुधारों की अनिवार्यता में विश्वास करते थे। उनका विरोध जो उन ऊलजलूल, बेलिहाज लहाज और एकदम किये जाने वाले बदलावों से था, जिनकी वकालत पश्चिमी प्रभाव के सुधारक करते थे। एक ओर तिलक और उनके सहयोगियों के बीच कटु और लंबे विवाद ने, और दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बुजुर्ग उदारवादी नेताओं ने, अंततः उस संगठन को तोड़ दिया और 1907 में उसके दो टुकड़े हो गये। इससे कभी–कभी उनकी छवि एक विवादास्पद व्यक्ति की हो गयी जिसका काम संस्थाओं को तोड़ना था। लेकिन सच्चाई यह थी कि तिलक एक प्रखर राष्ट्रवादी थे और ऐसी किसी भी चीज को स्वीकार नहीं कर सकते थे, जो उन्हें स्वराज के अंतिम लक्ष्य से दूर ले जाये। उनके विरोधियों की उम्र या प्रतिष्ठा उन्हें खामोश नहीं कर सकती थी। वह तभी खामोश होते थे जब उनके सामने कोई आश्वस्त करने वाला तर्क रखा जाये। उन्हें उदारवादी युक्तियों को चालू रखने में क्योंकि कोई औचित्य दिखायी नहीं देता था, इसलिए वह इसके खिलाफ लड़े और वह सुनिश्चित किया गया कि कांग्रेस सही तरीके अपनाये।

हिदू धर्म और राष्ट्रवाद का तिलक के चितन से घनिष्ठ संबंध था, फिर भी उन्हें सांप्रदायिक कहना उचित नहीं होगा। वह इस बात के लिये उत्सुक थे कि हिंदू एक हो जायें, लेकिन वह यह भी चाहते थे कि यह एकता अनन्य (या, दूसरों को काट कर) न हो। भारत जैसे अनेक धर्मों वाले समाज में विभिन्न धर्मों और संप्रदायों को वैध स्थान प्राप्त था। जैसा कि हम बता चुके हैं, तिलक का दृष्टिकोण राजनीतिक मसलों के प्रति यथार्थवादी था और वह राजनीतिक लाभ के लिये धर्म के दुरुपयोग के खिलाफ थे। वह इस बात के भी खिलाफ थे कि अल्पसंख्यकों को राजनीतिक और दूसरी रियायतें दे कर उन्हें तुष्ट किया जाये, क्योंकि, ऐसी हालत में, अल्पसंख्यक हमेशा अल्पसंख्यक ही बने रहना चाहेंगे और एक समय आयेगा कि उनके पास इतनी शक्ति हो जायेगी कि वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया में रुकावट डाल सकें। संप्रदायों को आपसी धार्मिक

और आध्यात्मिक समझ की बुनियाद पर एकजुट होना चाहिये। भारत जैसे राष्ट्र में, जहां लोग अलग–अलग धर्मों को मानते हैं, यह सबसे महत्वपूर्ण बात है।

संदर्भ

1. *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साईन्स, नोट नम्बर–36, पेज–389*
2. *इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वोल्यूम–27 यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, 1988, पेज–468 और 469*
3. *पी०सी० वशिष्ट, आधुनिक राजनीतिक चिंतनधारा, अनु बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ, पेज–189*
4. *ए०आर० देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, 1966, पेज–1*
5. *डॉ० एस०सी० सिंघल पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा प्रकाशन, पेज–221–22*
6. *बाल गंगाधर तिलक–आर्कटिक होम इन द वेद, पेज–7*
7. *एस०ए० बुलपर्ट– लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, पेज–305*
8. *विवेकानंद भारत से संबंधित विचार–विवेकानंद साहित्य भाग–2*
9. *विवेकानंद साहित्य भाग–4, पेज–78*
11. *लेनिन–इन्फ्लेमेयल मैटीरियल इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स, साभार–रजनी पाम दत्त की पुस्तकः आज का भारत, मैकमिलन प्रकाशन इंडिया, 1908, पृ0 122*
12. *क्रांत, स्वाधीनता संग्राम के क्रन्तिकारी साहित्य का इतिहास (1 संस्करण). नई दिल्ली प्रवीण प्रकाशन, 2006, पृ. 369–375*
13. *गुहा रामचंद्र–मेकर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया, पृ० 107–118*
14. *वेंकटेश्वर राव–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 115*

Paper Received : 03 Feb., 2025 **Paper Accepted : 15 Feb., 2025**

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 165-174

भारतीय परिप्रेक्ष्य में शारीरिक शिक्षा और खेल–कूद

कृष्ण कुमार विश्वकर्मा *
डॉ० अनुराग पाण्डेय **

सारांश

मानव जाति के सर्वांगीण विकास में खेल–कूद और–शारीरिक शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान हैं। खेल–कूद मनोरंजन, स्वास्थ्य और कल्याण का एक मंच होने के साथ–2, समाज के भीतर सद्भाव बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। खेल–कूद के क्षेत्र में प्राप्त उलब्धियों को सदैव देश के गौरव और प्रतिष्ठा के रूप में देखा जाता रहा है। आधुनिक खेलों की दुनिया में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा के साथ–2, आधुनिक बुनियादी संरचना, उपकरणों और उन्नत वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने दुनिया भर में कुलीन खेलो, के परिदृश्य को बदल दिया है। खेलो इण्डिया योजना ने देश में खेल संस्कृति को बढ़ावा दिया है जिससे खेलों के क्षेत्र में उत्कृष्टता हासिल की जा सके तथा संपूर्ण देश में खेल संस्कृति को प्रोत्साहित किया जा सके जिससे लोग खेल के महत्व को समझ सके और उसके उपयोग से बच्चों और युवाओं का समग्र स्वस्थ विकास हो तथा स्वस्थ जीवन शैली और राष्ट्रीय गौरव प्राप्त हो सके। फिट इंण्डिया कार्यक्रम एक जन केन्द्रित आन्दोलन है है जो 'हम फिट तो इंडिया फिट', 'फिटनेश का डोज आधा घंण्टा रोज' जैसे कार्यक्रम को संचालित कर रहा है जिससे लोग सक्रिय जीवन शैली में वापस आ सके। स्वस्थ जीवन शैली सदैव से ही भारतीय संस्कृत का अभिन्न अंग रही है। इसी को दृष्टिगत रखते रखते हुए इस शोधपत्र में भारत में खेल–कूद तथा शारीरिक की के प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक विकास क्रम को रेखांकित करने का प्रयास किया जायेगा। इस शोध पत्र की प्रकृति वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक है। इसमें आकड़ों के एकत्रीकरण व संकलन हेतु द्वितीयक आंकडे तथा विद्वत जनों से परिचर्चा की गयी है साथ ही अवलोकन प्रविधि तथा आवश्यकतानुसार तुलनात्मक पद्वति का प्रयोग किया गया है।

कूट शब्दः *खेल–कूद ,शारीरिक शिक्षा, गतिविधियां, सहनशीलता, फिट इंडिया, फिटनेस।*

भारत में शारीरिक शिक्षा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। संपूर्ण विश्व में भारत को योग के जन्मस्थली के रूप में जाना जाता है। भारत में ही

---

* *शोधार्थी एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय अकबरपुर ,अंबेडकर नगर, उ0प्र0।*

** *असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, डा0 रा0म0लो0 अवध विश्वविद्यालय आवासीय परिसर, अयोध्या, उ0प्र0।*

सर्वप्रथम शरीर और आत्म तत्व की संकल्पनाओं को सूक्ष्म रूप से जाना गया था। प्राचीन भारतीय सामूहिक खेलों को बहुत अधिक पसंद करते थे। कुशल धनुर्धरों की कलाओं ,शक्तिशाली मल्ल योद्धाओं के पराक्रम एवं बल तथा कुशाग्र एवं चपल नटों की कलाबाजी देखने में भारतीय लोग अत्यंत हर्षित एवं आनंदित होते थे। इस प्रकार के उत्सव राजाओं द्वारा अपने राज्य में आयोजित कराए जाते थे जो प्रशिक्षण काल पूर्ण कर चुके युवाओं के लिए अपने साहस, शौर्य बल, एवं कौशल को प्रदर्शित करने के लिए एक मंच प्रदान करते थे। यूनान ने पश्चिमी जगत को शारीरिक विकास, शारीरिक कुशलता एवं शारीरिक सौंदर्य की अवधारणा से परिचित कराया। यूनान में शारीरिक सौंदर्य एवं शारीरिक कौशल को इतना अधिक महत्व दिया जाता था की यूनानी समाज के कुछ सबसे बड़े राष्ट्रीय सम्मान एथलीटों को ही दिए जाते थे।

शोध पत्र का उद्देश्य

- भारतीय समाज में प्राचीन काल में शारीरिक शिक्षा तथा खेल–कूद गतिविधियों का अध्ययन एवं विश्लेषण करना ।
- स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात शारीरिक शिक्षा तथा खेल–कूद गतिविधियों का तथ्यात्मक एवं तार्किक विश्लेषण
- वर्तमान में शारीरिक शिक्षा तथा खेल–कूद गतिविधियों की स्थिति।

सैन्धव घाटी सभ्यता में जो की एक नगरी सभ्यता थी।[1] मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की पुरातत्व जांच हमें सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान शारीरिक क्रियाओं के बारे में सोचने का अवसर प्रदान करती है। इस सभ्यता की एक विशिष्ट पुरातत्वीय खोज तरण ताल की हुई है जो 1200 वर्ग मीटर क्षेत्र में निर्मित था और मोहनजोदड़ो में स्थित था। यह दर्शाता है कि फुर्सत के समय लोग तैराकी करते थे। एक मिट्टी की मोहर मिली जिसमें की एक बड़े हृष्ट–पुष्ट नायक का चित्रांकन है। उसने दो शेरों को अपनी तरफ गले को पकड़ा है यह दर्शाता है कि उस समय लोग बड़े साहसी व ताकतवर थे क्योंकि नायक के हाथ में कोई शस्त्र नहीं था। खेल के तौर पर अन्य मिट्टी की मोहरें, मनुष्य को भैंसों या बैलों के ऊपर छलांग लगाते हुए दर्शाते हैं। नृत्य करती हुई लड़की की कांस्य प्रतिमा से यह संदेश मिलता है कि पूर्व वैदिक काल में लोगों में नृत्य पसंदीदा मनोरंजन था। शिकार, बैल की लड़ाई, पांसा खेलना जैसे लोकप्रिय मनोरंजन के साधन थे।[2] वैदिक एवं उपनिषद् काल के दौरान एवं इसके बाद भी जीवन के एकीकृत उद्देश्य पर बल दिया गया है। जिसके लिए एकीकृत शिक्षा के निर्धारण को महत्वपूर्ण माना गया है। इस व्यवस्था में भौतिक

एवं आध्यात्मिक दोनों ध्रुवों को स्थान दिया गया तथा आत्मानुभूति के मार्ग में प्रथम स्तर शारीरिक स्व की अनुभूति है। महाकवि कालिदास ने भी कुमारसंभवम् में लिखा है–'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्[3] अर्थात सभी धर्म का साधन तो शरीर है। एक स्वस्थ शरीर ही जीवन को आदर्श ढंग से जीने का सच्चा साधन प्रदान करता है। यह वाक्य जीवन में शारीरिक शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करता है और यही कारण है कि सभी कालों में शारीरिक शिक्षा को शैक्षिक पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया गया है। महाकाव्य काल समृद्ध शारीरिक गतिविधियों को दर्शाता है रामायण और महाभारत, पुराण, बौद्ध और जैन साहित्य उस समय के शारीरिक संस्कृति प्रतिरूप को दर्शाते हैं। रामायण और महाभारत के समय बहुत से नायक हुए हैं जिन्होंने धनुष, कुश्ती, गदा युद्ध, रथ दौड़ और बड़े शास्त्रों में निपुणता दिखाई है।

महाकाव्य काल में धनुर्विद्या अत्यंत प्रचलित थी किंतु धनुर्वेद केवल धनुर्विद्या से ही संबंधित नहीं था अपितु इसके अंतर्गत युद्ध क्षेत्र में प्रयोग होने वाले सभी अस्त्र–शस्त्रों का अध्ययन सम्मिलित था। विभिन्न अस्त्र–शस्त्रों को उच्च दक्षता के साथ प्रयोग करना और युद्ध क्षेत्र के कौशलों में पारंगत होने के लिए व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से उच्च कोटि की शारीरिक सुगठता के साथ–साथ गति, बल, सहनशीलता एवं चपलता को विकसित करने की आवश्यकता थी। इन सभी शारीरिक गुणों का विकास व्यायाम और आखेट जैसे खेलों के माध्यम से किया जाता था। युद्ध कला की विभिन्न तकनीकी को सीखने के लिए एक विशेष गहन शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता था। योद्धाओं को विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्र को चलाने की तकनीकी में कुशल बनाया जाता था। अश्व संचालन एवं रथ संचालक के कौशलों को सिखाया जाता था।[4] इसके अतिरिक्त मल्ल युद्ध भी अत्यंत प्रचलित था जिसमें योद्धा केवल हाथों के द्वारा कुश्ती करते थे। इसके लिए मल्ल योद्धा को शरीर के मर्मस्थानो के बारे में सूक्ष्म एवं विस्तृत ज्ञान होना आवश्यक होता था। इस ज्ञान के सही उपयोग से इस कला में विजय प्राप्त की जाती थी ।

प्राचीनकाल में ऋषियों ने शिक्षा का उद्देश्य पूर्णता को माना है। इस कारण ऋषियों ने शिक्षा में प्राणी की सौंदर्य संबंधी आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया है। महाभारत में अर्जुन जो की एक महान योद्धा थे नृत्य कला में भी उतना ही निपुण थे। ऋग्वेद में यह स्पष्ट उल्लेख है कि स्त्री सेना में अधिक संख्या में सम्मिलित होती थी। रामायण में रानी कैकेई राजा दशरथ को स्मरण कराती हैं कि कैसे उन्होंने रणक्षेत्र में उनके घायल होने पर उन्हें सकुशल रणक्षेत्र से बाहर निकाली थी। धनुर्वेद में भी इस बात का उल्लेख है कि

राजसी परिवार के स्त्रियों को अश्व संचालन एवं रथ संचालन जैसी क्रियाओं का प्रशिक्षण दिया जाता था।

आयुर्वेद में शरीर के वात, पित्त एवं कफ में साम्य रखने तथा व्यायामों को सही अनुपात में करनें से शरीर को सुसंगठित रूप से विकसित करने और शरीर के मर्मस्थानो के बारे में विस्तार पूर्वक बताया जाता था। धनुर्वेद के अंतर्गत रण कौशल एवं आयुधों को चलाने के लिए शरीर में बल, सहनशीलता, चपलता, एकाग्रता को विकसित करने पर जोर दिया गया है। गंधर्ववेद के अंतर्गत गायन ,वाद्ययंत्र एवं नृत्य की शिक्षा सम्मिलित होती थी। शारीरिक शिक्षा को चार कलाओं धनुर्विद्या, युद्ध कला, रथ संचालन एवं संगीत व नृत्य से संबद्ध किया गया था। नालंदा विश्वविद्यालय व्यक्तित्व के सभी पक्षों से संबंधित जैसे शारीरिक, बौद्धिक, सौंदर्यात्मक एवं आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का केंद्र था। शिक्षा का उद्देश्य बालक को धीरे–धीरे आत्मानुभूति के मार्ग में आगे बढ़ाना है। सबसे पहले वह अपने शारीरिक स्व की अनुभूति करेगा और यह अनुभूति दैनिक जीवन की नियमित आदतों, अच्छे स्वास्थ्य और शारीरिक सुगठता के विकास योगाभ्यास और व्यायाम के द्वारा ही संभव है।[5] जैसा कि श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता में उपदेश देते हुए स्पष्ट कहा है कि–दुखों को नाश करने वाला योगाभ्यास तो उपयुक्त आहार–बिहार एवं उपयुक्त चेष्टाओ तथा उचित निद्रा एवं जागरण करने वाले का ही सिद्ध होता है और इसके द्वारा ही आत्मानुभूति के प्रथम स्तर शारीरिक स्व की अनुभूति द्वारा इंद्रियों को नियंत्रित रखा जा सकता है।

समुद्रगुप्त जिन्हें कुछ सिक्कों पर सिंह के साथ लड़ते हुए दिखाया गया है, समुद्रगुप्त युद्ध कला में निपुण थे। समुद्रगुप्त के राजभवन के निचले तल पर एक विशाल जिम्नेजियम बना था। इस राजभवन में युवा राजकुमारों को विभिन्न विषयों एवं कलाओं के साथ शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आहार, व्यायाम, योगाभ्यास की शिक्षा देकर भावी जीवन के लिए निपुण बनाया जाता था।

मध्यकाल में धर्मगुरु समर्थ रामदास ने शारीरिक शिक्षा के महत्व को स्वीकारा और देशभर में भ्रमण कर भगवान हनुमान के मंदिर के साथ जिम्नेजियम और अखाड़े चलाने के लिए लोगों को प्रेरित किया। उनके प्रयासों से देश भर में अनेक अखाड़े एवं जिम्नेजियम का निर्माण हुआ। इस काल में राजपूतों के प्रिय खेलों में घुड़सवारी ,तलवारबाजी ,भाला फेंकना और तीरंदाजी थे। मनोरंजन के लिए शतरंज एवं चौपड़ का खेल अत्यंत लोकप्रिय था।

भारतीय मुगलों के शासन काल में, शारीरिक प्रशिक्षण को महत्वपूर्ण माना गया। इस काल में एक और मान्यता थी कि सही अनुपात एवं मात्रा में व्यायाम किए बिना कोई व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता। मुस्लिम काल में कुश्ती अत्यंत लोकप्रिय खेल था जो ग्रामीण परिवेश में भी काफी लोकप्रिय था। पोलो (चौगान) राजसी मुसलमानों द्वारा खेला जाने वाला खेल था। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु चौगान खेलते हुए हुई थी।[6] अकबर भी आगरा एवं फतेहपुर सीकरी के किले में शाम के समय इस खेल को खेलते थे अकबर तलवारबाजी में भी निपुण थे।

ब्रिटिश काल में सर्वप्रथम सन् 1882 में पहली बार भारतीय शिक्षा संघ ने युवाओं के हित में विद्यालय की प्रत्येक कक्षा में शारीरिक प्रशिक्षण को बढ़ावा देने की अनुशंसा की। सन् 1884 में शारीरिक शिक्षा को विद्यालय पाठ्यक्रम में अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित करने पर सहमति बनी, किंतु अंग्रेजों ने भारतीय स्वदेशी क्रियाकलापों को कम महत्व देते हुए स्कूलों में पश्चिमी खेलों को अधिक बढ़ावा दिया। इसके लिए भारतीय स्कूलों में मैकलरन सिस्टम (जर्मनी की जिमनास्टिक पद्धति) लिंग सिस्टम, स्वीडिश ड्रिल एवं मिलिट्री ड्रिल, डैनिस सिस्टम से मार्किंग एवं लयबद्ध व्यायामों तथा आधुनिक ब्रिटिश खेलो जैसे फुटबॉल, हॉकी, क्रिकेट एवं टेनिस को शारीरिक प्रशिक्षण एवं शारीरिक सुगठता के साधनों के रूप में स्कूली पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया।[7]

भारत में स्काउटिंग 1909 में प्रारंभ हुई जब कैप्टन टी .एच. बेकर ने बेंगलुरु में प्रथम स्काउट दल को स्थापित किया। भारत में पहली गाइड कंपनी मध्य भारत के जयपुर में सन् 1911 में स्थापित की गई थी। इन स्काउट एवं गाइड इकाइयों में केवल यूरोपीय एवं आंग्ल–भारतीय समुदाय के बच्चे ही सदस्य बन सकते थे। सन् 1916 में एनी बेसेंट ने जी.एस.अरुण्डल के साथ मिलकर मद्रास में इंडियन बॉयज स्काउट संगठन की स्थापना की। सन् 1918 में पंडित मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में पंडित हृदयनाथ कुंजरू एवं पंडित श्री राम बाजपेई ने इलाहाबाद में सेवा समिति बॉयज स्काउट संगठन की स्थापना की। इस प्रकार का प्रशिक्षण केवल चुनिंदा स्कूलों एवं विश्वविद्यालय में ही दिया जाता था।

श्री हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल : हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल अमरावती महाराष्ट्र की स्थापना अनंत कृष्ण वैद्य एवं अंबादास वैद्य नामक बंधुओ ने सन् 1914 में हनुमान अखाड़े के रूप में की थी। वैद्य बंधुओ को विदर्भ क्षेत्र में शारीरिक शिक्षा आंदोलन का संस्थापक एवं पथ प्रदर्शक माना

जाता है। वैद्य बंधुओं ने इस हनुमान क्लब की स्थापना दो मुख्य उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया था–

प्रथम शारीरिक शिक्षा के आंदोलन को भारतीय पुनर्जागरण के राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जोड़ना।

द्वितीय भारत की परंपरागत व्यायाम पद्धति को इस प्रकार से व्यवस्थित एवं आधुनिकीकृत करना कि उसमें शारीरिक शिक्षा की पश्चिमी पद्धति एवं विधियों के महत्वपूर्ण तत्वों को समावेशित किया जा सके। सन् 1918–19 में हनुमान क्लब का नाम परिवर्तित करके हनुमान व्यायाम मंदिर कर दिया गया। इस प्रकार यह मंडल जिमनास्टिक संस्थाओं को बढ़ावा देने वाले एक समर्पित संगठन के रूप में विकसित हुआ। सन् 1936 में बर्लिन जर्मनी में संपन्न ओलंपिक खेलों में मंडल ने भारतीय व्यायाम संस्कृति की अभूतपूर्व प्रस्तुति दी। और वर्ष 1949 में मंडल ने स्टॉकहोम, स्वीडन में आयोजित दूसरे लिंगयाड में भारतीय व्यायाम पद्धति एवं परंपरागत खेलों को प्रदर्शित किया। श्री हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल ने महिलाओं को शारीरिक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से एक महिला प्रभाग का गठन किया। वर्ष 1946 में श्री हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल से शारीरिक संस्कृति एवं मनोरंजन में डिप्लोमा प्रदान किया जाने लगा।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में शारीरिक शिक्षा एवं खेल–कूद विश्लेषणः भारतीय संविधान के अनुसार खेल–कूद राज्य का विषय है। इसके बावजूद केंद्र सरकार शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद को बढ़ावा देने के लिए विविध कार्यक्रम चलाती है। केंद्र सरकार द्वारा यह कार्य राष्ट्रीय खेल परिसंघों को उनके काम–काज के बारे में दिशा निर्देश देकर प्रशिक्षण शिविर लगाने और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में टीम भेजने के लिए वित्तीय सहायता देकर राज्यों की खेल–कूद परिषदों को अनुदान देकर विभिन्न खेलों के प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना कर शारीरिक शिक्षा के उच्च स्तरीय अध्ययन साहित्य एवं शोध के विकास हेतु अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों को अनुदान देकर किया जाता है।

भारत में शारीरिक शिक्षा और खेल को औपचारिक शिक्षा के साथ जोड़ने पर जोर प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही दिया जा रहा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ग्वालियर में लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान और पटियाला में राष्ट्रीय खेल संस्थान की स्थापना की गई। राष्ट्रीय कोचिंग स्कीम और ग्रामीण खेल कार्यक्रम तीसरी पंचवर्षीय योजना में प्रारंभ किए गए और

इसे चौथी तथा पांचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान बढ़ावा दिया गया। छठी पंचवर्षीय योजना में खेल प्रतिभाओं की खोज और उनके प्रशिक्षण पर जोर दिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में मुख्य रूप से खेल अवसंरचना के निर्माण पर ध्यान केंद्रित किया गया। विशिष्ट क्षेत्र खेल–कूद पहुंच के माध्यम से ग्रामीण खेलों के विकास पर जोर आठवीं पंचवर्षीय योजना में दिया गया। नवी पंचवर्षीय योजना में आधुनिक खेल और अवसंरचना की आवश्यकता पर बल दिया गया। दसवीं पंचवर्षीय योजना में खेल के व्यापक आधार को बढ़ावा देने और खेल में उत्कृष्टता को बढ़ावा देने के लिए प्रस्ताव लाया गया। 11वीं पंचवर्षीय योजना में किशोर और युवाओं के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम और पंचायत युवा क्रीड़ा और खेल अभियान (पायका) नाम के दो कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं। 12वीं पंचवर्षीय योजना में शारीरिक शिक्षा तथा खेल–कूद गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए कई उद्देश्य बनाए गए–जिनमें शारीरिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना, खेलों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना तथा खेलों को रोजगार के साधन के रूप में देखना प्रमुख था।[8] इसके अतिरिक्त खेल अवसंरचना को बेहतर बनाना, खेल प्रतिभाओं की पहचान और उनका विकास करना तथा खेलों को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता अभियान सम्मिलित था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शारीरिक शिक्षा और खेल–कूद को बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया है तथा इसे नियमित पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शारीरिक शिक्षा तथा खेल–कूद गतिविधियों से जुड़े प्रमुख तथ्य निम्नलिखित है–

01. शारीरिक शिक्षा को बच्चों के स्वस्थ और फिट रहने में मदद करने के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है।
02. खेलकूद को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर बल दिया गया है।
03. शारीरिक शिक्षा और खेल–कूद तथा योग शिक्षा को प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य किए जाने की बात कही गई है।
04. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्कूलों को छात्रों को विभिन्न प्रकार की शारीरिक गतिविधियों तथा खेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने पर जोर दिया गया है।
05. शारीरिक शिक्षा को बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए नितांत आवश्यक बताया गया है।

06. खेल–कूद में आनंद लेना बच्चों की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए ऐसा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य है।

07. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य लड़कियों को खेल–कूद में आगे बढ़ाना है।

शोधपत्र का महत्व : खेल स्वस्थ जीवन का अभिन्न अंग है लेकिन सभ्यता के विकास क्रम में अध्ययन की बढ़ती महत्ता ने खेलो शारीरिक शिक्षा और खेल–कूद को पढ़ाई से कमतर का दिया। पूर्व में एक लोकोक्ति प्रचलित थी 'खेलोगे–कूदोगे होगे खराब, पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नबाव' । वर्तमान में दिनों दिन खेल–कूद और शारीरिक शिक्षा के बढ़ते महत्व और उपयोगिता ने इस लोकोक्ति को बदल दिया है। व्यवसायिक शिक्षा में खेल–कूद इन दिनों सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय बना हुआ है। शारीरिक शिक्षा की लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती जा रही है फिट इण्डिया जैसे कार्यक्रम और योग को मिली वैश्विक पहचान से इसका महत्व स्वयंसिद्ध है। आज के डिजिटल युग में स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। बेहतर स्वास्थ्य को लिए तथा शारीरिक व मानसिक रोगों से बचाव के लिए शारीरिक शिक्षा व खेल–कूद आवश्यक माना जाता है।

सुझाव

01. खेल–कूद में कैरियर की सुनिस्चितता बड़ा ही अनिश्चित होता है और उनमें अच्छे अवसर कम मिलते है, इस क्षेत्र में स्थापित्व सुनिश्चित कर खेलों में रुचि बढ़ायी जा सकती है।

02. खेलों में भेद–भाव को कम कर उसे सार्वभौमिक बनाने पर जोर दिया जाए । क्रिकेट, फुटबाल व टेनिस के अतिरिक्त खो–खो, तीरंदाजी, ताइक्वांडो जैसे अन्य खेलो को भी समान महत्व का माना जाए।

03. आज भी जनपद स्तर और नगरीय क्षेत्रों तथा ग्रामीण, ब्लाक व तहसील स्तर पर खेल परिसरो और अकादमियों की कमी है। जिसके कारण इसे और अधिक बढ़ावा देने की आवश्यकता. है।

04. खेलों में प्रशिक्षण के लिए भारी निवेश की आवश्यकता होती है इसे देखते हुए खेल प्रतिभाओं को आगे बढ़ाने के लिए खेल क्षेत्र में अलग से छात्रवृत्ति की व्यवस्था कर की जा सकती है।

05. खेल प्रतिभाओं के उचित मार्गदर्शन के लिए कोच व कोचिग की समुचित व्यवस्था पर बल दिया जाए। स्कूल स्तर पर निर्धारित घंटे को छुट्टी का समय मान लिया जाता है। इसलिए निगरानी की आवश्यकता है।

06. स्थानीय और परमारागत खेलों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

07. केन्द्र व राज्य सरकारें सामाजिक विज्ञापनों द्वारा लोगों को खेलो तथा उनसे जुड़े सरकारी कार्यक्रम व नीतियों से अवगत करा सकती है, जिससे लोगों को खेलो का हिस्सा बनने की प्रेरणा व अवसरों का पता चलेगा।

08. सोसल मीडिया, चौनलों द्वारा दूर दराज के क्षेत्रों में छिपी प्रतिभाओं को उजागर का सकते है इसके लिए उन्हे आगे आना होगा ।

09. अन्य क्षेत्रों की तरह खेल कूद के क्षेत्र को लेकर भी कोई रियलटी शो दिखाए जा सकते है इससे लोकप्रियता के साथ–साथ देश को ऐसे खिलाड़ी उपलब्ध हो सकते है जो विश्वस्तरीय जीत दिला सकते है।

शारीरिक शिक्षा तथा खेल–कूद का चरम लक्ष्य व्यक्ति के संपूर्ण जीवन हेतु इष्टतम और संपूर्ण विकास के साथ–साथ खेल प्रतियोगिताओं में सर्वोच्च प्रदर्शन करना है। भारत खेल प्रतिभा का विशाल भंडार हैं। भारत को एक खेल राष्ट्र के रूप में विकसित करने की दिशा में निरंतर सार्थक प्रयास से ही आज देश खेल के क्षेत्र में खेल संस्कृति को विकसित करते हुए गौरव के इस क्षण तक पहुंच सका है।

संदर्भ

1. *थपल्याल किरण कुमार एवं शुक्ल संकटा प्रसाद (1992) सिंधु सभ्यता, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, पृ. 3 ।*
2. *श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, (2001–02) प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृ. 49।*
3. *पटेल श्रीकृष्ण एवं अन्य (2014–15), शारीरिक शिक्षा, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ. 57।*
4. *सिंह अजमेर एवं अन्य (2011) शारीरिक शिक्षा तथा ओलंपिक अभियान कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, पृ. 28।*
5. *उक्त, पृ. 28।*

6. *वर्मा हरिश्चन्द्र (1995) मध्यकालीन भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय।*
7. *सिंह, अजमेर एवं अन्य (2011) शारीरिक शिक्षा तथा ओलंपिक अभियान ,कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, पृ. 30।*
8. *भारत 2025, वार्षिक संदर्भ ग्रंथ प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।*
9. *प्रपन्न कौशलेन्द्र (2010) 'खेल नीति विकास और शिक्षा, (खेलो का विकास), योजना, सितम्बर 2010, 54 (9), पृ. 21–22।*

Paper Received : 01 Feb., 2025 ***Paper Accepted : 15 Feb., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 175-181

भारतीय सिनेमा में महिलाओं का चित्रण : विश्लेषणात्मक अध्ययन

*अवधेश यादव **

*प्रो० धीरज कुमार चौधरी ***

सारांश

सिनेमा ने अपनी विकास प्रक्रिया में महिलाओं से सम्बंधित मुद्दों को उठा कर भारतीय समाज का चित्रण करने में सहायता दिया है। जरूरत इस बात की है कि सिनेमा में कहानी और पात्रों के चयन में महिलाओं के अधिकारों और शोषण को सूक्ष्म और सत्य पूर्वक चित्रण किया जाये और महिलाओं के प्रति अश्लीलता जो समाज में सिनेमा के द्वारा फैल रहा है, उनको दूर किया जाये तभी सिनेमा की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी और महिलाएं भी सिनेमा का भाग बन सकेंगी।

प्रमुख शब्द : *सिनेमा, समाज, शोषण, संरचना, महिला, भारतीय।*

सिनेमा हमारी संस्कृति का हिस्सा है। हमारे जन–जीवन को अगर कोई कला व्यापक स्तर पर प्रभावित कर पायी तो वह सिनेमा है। सिनेमा के आरंभ से ही व्यावसायिक और अव्यावसायिक फिल्में बनती रही हैं। उन्हीं फिल्मों को दर्शकों और आलोचकों ने याद रखा जिन्होंने हमारी सांस्कृतिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया। सिनेमा सिर्फ आनंद नहीं विचार भी है। सवाल यह है कि आप देखने के लिए किस तरह की फिल्में चुनते हैं– "फिल्मों का निर्माण भौतिक उत्पाद ही नहीं है, यह सांस्कृतिक उत्पाद भी है। इसके द्वारा लोगों तक आनंद ही संप्रेषित नहीं होता, विचार भी संप्रेषित होते हैं।[1]

यदि 'शूल' फिल्म के नायक की तरह उसे अपनी पत्नी, बच्चों को खोना पड़े (समाज जब अपनी ताकत का इजहार ही न करे), तो क्या वह अराजकता, सुरक्षा के खिलाफ सीना तानकर खड़ा हो पाएगा? ऐसी फिल्म बनाकर फिल्मकार व निर्देशक बड़े भोलेपन से यह कहते हैं कि "जनता यही देखना चाहती है, जनता जो पसन्द करती है, हम वही परोसते हैं। नयी पीढ़ी को हम कतई ऐसा समाज नहीं सौंपना चाहते, जो पूर्णतः पुरुष प्रधान हो,। सबसे लोकप्रिय कला माध्यम के रूप में हम सिनेमा को देखते हैं।[2]

---

* *शोध छात्र, मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास विभाग, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, ईश्वर शरण महाविद्यालय, प्रयागराज।*

** *प्राचीन इतिहास, मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास विभाग, ईश्वर शरण महाविद्यालय, प्रयागराज।*

फिल्में समाज और समय का जीवंत दस्तावेज होती हैं। चरित्र प्रधान या किसी घटना पर बनीं फिल्म समाज के प्रत्येक वर्ग को अपने ढंग से प्रदर्शित करता है। स्त्री जीवन की विभिन्न छवियां सिनेमा में प्रदर्शित हुई हैं। वेश्यावृत्ति आधारित फिल्में आरंभ से ही बनती रही हैं। आरंभिक फिल्मों में वेश्याओं की समस्या और जीवन के संघर्ष पर फिल्मों का निर्माण हुआ। इन फिल्मों में वेश्याओं की सामाजिक स्थिति का जो वर्णन मिलता है, वह आदर्शवादी है। भूमंडलीकरण के बाद की फिल्मों में वेश्यावृत्ति आधारित फिल्मों में उनके जीवन का वास्तविक यथार्थ प्रस्तुत हुआ। इन फिल्मों में वेश्याओं के स्वाभिमान और सम्मान की अभिव्यक्ति भी हुई है। अगर हम सिनेमा की विकास यात्रा में वेश्यावृत्ति आधारित फिल्मों की बात करें तो पाएंगे कि 'प्यासा' से इसकी शुरुआत की जा सकती है। उससे पहले देवदास में चंद्रमुखी की भूमिका का जिक्र भी किया जा सकता है लेकिन प्यासा में वेश्यावृत्ति का स्वरूप स्त्री–मुक्ति से जुड़ता है।[3]

पहली बोलती सामाजिक फिल्म 'दौलत का नशा' (1931) से लेकर लम्बे समय तक यही विषय दोहराया जाता रहा जिसमें पत्नी अपने पति को भगवान का अवतार मानकर दिन–रात उसकी पूजा करती है। यदि उसपर शारीरिक प्रताड़ना भी हो तो खामोशी से बर्दाश्त करती है और रोती भी है तो खामोशी के साथ। संक्षिप्त में यह कि एक गुलाम की तरह अपने कर्तव्य का पालन करती है। इस खूबी को उजागर करने के लिए सैकड़ों फिल्मी कहानियां लिखी गई।[4]

1957 में प्रदर्शित 'प्यासा' हिंदी सिनेमा की क्लासिकल फिल्म साबित हुई। गुरुदत्त के निर्देशन व अभिनय में बनी फिल्म प्यासा एक ऐसे कवि की कहानी है जो बेरोजगार है। फिल्म में वेश्या की भूमिका में (वहीदा रहमान) गुलाबो ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ अभिनय किया है। फिल्म में यह दिखाने का प्रयास किया है कि बेरोजगारी में जीवन से उम्मीद खो चुका एक युवा अपने परिवार द्वारा ही उपेक्षित कर दिया जाता है क्योंकि वह बेरोजगार है। गुलाबो उसके इस दुख की साथी बनती है। उससे प्रेम करती है लेकिन वेश्या है। निर्देशन के साथ इस फिल्म का लेखन भी गुरुदत्त ने किया। फिल्म का अंत ही फिल्म का सार है। गुलाबो से नायक कहता है–चलो, हम दोनों कहीं दूर चलें। नायक–नायिका के दरवाजे के उस पार फैली रोशनी की तरफ जाते हुए प्यासा खत्म होती है। गुलाबो का चरित्र इस फिल्म में यह प्रदर्शित करता है कि जिन वेश्याओं को दुनिया उपेक्षित समझती है उनके अंदर भी ममत्व और

प्रेम का भाव होता है। गुरुदत्त इस फिल्म में वैश्याओं के अंदर की मानवीय भावना को सामने लाने का प्रयास करते हैं।[5]

लव स्टोरी पर आधारित 'मुगल–ए–आजम' ने दो बार सफलता को चूमा, पहली बार 1960 में और दूसरी बार 2004 में कलर वर्जन के साथ। 1965 में बनी 'गाइड' को टाइम मैगजीन ने बेस्ट बॉलीवुड क्लासिक्स की श्रेणी में नंबर 4 पर रखा है। फिल्म आरके नारायण की किताब पर आधारित थी। पहले लीड एक्टर देव आनंद के साथ अंग्रेजी में बनी, जिसे पुलित्जर पुरस्कार विजेता पर्ल्स एस. बक ने लिखा था। पश्चिम में फिल्म कोई असर नहीं छोड़ पाई। बाद में देव आनंद ने इसका हिंदी वर्जन बनाया। रिलीज के 42 साल बाद यह फिल्म 2007 में कान्स फिल्म फेस्टिवल में प्रदर्शित की गई। इन फिल्मों के माध्यम से महिलाओं का वस्तुकरण करने का प्रयास किया गया है।[6]

पाकीजा (1972) बनाने में कमाल अमरोही को चौदह वर्ष लग गए। यह फिल्म बताती है कि तवायफ हो जाने से स्त्री का सपना नहीं मर जाता है। वह बेहतर जीवन का सपना देखती है। लेकिन उसके माथे पर लगा तवायफ शब्द जीवन भर उसका पीछा करता है। वह बदनाम होकर जीवन जीने के लिए विवश होती है। फिल्म की कहानी नरगिस (मीना कुमारी) की है जो एक कोठे पर पलकर बड़ी होती है। कोठे का रहन–सहन उसके अंदर है। नृत्य–गीत सीखते हुए वह बड़ी होती है। दुनिया उसे साहिबजान गायिका के रूप में जानती है। उस इलाके के नवाब सलीम अहमद खान (राज कुमार) साहिबजान की खूबसूरती और मासूमियत पर फिदा हैं। वह नरगिस को उस जिल्लत की जिंदगी से निकालकर अपने साथ ले जाता है। वह जहां भी जाता है लोग नरगिस को पहचान लेते हैं। सलीम उसका नाम बदलकर पाकीजा रख देता है। कानूनी तरीके से निकाह भी कर लेता है। जब सलीम उसे लेकर एक मौलवी के पास निकाह की सामाजिक प्रक्रिया पूरी करने ले जाता है तो सलीम की बदनामी न हो इसलिए साहिबजान शादी से मना कर देती है और कोठे पर लौट आती है। सलीम किसी और से शादी की फिल्म की कहानी बताती है कि वेश्याओं का जीवन जीने वाली औरतें समाज में जैसे ही सामान्य जीवन जीने का उपक्रम करती हैं समाज उन्हें ताने देना शुरू कर देता है जिससे पुनः उन्हें उसी दुनिया में लौटना पड़ता है और उसी अपमान की पीड़ा को आजीवन झेलना पड़ता है। साहिबजान के साथ यही होता है।[7]

1975 में गुलजार द्वारा निर्देशित फिल्म 'मौसम' एक ऐसे डॉक्टर की कहानी है, जो अधेड़ उम्र में अपनी खोई प्रेमिका को ढूंढने निकलता है। खोजने के क्रम में उसे पता चलता है कि उसकी प्रेमिका मर चुकी है और उससे हुई

बेटी अब वेश्या बन चुकी है। उसे उस लड़की में अपनी प्रेमिका दिखाई देती है क्योंकि उसने उसी की शक्ल पायी है। वह उसे बेटी की तरह देखता है लेकिन वह लड़की उसे ग्राहक समझती है। फिल्म की बुनावट ऐसी है कि समाज में वेश्याओं की स्थिति का पता चलता है। एक वेश्या हर पुरुष में ग्राहक ही देखती है।[8]

ऐसी फिल्में बेहद कम हैं, जिसमें महिला समाज या उसके दृष्टिकोण या कि उसकी वास्तविक जीवन–नीन्यतियों का अंकन किया गया है। हम ये नहीं कहते कि सिनेमा–जगत का अधिकांश, समाज के एक बड़े तबके की जान–बूझकर अनदेखी करता है। वह अपने सामाजिक कूद और सोच के अनुरूप ही महिला चरित्रों का अंकन करता है। लेकिन हाँ, एकीकृत तो यही है कि ऐसा ही होता रहा है। इसके तीन बड़े कारण हैं–एक तो यह कि हिन्दी सिनेमा जगत स्टिरियोटाइप का शिकार रहा है, दूसरे, महिला –वर्ग का प्रतिनिधित्व नगण्य होने के कारण महिलाओं पर बनने वाली अधिकांश फिल्में सहानुभूति के दरें पर चली जाती हैं और तीसरी बड़ी खामी वे कि बहुत कम निर्देशकों को यह समझ है कि फिल्म अभिव्यक्ति का नहीं अन्वेषण का माध्यम है।[9]

के. बालाचंदर द्वारा निर्देशित 'आईना' (1977) एक ब्राह्मण लड़की की कहानी है। अपने परिवार के लिए उसे वेश्यावृत्ति करनी पड़ती है। फिल्म की कहानी इस प्रकार है–हिंदू ब्राह्मण राम शास्त्री (ए.के. हंगल) अपनी पत्नी सावित्री, पांच बेटियों व तीन बेटों सहित रहते हैं। पारंपरिक कर्मकांड द्वारा परिवार का जीवन यापन होता है। शास्त्री की बड़ी बेटी शालिनी (मुमताज) गांव के मुखिया जगन्नाथ के पुत्र अशोक से प्रेम करती है। अशोक छोटी जाति का है। घर वाले जब उनकी शादी के लिए तैयार नहीं होते तो अशोक सेना में भर्ती हो जाता है। कुछ दिन बाद अशोक के मरने की खबर आती है। इधर राम शास्त्री आर्थिक अभाव में परिवार समेत जान देने की कोशिश करता है तो शालिनी समय पर पहुंचकर उसे रोक देती है। शालिनी नौकरी करके परिवार का खर्च चलाती है और अपने भाई के डॉक्टर बनने के सपने को पूरा करती है। अपनी बहन को गायिका बनाने में भी मदद करती है। शालिनी पूना आकर अपने भाई का मेडिकल कॉलेज में एडमिशन दिलवाने जाती है। उसी बीच उसे दिल्ली से काम का बड़ा मौका मिलता है तो वह वहां चली जाती है। दरअसल शालिनी अपने पूरे परिवार की सुविधा के लिए वेश्यावृत्ति करती है। उनके लिए अपना पूरा जीवन त्याग दिया। यह बात जब उसके घर वालों को पता चलती है तो वह शालिनी से अपना रिश्ता खत्म कर लेते हैं। इसी बीच अशोक के

जीवित होने की सूचना मिलती है जिसके साथ अंत में वह घर बसा लेती है। इस फिल्म में एक महिला द्वारा अपनी इच्छाओं को मारकर परिवार के लिए जीने की कहानी है।[10]

माता पिता अपने बच्चों को पढ़ाते लिखाते और योग्य बनाते हैं। लेकिन बड़े होने पर वही बच्चे माता–पिता के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भूल जाते हैं और उन्हें दर–दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ देते हैं। आमतौर पर वे ऐसा शादी के बाद करते हैं। 1983 में बनी अवतार और 2003 में बनी बागबान इसी तरह के कथानक पर आधारित है। बागवान का राज मल्होत्रा (अमिताभ बच्चन) बैंक में अधिकारी पद से सेवानिवृत्त हुआ है और अपनी पत्नी पूजा (हेमा मालिनी) के साथ सुखमय रिटायर्ड जीवन गुजारने के सपने देखने लगता है। लेकिन जब चारों बेटों को मालूम पड़ता है कि माता–पिता के पास उन्हें देने के लिए कुछ नहीं बचा है, तो वे उन्हें अपने साथ रखने में हिचकिचाते है। अवतार हो या बागवान ये फिल्में यही बताती हैं कि आज पारिवारिक सम्बन्ध भी सिर्फ पैसों पर टिका है। अगर पैसा है, तो बच्चे भी माता–पिता से प्यार करते हैं और पैसा नहीं है, तो वे भी उन्हें ठुकरा देते हैं।[11]

1983 में प्रदर्शित 'मंडी' महाराष्ट्र के एक छोटे शहर के वेश्यालय की कहानी है, जिसे रुक्मिणी बाई (शबाना आजमी) चलाती है। जिस घर में वह वेश्यालय चलाया जाता है उसका मालिक उसे बेच देता है। नया मालिक उस घर को बेचना चाहता है। यहीं से रुक्मिणी का संघर्ष शुरू होता है। श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित 'मंडी' की कहानी राजनीति और सत्ता से जुड़े लोगों की भी पोल खोलती है। यह फिल्म वेश्यावृत्ति करने वाली महिलाओं के विस्थापन के संघर्ष और राजनीति के घिनौने चेहरे को दिखाती है।[12]

2003 में प्रदर्शित फिल्म 'मार्केट' देह व्यापार के लिजलिजाते जीवन को दिखाती है जिसमें एक ऐसी स्त्री मुस्कान बानो (मनीषा कोइराला) की कहानी है जो अपने पति द्वारा ही वेश्यालय में बेच दी जाती है। इसके साथ ही यह फिल्म दिखाती है कि वेश्याओं का जीवन बहुत सीधा नहीं होता है। उसमें पुलिस, गुंडे, मवाली, डॉन सभी शामिल होते हैं। वेश्याओं का होने वाला शारीरिक, मानसिक शोषण इस फिल्म में सच्चाई के साथ दिखाया गया है। फिल्म के अंत में मुस्कान एक डॉन के सहारे अपने पति को मारकर अपने साथ हुए अत्याचार का बदला लेती है।[13]

2006 में प्रदर्शित 'जूली' की कहानी भी आम लड़की के जीवन से शुरू होती है। नेहा धूपिया ने पहली बार मजबूत अभिनय किया है। इस फिल्म में अपने प्रेमी द्वारा धोखा मिलने पर नायिका मुंबई चली जाती है जहां ऑफिस में

काम करते हुए उसका बॉस भी उसका भावनात्मक यौन शोषण करता है। जूली को पुरुष समाज से वितृष्णा हो जाती है। अंततः वह वेश्यावृत्ति में उतर जाती है और नामी कॉलगर्ल बन जाती है। बाद में पता चलता है उसका प्रेमी लड़कियों की दलाली करता है। एक दिन वही प्रेमी दलाली करता हुआ एक ग्राहक को खुश करने के लिए जब लड़की भेजता है तो पता चलता है वह उसकी प्रेमिका ही है। कॉलगर्ल बनने के बाद वह उच्च जीवन तो जीने लगती है लेकिन उसके अंदर की औरत मर जाती है। फिल्म के अंत में उसे बड़ा व्यापारी मिलता है जिससे वह फिर प्यार करने लगती है जो उसे मीडिया के माध्यम से पूरी दुनिया के सामने लाता है। फिल्म अंत में यह उपदेश देती है कि वेश्याएं हमारे समाज की लड़कियों को बलात्कार से बचाती हैं। अंत में फिल्म सामाजिक उद्देश्य और वेश्याओं के सम्मान की बात करते हुए खत्म हो जाती है। इस फिल्म से निर्देशक ने वेश्याओं के प्रति समाज का नजरिया बदलने का प्रयास किया है।[14]

महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक दशा को लेकर प्रारम्भ से ही फिल्में बन रही हैं। फिल्मों ने महिलाओं की सामाजिक संरचना को दिखाने का प्रयास की है। आवश्यकता है कि महिलाओं की अधिकारों और उनके वास्तविक चरित्र को फिल्मों में निरूपित किया जाए तभी सिनेमा की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

संदर्भ

1. *प्रजापति, महेंद्र, प्रतिरोध और सिनेमा, नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 13*
2. *शर्मा, पंकज, हिंदी सिनेमा की यात्रा, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 53*
3. *प्रजापति, महेंद्र, प्रतिरोध और सिनेमा, नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 151*
4. *हमीद, जावेद, गुजरे जमाने की यादगार फिल्में, अतुल्य पब्लिकेशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 59*
5. *वही, पृष्ठ संख्या 152*
6. *ठाकुर, मनोज, फिल्मिंग पॉलिटिक्स, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 23*
7. *प्रजापति, महेंद्र, प्रतिरोध और सिनेमा, नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 152*
8. *वही, पृष्ठ संख्या 153*
9. *मीणा, प्रमोद, हिंदी सिनेमा दलित आदिवासी विमर्श, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 46*

10. प्रजापति, महेंद्र, प्रतिरोध और सिनेमा, नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 154

11. पारख, ज्वरीमल, हिंदी सिनेमा में बदलते यथार्थ की अभिव्यक्ति, नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 29

12. प्रजापति, महेंद्र, प्रतिरोध और सिनेमा, नई किताब प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 155

13. वही, पृष्ठ संख्या 156

15. वही, पृष्ठ संख्या 157

Paper Received : 24 Jan., 2025 ***Paper Accepted : 06 Feb., 2025***

मङ्गलम् - वर्ष 16(01) भाग-XXX फरवरी 2025
ISSN-0976-8149 पृ. 182-187

प्राचीन भारत में पाठ्य विषय एवं शिक्षा व्यवस्था

डॉ० अजिता ओझा *

सारांश

प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था बहुत ही उन्नत और समृद्ध थी। उस समय के प्रमुख पाठ्य विषय वेद और वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष) दर्शन (मे न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत जैसे विभिन्न दर्शन शाखाओं का अध्ययन) ,संस्कृत साहित्य, काव्य, नाटक और अन्य साहित्यिक कृतियों, गणित, ज्योतिष और खगोल विज्ञान, आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन किया जाता था ।शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान और विज्ञान जानने के साथ ही आत्मज्ञान और आत्म–साक्षात्कार प्राप्त करना था, जिससे उनके चरित्र निर्माण और नैतिक मूल्यों का विकास हो सके। जब तक व्यक्ति शिक्षा को ग्रहण करके उसके मूल तत्वों को अपने अंदर आत्मसात ना करें उसकी शिक्षा को व्यर्थ समझा जाता था ।

मूल शब्द – *वैदिक काल, उपनिषद, पुराण, विज्ञान, याज्ञवल्क्यस्मृति, पतंजलि।*

वैदिक काल में बालक और बालिकाओं दोनों को शिक्षा दी जाती थी। प्रारम्भ में संभवतः पिता ही अपनी संतान को शिक्षा देता था। बाद में वैदिक ग्रंथों के विद्वान् गुरु भी शिक्षा देने लगे। गुरु बालकों को वैदिक सूक्त और वीरगाथाएं पढ़ाते थे। ऋग्वेद के सूक्त तत्कालीन कवियों (स्त्री तथा पुरुष दोनों) की रचना थे। वैदिक ऋषि की सृष्टिरहस्य जानने की जिज्ञासा ने उन्हें ग्रहों और तारों में अंतर, चंद्रमा और सूर्य की गति के द्वारा महीनों पर आधारित पचांग का अविष्कार करने में सफलता प्रदान की। ज्योतिष विज्ञान में भी उनकी रुचि थी। पिता अपनी संतान को परिवार के व्यवसाय की शिक्षा देता था। स्त्रियां कपड़ा बुनने, रंगने, कसीदा काढ़ने और टोकरी बनाने का कार्य करती थी। इन सभी शिल्पों की शिक्षा बालकों को अपने माता–पिता से मिलती रही होगी। ऋग्वेद के एक सूक्त से स्पष्ट है कि विद्यार्थी पिता या गुरु से मौखिक शिक्षा प्राप्त करते थे और अपने पाठ को बार–बार दोहराकर कंठस्थ करते थे। एक अन्य सूक्त से ये भी पता चलता है कि वाद–विवाद का शिक्षा पद्धति में

---

* *सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

महत्वपूर्ण स्थान था। संभवतः वैदिक लोग लिखना जानते थे लेकिन इनकी शिक्षा पद्धति में लेखन कला से कहीं ज्यादा शिक्षा में पाठ को कंठस्थ करने पर जोर दिया जाता था। विद्यार्थी सूक्त कंठस्थ करने के साथ उसका अर्थ भी भली–भांति जानते थे। वाद–विवाद को महत्व देने के कारण विद्यार्थियों में भाषण देने की क्षमता का भी विकास होता था। इस काल में शिक्षा का प्रबन्ध राज्य नहीं करता था। ब्राह्मण विद्वान् अपने घरों पर ही उच्च तीन वर्णों के विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। ऋग्वेद में विद्यार्थी के लिए ब्रह्मचारी शब्द प्रयुक्त हुआ है। उत्तर वैदिक काल में वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों को अपौरूषेय समझा जाने लगा। अतः पाठ्य विषयों में इनके अध्ययन पर अधिक महत्व दिया गया। इस काल में व्याकरण, निरूक्त, छंद, ज्योतिष और दर्शन की शिक्षा पर बल दिया गया। छान्दोग्य उपनिषद में अध्ययन के विषयों की सूची दी गयी है। इसमें गणित, ज्योतिष, इतिहास–पुराण (पंचमवेद) आदि बताये गये हैं।

वैदिक शिक्षा संबंधी प्राचीनतम साहित्य प्रातिशाख्य हैं। चरण, वैदिक शिक्षा की विशेष शाखा को कहते थे। शाखा वेद के विशेष पाठ से संबद्धता बताती है।[1] इस काल के अंत तक कन्याओं का उपनयन–संस्कार होता था और वे भी वैदिक ग्रंथों का अध्ययन करती थी। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार, ''मनुष्य पितृऋण से मुक्त केवल संतान उत्पन्न करके ही नहीं होता, अपितु इसके लिए उसे अपने पुत्रों की उचित व्यवस्था भी करनी होती थी। जो माता–पिता अपने बालक को शिक्षा प्रदान नहीं करते थे, वे उसके बड़े बैरी हैं।'' बृहदारण्यक उपनिषद में तीनों लोकों (मनुष्य लोक, पितृलोक और देवलोक) में सर्वश्रेष्ठ देवलोक की प्राप्ति विद्या द्वारा ही सम्भव कहा गया है।[2] छान्दोग्य उपनिषद में अध्ययन के विषयों की सूची दी गयी है। ताण्ड्य ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि शिक्षा को आत्मसात करके जीवन में उसका परिपालन करना होता था। जबतक विद्यार्थी उसको ग्रहण करके उसके मूल तत्वों अपने अंदर आत्मसात न करे उस ज्ञान को व्यर्थ माना जाता था। शिक्षा के मुख्यतः तीन उद्देश्य थेः चरित्र निर्माण (अच्छे–बुरे की पहचान और न्यायप्रियता के गुणों में वृद्धि), व्यक्तित्व का विकास (उसमें आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, कर्तव्यों पर बल देती थी) प्राचीन भारतीय संस्कृति की रक्षा और विकास (सामाजिक कार्य क्षमता, कर्तव्यों पर बल) को प्रोत्साहन देना था। मनुष्य में आदर्श व्यक्तित्व का विकास और नकारात्मक पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करना ही शिक्षा का

उद्देश्य है। महाभारत में शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक प्रवृत्तियों का विकास कहा गया है।[3]

कौटिल्य ने वैदिक शिक्षा प्राप्ति के लिए निम्नलिखित चरण बतलाए हैं:

1. सुश्रूषा–आचार्य की सेवा करना।
2. श्रवणम्–उसकी शिक्षा को कानों से सुनना।
3. ग्रहणम्–उसके शब्दों को याद रखना।
4. ऊहापोह–वाद–विवाद।
5. विज्ञान–शब्दों का पूरा अभिप्राय समझना।
6. तत्वाभिनिवेष–अंतर्निहित अर्थ को समझना।

स्पष्ट है कि केवल शब्दों के कंठस्थ करने का इस प्रणाली में कोई महत्व न था विद्यार्थी जबतक शिक्षा आत्मसात न करे वह व्यर्थ समझी जाती थी। केवल योग्य और शिक्षा के लिए उत्सुक विद्यार्थियों को ही शिक्षा दी जाती थी। गणित, व्याकरण और छंद–शास्त्र की भी शिक्षा के विषय थे। भाषा के अध्ययन पर बहुत जोर दिया जाता था। उत्तर भारत के व्यक्ति भाषा और व्याकरण के पंडित माने जाते थे।

उपनिषदों में पाठ्य विषयों में वेद, इतिहास, पुराण, ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त व्याकरण, गणित (राशि), तर्कशास्त्र (वाकोवाक्य,) नीतिशास्त्र (एकायन), सैनिक विज्ञान, सर्पविद्या और फलित–ज्योतिष विद्या (दैवविद्या) का भी उल्लेख है परन्तु अन्य विद्याओं की शिक्षा पर इतना बल नहीं दिया जाता था जितना परा–विद्या पर। साहित्यिक शिक्षा के अतिरिक्त क्षत्रियों को निश्चय ही अस्त्र–शस्त्र चलाने की भी शिक्षा दी जाती होगी और वैश्य अपने परिवार में कृषि और व्यापार की शिक्षा प्राप्त करते होगें। कन्याओं को नृत्य और गायन की भी शिक्षा दी जाती थी। तत्कालीन शिक्षा पद्धति में यद्यपि लेखन कला का विशेष महत्व नहीं था फिर भी आर्य भोजपत्रों पर पुस्तकें लिखते थे। धर्मेतर विषयों के रूप में राजनीति विज्ञान, विधिशास्त्र, आयुर्वेद, शल्यशास्त्र, गणित, संस्कृत, साहित्य, धातुविज्ञान, व्याकरण आदि विषयों का विद्यार्थी अध्ययन करते थे।[4] याज्ञवल्क्यस्मृति में उद्धृत है–

पुरापन्यायमीमांसार्मशास्त्रांगमिश्रिताः।

वेदाःस्थानानि विधानां धर्मस्य च चतुर्दश।।

(पुराण–साहित्य, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, 6 वेदांग, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष तथा व्याकरण) तथा 4 वेद–इस प्रकार कुल 14 विद्याओं के स्थान है।

एक अन्य उद्धरण मिलता है–

उपवेदसहिता ह्येता विद्या ह्याष्टादशस्मृताः

(आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा शिल्पवेद के रूप में 4 उपवेदों सहित 18 प्रकार की विद्याएं है।)

शुक्राचार्य ने विद्याओं की संख्या 32 बताई है, अन्य आचार्यों ने भी भिन्न–भिन्न संख्या बतायी है। परन्तु परम्परा में अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः अर्थात् अनन्त शास्त्र हैं तथा अनेकानेक विद्याएँ हैं ये सभी विद्याएं अध्यात्मविद्या या ब्रह्मविद्या के लिए पूर्वपीठिका तैयार करते हैं।[5]

शिक्षा का मतलब केवल बौद्धिक उन्नति भर न था बल्कि सम्पूर्ण चारित्रिक और आध्यात्मिक उन्नति के द्वारा छात्र के सर्वांगीण विकास से था।[6] मनु ने ज्ञान को तीन श्रेणियों में विभक्त किया था–लौकिक (सांसारिक, व्यावहारिक ज्ञान), वैदिक (वेदों का ज्ञान) और आध्यात्मिक (पारलौकिक, दार्शनिक ज्ञान)।[7] शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए ईशावास्योपनिषद[8] में कहा गया है–

अनन्तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते प्रमो या उ विद्यायां रताः।।
विद्यामू चाविद्यां यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विधयामृतमश्नुते।।

(जो केवल अविद्या की उपासना करते है, वे गहरे अंधकार में गिरते हैं, परन्तु जो केवल विद्या में ही रत रहते है वे उससे भी गहरे अंधकार में गिरते है। जो विद्या तथा अविद्या–दोनों को एक साथ जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करता है अर्थात् जीवन पूर्ण करता है तथा विद्या से अमृत को प्राप्त करता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।)

गुरु शिष्यों को मौखिक शिक्षा देते थे। शिक्षा को आत्मसात करने के उपनिषदों में तीन चरण बताए गये है–श्रवण, मनन और निदिध्यासन। प्रथम चरण में शिष्य गुरु की शिक्षा को ध्यानपूर्वक सुनता था, दूसरे चरण में वह शिक्षा पर मनन करता था और तीसरे अंतिम चरण में वह उच्च शिक्षा को अपने जीवन में चरितार्थ करके उसे आत्मसात करता था। जो विद्यार्थी गुरु के अनुशासन में नहीं रहते थे या पढ़ाई पर ध्यान नही देते थे उन्हें गुरु अपने घर से निकाल देता था। उन्हें पतंजलि ने 'खट्वारूढ़' अर्थात् खाट में पड़े रहने वाला कहा है।[9] जो विद्यार्थी बार–बार अध्यापक बदलते थे उन्हें पतंजलि ने 'तीर्थ–काक' कहा है। पतंजलि ने निंदनीय विद्यार्थियों के लिए कुछ अन्य विशेषण दिए हैं जैसे कि कन्याओं के कारण दाक्ष के शिष्य बनने वाले 'कुमारी दाक्ष', भिक्षा का माल हड़पने की इच्छा से बने शिष्य 'भिक्षा माणव', भात खाने की इच्छा से बनने वाले पाणिनी के शिष्य 'ओदन पाणिनीया', घी के लिए बने शिष्य घृत–राढ़ीया और कंबल चारायणीयाः।[10] किसी ऐसे प्रसिद्ध अध्यापक जिसके पास सैकड़ो मील से विद्यार्थी पढ़ने आते थे, का शिष्यत्व ग्रहण करने वाले विद्यार्थी के लिए पतंजलि ने 'यौजन शातिक' पद प्रयुक्त किया है।[11] जो अध्यापक जीवन निर्वाह के लिए वेद वेदांग पढ़ाते थे, वे उपाध्याय कहलाते थे।[12] जो बिना शुल्क लिए वेद, कल्पसूत्र और उपनिषद पढ़ाते थे वे 'आचार्य' कहलाते थे। शिष्य आचार्य को शिक्षा समाप्ति पर गुरु दक्षिणा के रूप में भूमि, सुवर्ण, गाय, घोड़ी, छत्तरी, जूते, अनाज, शाक या वस्त्र देते थे।[14] शुल्क लेने वाले अध्यापक और शुल्क देने वाले शिष्य का समाज में आदर नहीं था। उसे श्राद्ध भोजन का निमंत्रण भी नहीं दिया जाता था।[15] ब्राह्मण विद्यार्थी साधारणतया अपने अध्ययनकाल का पूरा समय वैदिक ग्रंथों के अध्ययन में लगाते थे किन्तु क्षत्रिय और वैश्य विद्यार्थी पूरा समय इसमें नहीं लगाते थे। क्षत्रिय युद्ध–कला और प्रशासन–विद्या भी सीखते थे। वैश्य केवल प्रत्येक ऋषि का पहला और अंतिम सूक्त कंठस्थ करते थे और शेष समय कृषि–विज्ञान, पण्यशास्त्र और पशुपालन विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने में लगाते थे।[16] मनु[17] तथा याज्ञवल्क्य[18] ने शासकों के लिए भी दण्डनीति और वार्ता (अर्थशास्त्र) के साथ ही त्रयी (तीनों वेदों), आन्वीक्षिकी आदि का अध्ययन प्रस्तावित किया है। उल्लेखनीय है कि मनु तथा याज्ञवल्क्य द्वारा उद्धृत लगभग सभी पाठ्यक्रम हमें बौद्ध साहित्य और मिलिंदपन्हों[19] में भी पढ़ने को मिलते हैं। मिलिंदपन्हों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण विद्यार्थी उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कोशकला, छंदशास्त्र, स्वर विज्ञान, श्लोक व्याकरण, निरुक्त (व्युत्पत्तिशास्त्र), ज्योतिष, शरीर पर मांगलिक चिह्नों का विज्ञान, शकुन विज्ञान, स्वप्नों और ग्रहों के शकुनों का अर्थ निकालने का विज्ञान आदि

विषयों का भी अध्ययन करते थे। इसी प्रकार क्षत्रियों के लिए हाथियों, घोड़ों, रथों को चलाना, धनुष और खांडा, युद्धकला, दस्तावेजों और मुद्राओं के विषय में भी पूरा ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था।[20] दिव्यावदान से हमें ज्ञात होता है कि वैश्य विद्यार्थी लेखन कला, गणित, मुद्राशास्त्र, ऋण निधि, मणि परीक्षा और अश्व–हस्ति विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करते थे।[21] मनु द्वारा भी लगभग इन्हीं विषयों का अध्ययन वैश्यों के लिए प्रस्तावित था।[22]

संदर्भ

1. *ऋग्वेद, 10, 717.109.5*
2. *बृहदारण्यक उपनिषद, 2, 4, 4, 5*
3. *तैत्तिरीय संहिता, 6, 1, 6, 5, मैत्रायणी संहिता 3, 73*
4. *धर्म हि यो वर्धयते स पण्डितः। महाभारत, 12, 321, 75 स्वाध्याय प्रवचलाभ्याम् न प्रमदितध्यम्, तैत्तिरीय उपनिषद् 1, 11*
5. *याज्ञवल्क्यस्मृति 1.1.3*
6. *पाण्डे, जी.सी. फाउन्डेशन्स ऑव इण्डियन कल्चर, वाल्यूम II, पृ0 160; मनु0 12.89–90*
7. *मनु 3.156*
8. *ईशावास्योनिषद् 9, 11*
9. *महाभाष्य 2.4; 32 और 3.1.26 (2) पर*
10. *वही, 2, 1, 41, 1, 1, 73 (6) पर*
11. *महाभाष्य, 5.1.74 (2) पर*
12. *मनु0 2.141*
13. *वही, 2.140*
14. *वही, 2.246*
15. *वही, 3.156; याज्ञ, 3.230*
16. *महाभाष्य 2, 140, 146, 3, 156*
17. *मनु0 8.43*
18. *याज्ञ, 1.311*
19. *राजा मिलिंद के प्रश्न अनुवादित टी डब्ल्यू रिज डेविड्स एस0बी0ई0 वाल्यूम XXXV, पृ. 6, 247*
20. *मिलिदपन्ह, 1.9; 4.3, 26*
21. *दिव्यावदान, 26, 99–100*
22. *मनु0 9, 329–332*

Paper Received : 03 Oct., 2024 ***Paper Accepted : 12 Jan., 2025***

पुस्तक–समीक्षा
महाभारत सूक्तिकोष
(चार खण्डों में)

समीक्षक–प्रो०(डॉ०) रामहित त्रिपाठी
शिवम आपर्टमेन्ट ममफोर्डगंज,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

परमतपोनिष्ठ संन्यासी स्वामी सोमदेव गिरि जी द्वारा लिखित महाभारत सूक्तिकोष कुल 4 खण्डों में दिव्यप्रकाशन पतंजलि योगपीठ हरिद्वार उत्तराखण्ड से प्रकाशित है। महाभारत को भारती के अन्तर्गत पंचम वेद के रूप में मान्यता प्राप्त है। विश्वकोष सदृश् सम्मान भी महाभारत के लिए ही उचित रहा है; क्योंकि ''धर्मे, अर्थे, कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।'' यह घोषणा महाभारत की विशालतम् ज्ञान राशि के लिए ही चरितार्थ हुई है। ज्ञान की चरम सीमा, लोक व्यवहार की सकल अनुभूतियाँ, नीति–रीति, राजधर्म, न्याय–अन्याय, मान–अपमान, मर्यादा–अमर्यादा, छल–प्रपंच, धोखा, प्रेम, घृणा, त्याग, भोग, लिप्सा, वैमनस्य तथा मित्र और शत्रु से सम्बन्धित सभी प्रकरणों पर महाभारत परिपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। महाभारत के अन्तर्गत जीवनानुभवों का विपुल भण्डार निहित है। अपने अनुभवों को महर्षि वेदव्यास ने सूक्तियों के माध्यम से पदे पदे अनुस्यूत किया है। इन सूक्तियों का संज्ञान समग्रता से प्राप्त कराने के लिए पृथक् रूप में अभी तक किसी विद्वान् अथवा लेखक द्वारा संग्रहग्रन्थ का लेखन नहीं किया जा सका था। यत्र–तत्र उल्लिखित; उद्धृत अथवा सन्दर्भित रूप में ही सूक्तियाँ प्रायः संस्कृत साहित्य में समुपलब्ध होती रही हैं। उनका सानुवाद क्रमबद्ध विवेचन किया जाना भारती के अन्तर्गत परम आवश्यक आवश्यकता के रूप में विद्वत् समाज में अनुभव किया जाता रहा। इसी आवश्यकता की पूर्ति में स्वामी सोमदेव गिरि जी ने अपनी साधनावधि से कतिपय समय निकालकर महाभारत से सूक्तियों की ज्ञानमणि माला स्वरूप चारों खण्डों का नाम क्रमशः चतुर्वर्ग सूक्तिकोष, मानुषक सूक्तिकोष, राजनीति सूक्तिकोष और विविधसूक्ति कोष किया गया है।

अवधेय है कि स्वामी सोमदेव गिरि जी ने गुरुकुल से आचार्य (व्याकरण) की उपाधि ग्रहण कर संन्यास ले लिया। तपश्चर्या में रहते हुए उन्होंने महाभारत का गम्भीरता अध्ययन; मनन एवं चिन्तन किया है। महाभारत के गूढ़तम तथ्यों और रहस्यों का अध्ययन और अन्वेषण कर सूक्तियों की विपुल राशि की प्राप्ति की है। सूक्तियों के भाव, अर्थ और अनुप्रयोगगत विचार लेखन के साथ पुंजीभूत इस ग्रन्थ से सामाजिकों, अध्येताओंद्ध शोधकर्ताओं तथा साहित्यानुरागियों को सन्तुष्टि प्राप्त होगी। ज्ञानपिपासा शान्त होगी। जीवनानुभवों में वृद्धि होगी।

नित नूतन निर्णय और विचार करने की क्षमता का उन्नयन होगा। वैदिक ज्ञान के सम्यक् अवबोधन हेतु महाभारत का अध्ययन परमावश्यक है। इस ग्रन्थ में संकलित सूक्तियाँ व्यक्ति को प्रतिक्षण शिक्षा ही नहीं; अपितु शीक्षा भी प्रदान कर उनका उपकार करती हैं। यथा– ''अतिवादांस्तितीक्षेत'' अर्थात् निष्ठुर वचनों को सहन करें। ''शिक्षार्थ ताडनं समृतम्'' अर्थात् शिक्षा के लिए शिष्य की ताडना उचित है। ''नास्ति मातृसमोगुरुः'' माता के समान कोई गुरु नहीं है। ''महाकुल निवेष्टव्यम्'' महान कुल में विवाह करें। ''धर्मात्मकः कर्मविधिः'' धर्म का स्वरूप कर्म की विधि ही है। ''धर्मे चार्थः समाहितः'' धर्म के अन्दर ही धन समाहित होता है। ''ज्ञानेन मोक्षो विज्ञेयः'' ज्ञान से मोक्ष होता है ऐसा जानें। ''दुःखस्पर्शोरजोगुणः'' रजोगुण दुःखस्पर्श देता है। ''योगोभूतिकरः परः'' उपाय ही ऐश्वर्य को बढ़ाता है। इत्यादि सूक्तियाँ सर्वदा स्मरणीय हैं।

यह आकर ग्रन्थ महाभारत की सूक्तियों की ज्ञान प्राप्ति हेतु परम उपादेय है। अध्ययनीय और सर्वथा संग्रहणीय है।

ग्रन्थ का नाम – **महाभारत सूक्ति कोष**
(4 खण्डों में)
प्रति खण्ड का मूल्य–1200/–
प्राप्ति का माध्यम–दिव्य प्रकाशन, पंतजलि योगपीठ
NH. 334 हरिद्वार, उत्तराखण्ड–249405
निकट–बहारदराबाद
दूरभाष–01334–244805

लेखक – **स्वामी सोमदत्त गिरि**
हरिद्वार आश्रम, कनखल
23, हरिद्वार उत्तराखण्ड

Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

Application for Membership

website:www.mangalamallahabad.com

Membership ID. No.- ....

(For Official Use)

PHOTO

1. Name (with title, e.g. Dr/Prof./Mr./Ms.) 2. Male/Female

2. Designation and Address-(If retired, Last address)

3. Mailing/Permanent Address-

4. Telephone (With STD code)-

Office:................................ Residence:.............................

Mobile No.:........................ E-Mail :..................................

Fax No. :............................

5. Type Of Membership

One Year :- Rs. 2000/- Three Year :- Rs. 5000/- Life Membership* :- Year:- Rs. 10,000/-

(*For Ten Year's)

New you may deposit the Membership fee directly in Maglam International Journal of Humanities & Social Scial Sciences (ISSN : 0976-8149) Account as per Following details :-

Name of Bank : State Bank of India Prayagraj Branch : Civil Lines Prayagraj
Account Holder : Manglam Sewa Samiti, Prayagraj A/c No. : 65024854963
IFC Code : SBIN 0018245 MICR Code : 211007003

Please return this form to

Dr. Dinkar Tripathi

Editor : Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences

463/359G-2 Shivam Apartment, New Mumfordganj, Prayagraj(U.P.)- India, 211002

website:www.mangalamallahabad.com

e-mail : drdinkartripathi@gmail.com

Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences
Subscription Order Form
website:www.mangalamallahabad.com

1. Name :..
2. Address : ....
   ....
   Tel./ Mabile No. .... e-mail ....
3. Life Membership of Manglam Sewa Samiti- Yes/No (If Yes then I.D. No....................)
4. Tpe of Subscription : Individual / Institon
5. Period of Subscription : Annual / Three year's / Life time*
6. Number of Copies Subscription : ....

Dear Editor,

Kindly acknowledge the receipt of my Subscription and staet sending the issue (s) of Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences (ISSN-0976-8149) at follwing Aeddres.

....
....
....

The Subscription rates ars sa Follow : w.e.f. 31.08.21\012

India (Rs.)	Members of Manglam Sewa Samiti	Individuals	Institutions
Single Copy	Rs. 300/-	Rs. 600/-	Rs. 750/-
Anaual Copy	Rs. 500/-	Rs. 1100/-	Rs. 1500/-
Three Copy	Rs. 1500/-	Rs. 8000/-	Rs. 4500/-
Life time*	Rs. 500/-	Rs. 1100/-	Rs. 10,000/-
OTHER COUNTRIES	**Members of Sewa Samiti**	**Individuals**	**Institutions**
Single Copy	$65	$80	$120
Anaual Copy	$120	$150	$240
Three Copy	$360	$430	$720
Life time*	$3000	$5000	$10,000

(*For Ten Year's)

New you may deposit the Membership fee directly in Maglam International Journal of Humanities & Social Scial Sciences (ISSN : 0976-8149) Account as per Following details :-

Name of Bank : State Bank of India Prayagraj Branch : Civil Lines Prayagraj
Account Holder : Manglam Sewa Samiti, Prayagraj A/c No. : 65024854963
IFC Code : SBIN 0018245 MICR Code : 211007003

Please return this form to

Dr. Dinkar Tripathi
Editor : Manglam International Journal of Humanities & Social Sciences
463/359G-2 Shivam Apartment, New Mumfordganj, Prayagraj (U.P.)- India, 211002
website:www.mangalamallahabad.com
e-mail : drdinkartripathi@gmail.com

Instruction for Research Paper's

- Reseracli Papers are Invited Only in Hindi, Sanskrit and English with a Declaration of being Original and unpublished ,work.
- The Paper Must be Neaty Typed in 14 Point Size of KrutiDav-010/ Times New Roman on A4 Size Paper having 1.25 inch margin of evey side with full Residential & Offical Address Mobile No. and email.
- The Research Paper Should have the Maximum Limit of 2000 Words. It can be returned if no Summary (Maximum in 150 Words) and referenace are attached.
- Research Paper will be Published after the approval of Editorial board.
- Author Should give the References in this manner
  for Articles- Dr. Gopal Prasad, Economic Development and Panchayatiraj, Manglam Journal, Allahabad. ISSN-097-8149 Year 02 No-01 February 2011 P.17-18.
  for book- Yogendra Yadav, Electroal Politics in the time of Change:India's third Electoral Sytem 1989-99" Economic & Political Weekly Vol.34 No.34 21-28Aug.1999. P-2330-2399.
- All Right of Published Papers will be Preserved under the Name of Editor.
- Authors may sent two copies of their Books (Under one year of its Publication) for Review in the Journal.
- The Journal will be Sent to all Personal and Institutional Members. Through general post, if some one required post be will have to pay Additional Charge for it.
- Please sent your Research Paper, C.D. and Subscription form/ Membership Form at the address given below.

Editor

Dr. DINKAR TRIPATHI

•

Manglam -Half Yearly Journal
463/359G-2 Shivam Apartment,
New Mumfordganj, Allahabad (U.P.) India
Mobile- +91-7398180008, +91-9044666672
Email- drdinkartripathi@gmail.com

•

Manglam- Half Yearly Journal
1249/1A, Civil Lines-2
(Behind-Raj Hotel) Sultanpur, (U.P.)
Mobile- +91-9532006658